

प्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद जी ने मीराबाई के सम्बन्ध में उपयुक्त बातों का पता लगाया है जो अब सर्वसम्मत भी हैं।

मीराबाई के कई पदों के यह पता चलता है कि ये रैदास को अपना गुरु मानती थीं। जैसे —

“मीरा ने गोविन्द मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।”

परन्तु प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार मीराबाई और रैदास के समय में बड़ा अंतर पड़ता है। और यदि उपयुक्त बातें मानली जायें तो मुंशी देवाप्रसाद और मिश्रबन्धुओं ने मीराबाई का जो समय निश्चित किया है वह ताल्ल ठहरना है। इसलिये यह बात धर्तसन्द है कि मीराबाई के गुरु रैदास थे। मालूम होता है कि रैदास के किसी शिष्य ने कुछ पद हय प्रकार के बना दिये होंगे जा आगे चलकर मीराबाई के पदों में मिल गये होंगे। ये ही अब तक मतमान हैं।

लोग कहते हैं कि विवाह हो जाने पर मीराबाई जी त्रिलोक चली गई। अगमग दम बरों के ब्यतीत होने पर ये विधवा हो गईं। किन्तु इन्हें पति का स्मरण पर रच भी दुःख न हुआ, क्योंकि इनके हृदय में गिरधर गोपाल की मक्ति अत्यन्त हो गई थी। रात दिन गिरधर गोपाल के ही प्रेम में ये लीन रहा करती थीं। ये साधु-सतों की संगति में आने जाने लगीं। महाराणा रतनसिंह के बाद इनके देवर महाराणा विक्रमादित्य सिंह गरी पर बैठे। विक्रमादित्य सिंह मीराबाई की ऐसी संगति न पसन्द करते थे। उन्होंने मीराबाई का बहुत समयमाया और हाँ एक दासियों को भी इन के पास रहने का प्रयत्न कर

विषय-सूची

१—वक्तव्य	पृष्ठ संख्या ११
२—परिचय	१६
३—स्त्रियों का काव्य और साहित्य	१
कवि नामावली	
४—मीराबाई	१
५—ताज	१६
६—रतगनिया	२४
७—शेर	२८
८—दुर्जनकुँवरि बाई	४५
९—प्रवीण राय	५०
१०—दयाबाई	६०
११—कविरानी	६६
१२—रसिकविहारी	६६
१३—ब्रजदासी	७५
१४—माई	७६
१५—प्रतापकुँवरि बाई	८७
१६—सहजोबाई	१०१
१७—भीमा	११३
१८—सुन्दरकुँवरि बाई	११६

स्त्री-कवि कौमुदी

एक समय "मीराबाई की शब्दावली" नाम से प्रकाशित हुआ है, जो हमारे पास है। बाकी तीन ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आये।

मीराबाई का कविता रावपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है गुजराती भाषा में भा. मीराबाई ने बहुत से पद लिखे हैं। हम व उनकी पुस्तकों से कुछ चुने चुने पद उद्धृत करते हैं —

१

राम नाम रस पीजै मनुज्यों, राम नाम रस पीजै ।
राज कुसग सदसग बैठि नित हरि चर्चा सुण लीजै ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ पित से बहाय दीजै ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर वाहिके रँग में भीजै ॥

२

धड़ी एक नहिँ आवये तुम दरसण विन मोय ।
तुम तो मेरे प्राण जी कामूँ जीवण होय ॥
घाम न भावै नीद न आवै विरह सतावै मोय ।
पायल सी घूमत फिल्ले रे मेरा दरद न जाणै कोय ॥
दिवस तो राय गमायो रे रैण गमाई रोय ।
प्राण गमायो मूरता रे नैग गमाई रोय ॥
जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीति किये दुग्न होय ।
नगर डिँडोरा फेरती रे प्रीति करो जनि कोय ॥
पथ निहाल्ले जगर सुहाल्ले कबी मारग जोय ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर तुम मिलियोँ सुल होय ॥

१६—धंपादे	
२०—रत्नकुँवरि धीवी	१३४
२१—प्रताप बाळा	१४६
२२—बाघेळी विष्णुप्रसाद कुँवरि	१६१
२३—रत्नकुँवरि घाई	१६७
२४—घट्टकजा घाई	१६८
२५—जुगलप्रिया	१७८
२६—रामप्रिया	१७८
२७—रणछोर कुँवरि	१८२
२८—गिरिराज कुँवरि	२०१
२९—हेमतकुमारी चौघरानी	२०३
३०—रघुवय कुमारी	२०६
३१—राजरानी देवी	२१६
३२—सरस्वती देवी	२२६
३३—धुंदेजा बाळा	२३७
३४—गापाल देवी	२४६
३५—रमा देवी	२५८
३६—राज देवी	२६७
३७—रामेश्वरी नेहरू	२७६
३८—कीरति कुमारी	२८६
३९—तोरा देवी शुक्ल 'लक्ष्मी'	२८८
	२९६

स्त्री-कवि कौमुदी

मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरखों चित राती ।
पल पल पिय का रूप निहाळूँ निरप निरप सुप पाठी ॥

६

स्वामी सब ससार के हो, सोंचे श्री भगवान् ।
स्थावर, जगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान ॥
सब में महिमा तेरी बेसी कुदरत के कुरवान ।
सूदामा के दारिद छोये धारे की पहिचान ॥
है मूठी तदुल की चाधी दीनी द्रव्य महान ।
भारत में अर्जुन के आगे आप भये रथवान ॥
चनने अपने कुल को देखा छुट गये तीर कमान ।
ना कोई मारे ना कोई भरता तेरा यह अज्ञान ॥
चेतन जीव तो अजर अमर है यह गीता को ज्ञान ।
मुक्त पर तो प्रभु किरपा कीजै बढो अपनी जान ।
मीरा गिरधर सरख तिहारी लगे चरण में ध्यान ॥

७

म्होंरी सुभ ज्युँ जानो ज्युँ लीजौ जी ।
पल पल भीतर पथ निहाळूँ दरमण म्होंने दीजौ जी ।
मैं तो हूँ बहू औगुणहारी औगुण चित मख दीजौ जी ॥
मैं तो दासी योंरे चरण जनों की मिल विदुरन मत कीजौ जी ।
मीरा तो सतगुरु जी सरणे हरिचरखों चित दीजौ जी ॥

४०—प्रियंवदा देवी	३१२
४१—सुभद्राकुमारी चौहान	३२७
४२—महादेवी वर्मा	३५४
४३—कुसुम-माला	३६६
४४—परिशिष्ट	४११
४५—कथा-प्रसंग	४२२

चित्र-सूची

१—रानी लक्ष्मीकुमारी देवी फालाफौकर (धवध)	६
२—मीराबाई (तिरगा)	१
३—रामप्रिया	१६२
४—हेमंतकुमारी चौधरानी	२०६
५—रघुवंश कुमारी	२१५
६—राजरानी देवी	२२५
७—गोपाल देवी	२५८
८—रमादेवी	२६७
९—राजदेवी	२७६
१०—रामेश्वरी नेहरू	२८६
११—तोरन देवी शुक्ल 'लली'	२९६
१२—सुभद्राकुमारी चौहान	३२०
१३—महादेवी वर्मा	३५४

बढत पल पल पटत दिन नहिं चलत लागे धार ।
 थिरछ के झ्यों पात दूटे लगे नहिं पुनि डार ॥
 भौ सागर अति घोर कहिए विषय ओखी धार ।
 सुरत का नर बाँध बेडा, बेगि पतरे पार ॥
 साधु सदा ते महता, चलत करत पुकार ।
 दास मीरा लाल गिरधर जीवना दिन धार ॥

१६

हरि करिहौ जणु की भीर ।

श्रौपदी की लाज राखी तुम बढायो भीर ॥
 भक्त कारण रूप नरहरि धरयो आप शरीर ।
 हरिनकस्यप मार लीन्हो धरयो नाहिन भीर ॥
 बूढे गजराज ताखो कियो बाहिर नीर ।
 दास मीरा लाल गिरधर दुःख जहाँ न पीर ॥

१७

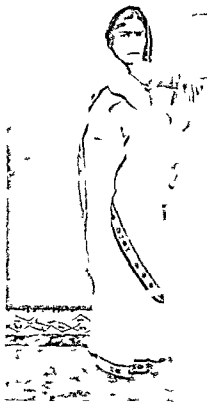
भई हौं बावरी मुन के बाँसुरी ।

खवन सुनत मोरी सुध बुध बिसरी लगी रहत तामें मनकी बाँसुरी ॥
 नेम धरम को न कीनी मुरलिया कीन विहारे पासुरी ।
 मीरा के प्रभु बस कर लीने सत सुनत ताननि की बाँसुरी ॥

१८

भजु मन धरन कमल अधिनासी ।

जेतइ होसे धरनि गगन चिन्व तेतइ सभ लठ जासी ॥



श्रामती राना साहवा १
कलाकार राय (

छोड़ि गया बिसवास सँगाती प्रेम की बात बताय ॥
 चिरह सँमुद में छाड़ गया छो प्रेम की नाब चलाय ।
 मीरा कहै प्रसु करै मिलोगे तुम बिन रह्यो न जाय ॥

२२

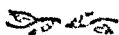
बसोवारो आया म्हारे देस थारो सौंवरो सुरत वाली बैस ।
 आऊँ आऊँ कर गया सौंवरा, कर गया फौल अनेक ॥
 गिण्ठे गिण्ठे बिस गई उँगली बिस गई उँगली की देख ।
 में बैरागिणि आदि की थारे म्हारे कद को सँदेस ॥
 बिन पार्या बिन साबुनः सौंवरा हुई गई धुइ सपेद ।
 जागिण होई जगल सब हेरूँ तरा नाम न पाया भेस ॥
 मोर मुकुट पीताम्बर सोहै घूँघर वाला फेस ।
 मीरा के प्रसु गिरघर मिल गये दूना षट्ठा सनेस ॥

२३

नातो नाम को मोमूँ तक न तोडयो जाय ।
 पाना ब्यो पीली पड़ी रे लोग कहें पिंड रोग ।
 छाने लोचन में किया रे राम मिलख के जोग ॥
 थावल वैद मुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हारी बाँह ।
 मूरख वैद भरम नहिँ जानै करक करेजे माँह ॥
 जाओ वैद पर आपने रे म्हारो नाँव न लेख ।

⊗ ज्ञात होना है कि उक्त समय भी भारत में साबुन बनता था ।

समर्पण



श्रीमती रानी साहवा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकॉकर-राज्य (अरवध)

को

सादर समर्पित

—'निर्मल'

सील सँतोष की केसर धोली, प्रेम प्रीति पिचकार रे ॥
 चढत गुलाल लाल भये धादल, बरसत रङ्ग अपार रे ।
 पट के सब पट खोल दिये हैं, लोक-लाज सत्र द्वार रे ॥
 होरी खेल प्यारी घर आये, सोई प्यारी पिय प्यार रे ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहार रे ॥

३०

होरी खेलत हैं गिरधारी ।

गुरली चग बजत डफ न्यारी, सँग जुगती भजनारी ॥
 बदन केसर छिरफत मोहन अपने हाथ निहारी ।
 भरि भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सजन पै डारो ॥
 छैलछरीने नवल काह सँग स्यामा प्रान पियारी ।
 गावत चारु धमार राग तहँ, दै दै कल करवारी ॥
 पाग जु खेलत रसिक सौँवरो, धातुपौ रस भज भारी ।
 मीरा प्रभु गिरधर मिले मनमोहन लाल निहारी ॥





शीमती रानी साहवा लक्ष्मीकुमारी देवी
कालाकांकर राज्य (शवध)

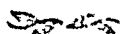
सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
 दस्त ही विकानी बदनामी भी सहूंगी मैं ।
 देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ मुलानी तजे,
 कलमा कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं ॥
 श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
 तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूंगा मैं ।
 नद के कुमार कुरवान ताणी सुरत पै,
 हूँ तो बुरकानी दि-दुआनी हो रहूंगी मैं ॥

इनकी कविता बहुत सरल और मनोहर है । ये श्रीकृष्ण भगवान की परमभक्त थीं । इनकी कविता द्वारा कृष्ण-भक्ति का अर्थवा परिषय मिलता है । कविता को भाषा पंजाबी और हिन्दी मिश्रित है । इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं —

१

झैल जा छधीला सब रग में रगोला यदा,
 चित्त का अझीला सब देवतां से न्यारा है ।
 मान गले सोदै, नाक मोता सेत माहै कान,
 मोहै मन कुञ्जल मुकुट सीस धारा है ॥
 दुष्ट जन मारे, सब जन रखवारे 'ताज'
 चित्त हित वारे प्रेम प्रीति कर वारा है ।
 नन्द जू को प्यारा जिन कंस को पझारा,
 वह घृन्दासन धार कृष्ण सादेव हमारा है ॥

समर्पण



श्रीमती रानी साहवा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकोण्डर-राज्य (अरुघ)

को

सादर समर्पित

—'निर्मल'

ज्यों ज्यों लै सलिल धर 'सेख' धोवै बार बार,
 त्या त्यों बल बुदन के बार मुकि जात हैं ।
 बैर के भाले केहीं नाहर नहनवाले,
 लोहू के पियासे कहूँ पानी ते अपात हैं ॥

२

धोस विधि आऊँ दिन धारीये न पाऊँ और,
 याही काज बाही घर धौंसनि की धारी है ।
 नेकु फिरि ऐहँ कैहँ दै री दै असोदा मारि,
 मा पै हठि मार्गें बसी और कहूँ डारी है ॥
 'सेख' कहै तुम सिखबो न कछु राम याहि,
 भारी गरिदाइतु की सोखे लेतु गारी है ।
 सग लाइ भैया नेकु न्यारो न कहैया कीजै,
 बलन बलैया लैकै मैया बलिदारी है ॥

३

कीनी चाहौ बाहिली नबोदा एकै बार तुम,
 एक बार जाय तिहि छलु डर दीजिये ।
 'सेख' कहौ आवन सुहेली सेज आवै लाल,
 सोखन सिरैगी मेरी सोख मुनि लीजिये ॥
 आवन को नाम सुनि सावन किये है नैन,
 आवन कहै मुकैसे आइ जाइ छीजिये ।

वक्तव्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का जिन लोगों ने अध्ययन किया है उन्हें भली भाँति ज्ञान है कि पुरुष कवियों की भाँति स्त्री-कवियों ने भी भाषा के भाँडार की पूर्ति करने में वास्तविक और बहुत कुछ प्रयत्न किया है। तुलसी, विहारी, देव और पदमाकर आदि का नाम प्राचीन साहित्य के उद्धारकों में लिया जाता है तो मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई और सुन्दरिकुँवरि बाई आदि ने उसके उद्धार का कम प्रयत्न नहीं किया है। यह ठीक है कि समय के प्रवाह और पुरुषों के प्रभुत्व से पुरुष लेखकों की कृतियों का प्रचार अधिक हुआ, जनता के सामने वह सांगोपांग रूप में आया अथवा उसका विज्ञापन अधिक हुआ। परन्तु परदा-अंधा के प्रबल प्रचार और प्रभुत्व से स्त्रियों को, सामाजिक, साहित्यिक और राज-नैतिक आदि कई प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ी। यही कारण है कि उनकी साहित्यिक उन्नति भी चहार दीवारियों के भीतर ही सीमित रही, बाहर जनता में उसका प्रचार नहीं हो सका। वास्तव में पुरुषों को जिस प्रकार स्वच्छन्दता मिली थी, उनको अपने विचारों के प्रगट करने की जो सुविधायें प्राप्त थीं यदि स्त्रियों को भी उसी प्रकार के सुयोग प्राप्त होते तो पुरुष कवियों के साथ साथ स्त्री-कवियों का भी विकास होता जाता और आये दिन दोनों की साहित्यिक सेवाओं की महानता से हिन्दी साहित्य की विशालता और भी अधिक प्रकट होती।

बरबर वसि करिबे को मेरो बसु नाहिं,
ऐसी वस कहुँ कान्ह कैसे बस कीजिये ॥

४

छलिवे को आई ही सु हौ ही छलि गई मनु,
छीकतौ न छल, करि पठई विहारी हौं ।
तूँ तो चल है पै आली हौं हीये अचल सी हौं,
सादी रूप रेख देखि रीझि भीजि हारी हौं ॥
'सेख' भनि लाल मनि बेंदी की विदा है ऐसे,
गोरे गोरे भाल पर बारि फेरि डारी हौं ।
वैरिन न होहु नेकु वेसरि सुधारि धरौ,
हौं तो बलि वेसरि के वेह वेधि मारी हौं ॥

५

कहूँ भूत्यो वेनु कहूँ घाड़ गई येनु कहूँ,
आये चित चैनु कहूँ मोरपंग परे हौं ।
मन को हरन को है अछरा छरन को है,
छाँह ही छुवत छवि छिन हौं कै छरे हौं ॥
'सेख' कहै प्यारी तूँ जौ जबहीं ते बन गई,
तब हौं ते कान्ह अँसुवनि सर करे हौं ।
याते जानियति है जू बेऊ नदी नारे नीर,
कान्ह वर विफल वियोग रोय भरे हौं ॥

३

प्राचीन स्त्री कवियों के साहित्य पर जब हम सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं तो हमें स्पष्ट रूप से उनका विशालता प्रगट होती है। उनका योग्यता उनकी लगन और उनके भाव विचार का रसायन का अनुमान स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी में सबसे पहली स्त्री कवि मीराबाई का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है। सूरदास जी ने कृष्ण भक्ति सबधी जिस प्रकार की सरस रचनायें की हैं उसी प्रकार मीराबाई ने भी कृष्ण प्रेम में अपनी सबस्व निष्ठा कर दिया। हममें सन्देह नहीं है कि सूरदास और मीराबाई को तुलना नहीं की जा सकती परन्तु मीरा का शुद्ध प्रेम, कृष्ण-कीर्तन में तरलीनता और काव्य का मधुरता ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने गिरिधर गापाल का ही सबस्व तथा इस लोक परलोक का देवता समझ लिया था। 'मेरे तो गिरिधर गापाल दूसरा न कोइ' पद में इसकी पूर्ण रूपण सृष्टि होती है। भक्ति-रस के काव्य द्वारा हिन्दी के भोडार का भरन वाली सहजाबाई और दयाबाई भा अपने गुरदेव चरखनास की दासी हुईं। रसिकविहारी, मजदासी और जुगलप्रिया ने भी महलों का सुख छोड़कर कृष्ण प्रेम में अपने को अर्पित कर दिया। उनका आश्रय देने वाली मधुरा और वृन्दावन की गलियाँ हुईं, उनका निवाण स्थान ठाकुर द्वारा हुआ, उनका भाजन भगवान का प्रभाव और पान चरखानु हुआ। जिस प्रकार महामा तुलसीदास ने राम काव्य की सृष्टि की और राम प्रेम की धारा को प्रवाहित किया उसी प्रकार सुन्दरि कुँवरि बाई ने, जो एक बड़े राज घराने की महिला थीं राम भक्ति से प्रभावित होकर अपने काव्य रच।

जत्र है न जरी कछु मरी जाति कन्त विन,
 नेह निरमोही के न मन्त्र मानियत है ।
 चन्दन चितैये बरै चोंदनी न चाही परै,
 चन्दा हू की ओट को चँदोवा तानियत है ॥

११

कहँ मोती मोंग कहँ वाजू घन्द भवा भरे,
 कहँ हार ककन हमेल टोंड टीक है ।
 ऐसे कै विसारी स्याम ऐसी बैस ऐसी बाम,
 पिहकि पपीहा की मी वार वार पा कहै ॥
 'सेख' प्यारे भ्राजु कालि आल चाल देखौ आइ,
 छिन छिन जैसी तन-छीजन की छीक है ।
 सेज मैन-सारा सी है सारी हूँ विसारी सी है,
 विरह बिलावि जावि तारे की सी लोक है ॥

१२

नेह सों निहारै नाहु नेकु आगे कीने याहु,
 छोंहियो छुवत नारि नाहियों करति है ।
 प्रीतम के पानि पेटि आपनी मुनै सकेलि,
 घरकि सकुचि हियो गाढो कै घरति है ॥
 'सेख' कहि आधे बैना धोलि करि नीचे नैना,
 हा हा करि मोहन के मनहि हरति है ।

रानी रामप्रिया ने भी राम-भक्ति की रचनायें कीं । इस में यह प्रगट होता है कि पुरुषों के साथ साथ स्त्रिया भी साहित्यिक दृष्टि से अपना विकास करती गईं यह बात दूसरी है कि कारण वन और समय के प्रभाव से उनकी रचनाओं का प्रचार नहीं हुआ और उनकी कृतियों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया ।

अन शृंगार रस में ही लीजिए । कहा जाता है कि स्त्रियों स्वभावतः लज्जागील होती हैं, ठीक भी हैं परन्तु हिन्दी में जन विहारी देव, सतिराम, पदमाकर और ग्वाल आदि कवियों ने शृंगारिक रचनायें कीं तब उनकी कृतियों का प्रभाव स्त्रियों पर पड़ना अनिवार्य था । फलतः सेज, प्रीणराय, चंपादे आदि स्त्रियों ने भी उत्कृष्ट शृंगार-रस की रचनायें रचीं । शेख के छंद हिन्दी के अछड़े से अछड़े शृंगारी-कवियों की रचनाओं से दफर ले सकते हैं ; हाँ यह बात अचर्य है कि पुरुष कवियों से स्त्री-कवियों की संख्या कम है । इसका कारण स्त्रियों की स्वभाविक लज्जा और मर्यादा की सीमा का संरक्षण भी हो सकता है ।

नीति से काव्यों के लिखने में जिस प्रकार गिरिधर कविराय, वृन्द आदि कवियों ने रचना-चातुर्य-चमत्कार दिखलाया है उसी प्रकार साई, छत्रकुंवरि बाई आदि ने नीति-काव्य की सुन्दर रचनाओं से हिन्दी का भांडार भरा है । वीर-काव्य लिखने में जिस प्रकार भूपण ने अपना नाम अमर किया है यद्यपि उस प्रकार की कोई उत्कृष्ट कवि स्त्रियों में दृष्टिगोचर नहीं होती परन्तु तो भी कीमा चारणी आदि स्त्रियों ने धोजस्विनी कवितायें लिखकर पुरुषों में वीरत्व का संचार किया है ।

१५

मानस को कहा वसि कौजतु है बावरी सु,
वासी सुरवास हू को वसि कै वसाऊँ री ।
मैनका का स्वामी कामवन्दला को कामी भोरि,
मैन हू की मानिनि को मन मोहि ह्पाऊँ री ॥
'सेर' मनमोहन के मोहन के मत्र जत्र,
मोहि जे न आवें ते विधाता पै न पाऊँ री ।
आरपननि लेत हाथ थदा चलयो आवे साथ,
नदिन को नीर थीर उलटि बहाऊँ री ॥

१६

खरी अनप्यात हू है धीरियो न प्यात है है,
भौंकि भौंकि जाल हू है नेक भये न्यारे हो ।
'सेर' कहे उनही मिराद पठये हो पिय,
भौंकी दैन आये तुम हिये मुकि हारे हो ॥
बोलो ताहि सों हो सौंहीं जारै कौन भौंहीं ऐसे,
पाँय परौं वाके जाके पाय पर वारे हो ।
प्यारी कहौ ताही सों जु रावरे सों प्यारे कहे,
आजु कालि रावरे परोमिन के प्यारे हो ॥

१७

ढीली ढीली हर्ने भरौ ढीली पाग ढरि रही,
दरे से परत ऐसे कौन पर टहे हो ।

जगभग सौ वर्षों के हिंदा में समस्या पूर्तियों का बाहुल्य हुआ, अनेक काव्य-सम्बन्धी पत्र भी निकले। हिंदा के अनेक कवियों ने समस्या पूर्तियों की ओर पैर बढ़ाया। द्विजवलदेव, प० नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीविका दत्त व्यास राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि ने इस क्षेत्र में अपना एक स्थान बना लिया। इसलिए उस समय छियों पर भी समस्या-पूर्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। बूढ़ी की श्री चन्द्रकला बाई ने इस क्षेत्र में खूब नाम कमाया और पुरुरा के मुन्दावले में सुन्दर से सुन्दर समस्या पूर्तियाँ करके कवि समाजों, कवि मंडलों से उपाधि, पदक और प्रशंसा-पत्र प्राप्त किये। उन्हीं दिनों में आमतो तोरन देवी शुक्ल 'खली' आमतो रमा देवी, सु देला बाबा आदि भी समस्या पूर्तियों और स्तुत रचनाओं के द्वारा यशस्विना हुईं।

समय का प्रवाह आगे बढ़ा, प्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। जितने ही प्रजभाषा में कविता करने वालों का झुकाव खड़ीबोली का आर हा गया। परिचित नाथू राम शंकर शर्मा सनेही, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' खड़ीबोली में काव्य-रचना करने लगे। ऐसे वातावरण का प्रभाव स्त्रियों पर भी पड़ा। आमतो तोरन देवी शुक्ल खली श्री रमादेवी, सु देलाबाबा आदि खड़ीबोली में कविता करने लगीं। परि वर्तन किये रुचिकर नहीं। समय और आगे बढ़ा। शिक्षा का विस्तार हुआ। नवीन युग के लोगों ने देश विदेश के साहित्य का अध्ययन किया। जो लोग खड़ीबोली में रचना करने वाले और प्रेमी थे उन

५

अरुमन में अरुमन नवल गुरुजन रग अपार ।
 ज्यों द्वारन सों द्वार त्यों घर द्वारन सों द्वार ॥
 घर द्वारन सों द्वार अलक अलकन लपटानी ।
 नैन नैन नैनान सुगल की अकथ कहानी ॥
 प्रेम सिधु छिल लनचि लहरि इत अति सरसानी ।
 कुँवरि सवुचि सतराय किमकि ठिग सपिन बुलाना ॥

६

प्यारी छवि मतरान लखि नव नागरी मुमुकाय ।
 विवस प्रेम दृग गति छकी इक टक रही चिताय ॥
 इक टक रही चिताय अमल अनउतरन छाकी ।
 इक चितवन मनुचान भरी इत प्रेमहिं पाकी ॥
 जुरन घुरन पुनि दुरन मुरन लोचन अनियारे ।
 भवनागति उर मैन, धान लागि फुट दुसारे ॥

७

यह छनि लखि लखि रीकि कै प्रेम पूर एकछाय ।
 कहत नई कहुँ दूर सों हँसिके दुहुन मुनाय ॥
 हँसिके दुहुन मुनाय कहत मिधि मिलन मिलार्ई ।
 द्रम घेलिन के मेल, पूल अति छन छनि धार्ई ॥
 यह सुनि नव नागरी जु, मिया सुख लखि मुसुकार्ई ।
 कहत भई हँसि वदि जु अहा मोहन की पार्ई ॥

पर पार्श्वगत्य और बहाली कवियों की रचनाओं का प्रभाव पड़ा। फलतः छायावाद और रहस्यवाद की रचनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीजयशंकर 'प्रसाद' और श्री निराला आदि कवियों ने इस पथ का संचालन किया। इसका प्रभाव शिचित स्त्रियों पर भी पड़ा। इस प्रकार की काव्य-रचना करने वालियों में श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कितनी ही धन्य नवयुवतियाँ इस पथ पर अग्रसर हो रही हैं और भविष्य में उनसे विशेष आशा भी है।

देश इस समय स्वतंत्रता के लिए धागे बढ़ रहा है। कितने ही कवियों ने देश-भक्तिपूर्ण रचना लिखकर समाज को जागृत करने में सहायता प्रदान की और राष्ट्रीय साहित्य का प्रादुर्भाव किया है। श्री 'सनेही' पं० माधव सुक्ल, शंकर जी, हरिश्रीधरजी आदि ने सफल और देश-प्रेम से पूर्ण कवितायें लिखीं। स्त्रियों पर भी ऐसे वातावरण का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा। श्री बुंदेलानाला, धीराज देवी, श्रीमती तोरन देवी गुक्ल 'लली' और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने देश-भक्ति पूर्ण बड़ी सुन्दर और उत्कृष्ट रचनायें रची हैं और पुरुष कवियों के साथ साथ इन स्त्री-कवियों का भी नाम आदर के साथ लिया जाता है।

उक्त विचारों से यह साफ प्रगट है कि पुरुष-कवियों के साथ स्त्री कवियों ने भी हिन्दी-साहित्य की उन्नति में अच्छा सहयोग दिया है और इनकी रचनायें आदर की पात्र हैं। प्राचीन स्त्री-कवियों पर

स्त्री-धरि रामुडी

पलकि रह्यो मन रूप म, दया न हो चित भग ॥
र मन तू निरसत नहा, है तू बडा कठार ।
सुन्दर म्याम सरूप तिन, क्या जीवत निम भार ॥
न्या कुँवरि या जगत म नहीं रह्यो धिर काय ।
जैमा रास सगय का तैमा यह जग हाय ॥
तान लाक नौ रपड न, िण जाव सब हर ।
न्या माल परचढ है मारै मर ना घर ॥
छाडा विषय विकार का राम नाम चितलाय ।
न्या कुँवरि या जगत म पसा काल बिताव ॥
तिन रसना तिन माल कर अतर मुमिग्न हाय ।
दया न्या गुरुवर का विरला जानै काय ॥
बहा पत्र न्यापत मरुत न्या मनिका म डार ।
धिरचर कान पतम म न्या न दूजा आर ॥
चरनदास गुरुद्व न, जान्ना कृपा श्रपार ।
दया कुँवरि पर न्या करि दिया ज्ञान निज मार ॥
पिय का रूप अनूप लगि काटि भानु उँजियाय ।
दया सकल दुख मिटि गव्या, प्रगढ भया सुर-भार ॥
यहा माह की नींद में, सोवत सर समार ।
दया जगी गुरु-दया सों, ज्ञान भानु उँजियाय ॥
प्रथम पैठि पाताल मं, धमकि चदै आकाश ।
दया सुरति नटिनी भइ, शौधि धरत निज स्वोस ॥

अधिपात करने से एक खास बात यह भा दिखाई पड़ती है कि प्रायः जिन स्त्रियाँ ने कविताये लिखी हैं वे बड़े घराने की थीं, खासकर रानियाँ । उस समय माधुर्य्य भक्ति का प्रभाव रानियों और बड़े घराने की स्त्रियों पर अधिक पड़ा । मीराबाईं से लेकर कीरति कुमारी तक, जो इस पुस्तक की कवियों में अंतिम कृष्ण-काव्य लिखने वाली देवी हैं, प्रायः सभी रानियाँ हैं और कृष्ण प्रेम के रग में रगकर रचनाये की हैं । रानियों पर इसका क्यों प्रभाव पड़ा, इसके अनेक कारण हा सकते हैं परन्तु उनमें एक उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी है । विशेषतः माधुर्य्य भक्ति की ओर प्रायः सुखा और सम्पन्न ही विशेष रूप से आकृष्ट हो भी सकते हैं ।

यह ठीक है कि पुरुष कवियों की अपेक्षा स्त्री-कवियों की संख्या बहुत न्यून है । परन्तु इस सम्बन्ध में खोच भी नहीं हुआ और न साहित्य के इस एक विशेष अङ्ग की रक्षा करने और सचय करने की ओर प्रयत्न ही किया गया है । हिन्दी में अनेक समग्र ग्रन्थ प्राचीन और अर्वाचीन हैं परन्तु किसी न स्त्रियों का रचनाओं को विशेष महत्त्व नहीं दिया । शिवमिह सरोज प्रामान समग्र है उसमें भा मूखन परिचय और कवियों की नामावली दी है । मिश्रबन्धुओं ने भा बड़े परिधम ने मिश्रबन्धु विनोद में जिन जिन कवियों की खोज की है वह वास्तव में बड़ा उत्कृष्ट काम है और जा किया गया है वही बहुत है परन्तु स्त्रियों की रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष ध्यान नहीं दिया गया है । हाँ राजपूताने के मुमसिद मुन्शी देवीप्रसाद जो ने वास्तव में इतिहास मयधी कुछ

जो जालिम होता है उससे बस नहीं चलता एक ।
करने को वह जुल्म बहाने लेता दूँढ़ अनेक ॥

७

धोबी और गधा

किसी एक धोबी ने कपड़े ले आने ले जाने को ।
एक गधा पाला, पर उसको देता थोड़ा खाने को ॥
एक बार धोबी कपड़े धो चला घाट से आता था ।
कपड़ों से गदहे को उसने बुरी तरह से लादा था ॥
पड़ता था रास्ते में जंगल वहाँ लुटेरे दीख पड़े ।
डर से होश उड़े धोबी के और रोगटे हुए खड़े ॥
कहा गधे से, “अबे, भाग चल, देख, लुटेरे आवेंगे ।
मारे पीरेंगे मुझको वे तुम्हे छीन ले जावेंगे ॥”
कहा गधे ने धोबी से तब “मुझे छीन वे क्या लेंगे ?”
धोबी बोला, “बड़ी बड़ी गठरी तुझ पर वे लादेंगे ॥”
कहा गधे ने, “दया करो मत उनसे मुझे बचाने की ।
नहीं नेक भी चिन्ता मुझको उनसे पकड़े जाने की ॥”
“मेरे लिये एकसा ही है, जहाँ कहीं भी जाऊँगा ।
वहीं लदेगा वोम बहुत, औ थोडा भोजन पाऊँगा ॥
“मुझे आपके पास अधिक कुछ भी सुख की आशा होती ।
संग तुम्हारे तो अवश्य रहने की अभिलाषा होती ॥”

गवेषणा की हैं जो उनके इतिहास सन्दर्भी विद्वता को प्रगट करती हैं । हमलिये हिन्दी में एक ऐमे समग्र की विशेष आवश्यकता प्रतीत हो रही थी जिसमें केवल स्त्री-कवियों की ही रचना संग्रहीत होतीं और उनके संदर्भ में अध्ययन की सामग्री एक ही पुस्तक में एकत्रित की जाती । अस्तु ।

इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव करके ही हमने इस पुस्तक के लिखने का प्रयत्न किया है । इस पुस्तक में स्त्री-कवियों की जीवनी और उनकी चुनी हुई कवितायें एकत्रित की गई हैं । पुस्तक के अंत में कुछ नवोदित स्त्री कवियों की रचनाओं का एक एक नमूना भी दिया गया है । परिशिष्ट में संग्रहीत कविताओं में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ तथा अंतर्गत कथायें भी लिख दी गई हैं ।

यहाँ हम अपने उन मित्रों, सहयोगियों तथा उन महिलार्थों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिनकी कृपा से यह पुस्तक तैयार हुई है । पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० कृष्ण बिहारी मिश्र, स्वर्गीय गोविन्द गिरला भाई, राव रामनाथ सिंह (बूँदी) तथा काशी, रीवा के मित्रों के हम हृदय से कृतज्ञ हैं । स्वर्गीय मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ के हम बहुत कृतज्ञ हैं जिनकी 'महिलामृदुवाणी' आदि पुस्तकों से हमें विशेष सहायता मिली है । खासकर हम अपने आदरणीय मित्र पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० के विशेष ऋणी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर हिन्दी में स्त्री कवियों के कान्यो पर समालोचनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन द्वारा इस पुस्तक का स्थायित्व बढ़ा दिया ।

सारांश रूप में कवि और कविता दोनों का खासा अचड़ा परिचायक है, नीचे उद्धृत करते हैं।

“I have read today your very beautiful poem 'मेरा नया बचपन' in the Madhuri. There are lines in the poem which betray a heart behind them almost capable of an emotional abandon without which no genuine poetry is ever possible.”

तात्पर्य यह कि मैं ने 'माधुरी' में आपकी 'मेरा नया बचपन' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर कविता पढ़ी। उसमें कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं, जिनसे उनके पीछे छिपे हुये हृदय की भावुक मस्ती प्रगट हो जाती है जिसके बिना वास्तविक कवित्व असम्भव है।

सुभद्राकुमारी जी अत्यन्त सुशील हैं। आपका स्वभाव बहुत नम्र और मिलनसार है। देश और साहित्य को अभी आपसे अनेक आशाएँ हैं। आपके एक पुत्र और एक कन्या है। आज कल आपकी कविता के अही नये विषय हैं।

आपकी कविताओं का एक संग्रह 'सुकुल' के नाम से छप चुका है। हम यहाँ आप की कुछ सुनी हुई कविताएँ उद्धृत करते हैं :—

१

जालियॉत्राला वागुं में वसन्त

यहाँ कोकिला नहीं काक हैं शोर मचाते।
काले काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते ॥

इस पुस्तक को लिखने में हमने इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि सभा स्त्री कवि चाहे वे प्राचीन हों अथवा अर्वाचीन, छोटी हों या बड़ी सभी की कोई न कोई रचना नमूने के रूप में अवरय दी जाय। परन्तु जिन महिलामों और स्त्री कवियों की रचना का उल्लेख पुस्तक में हमारी अनभिज्ञता वश न हुआ हो तो वे कृपया हमें समा करके सूचित कर दें जिस से भविष्य में सुधार कर दिया जाय।

पुस्तक में त्रुटियां धनक होंगी। क्योंकि हम सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते। इसलिये जो सज्जन इसकी त्रुटियों के सम्बन्ध में सूचित करेंगे उनके हम कृतज्ञ होंगे। हमने यथा साध्य स्त्री कवियों के चित्रों का दान का भी प्रयत्न किया है, बहुत से चित्र अभी तक हमें मिले भी नहीं। इसलिये हमारा विचार है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण मेट्टर की दृष्टि से और भी विशिष्ट रूप में निकाला जाय। हिन्दी प्रेमियों ने यदि इस पुस्तक को अपनाया और हमें प्रोत्साहित किया तो हम और भा अनेक नई और उपयोगी चीजें भेट करने का प्रयत्न करेंगे।

भारत काव्यालय,
खीबर प्रेस, प्रयाग
२०-२ ३१

}

विनीत

ज्योतिमसाद मिश्र 'निर्मल'

सुन्दर वस्त्राभूषण सज्जित देस चकित हो जाती है ।
 सच है था फेरल सपना है, कहती है रुक जाती है ॥
 पर सुन्दर लगती है, इच्छा यह होती है कर ले प्यार ।
 प्यारे चरणों पर धनि जाये करले मन भर के मनुहार ॥
 इच्छा प्रबल हुई, माता के पास दौड़ कर जाती है ।
 वस्त्रों को सँवारती उसको आभूषण पहनाती है ॥
 उमो भोंति आश्चर्य मोदमय आज मुझे किम्कता है ।
 मन में उमड़ा हुआ भाव धम मुँह तक आ रुक जाता है ॥
 प्रेमो-मत्ता होकर तेरे पास दौड़ आती हूँ मैं ।
 तुझे मजाने या सँवारने में ही सुख पाती हूँ मैं ॥
 तेरी इस महानता में क्या होगा मूल्य सजाने का ।
 तेरी मय मूर्ति का नकली आभूषण पहनाने का ॥
 किंतु क्या हुआ माता मैं भी तो हूँ तेरी ही सतान ।
 इसमें ही सतोष मुझे है इसमें ही आनन्द महान ॥
 मुममी एक एक की वन तू तीसकाटि की आन हुई ।
 हुई महान समी भाषाओं की तू ही सिरताज हुई ॥
 मेरे लिए बड़े गौरव की और गर्व की है यह बात ।
 तेरे ही द्वारा होगा बस भारत में स्वातंत्र प्रभाव ॥
 असहयोग पर भर मिट जाना यह जीवन तेरा होगा ।
 हम होंगे स्वाधीन विश्व का वैभव-धन तेरा होगा ॥

परिचय

हिन्दी संसार में अद्य तक न मालूम कितने गद्य और पद्य के सम्पादित संग्रह-ग्रंथ निकल चुके हैं, पर अभी तक कोई ग्रंथ ऐसा नहीं प्रकाशित हुआ जिसमें केवल स्त्री-कवियों के काव्य को ही एकत्रित किया गया होता। इस उपेक्षा का कारण या तो यह हो सकता है कि यह कार्य स्त्रियों से सम्बन्ध रखता था, अथवा स्त्री-रचित काव्य इतना अधिक और उच्च श्रेणी का नहीं समझा गया जिससे उसको स्वतन्त्र स्थान दिया जाता। जो कुछ भी हो, तात्पर्य केवल इतना ही है कि जैसा कुछ भी काव्य था—अच्छा या घुरा, थोड़ा या बहुत—उसका एक स्वतन्त्र संग्रह निकलना नितान्त आवश्यक था। परन्तु प्रत्येक कार्य का होना अनुकूल अवसर पर ही अवलंबित रहता है। अतः कदाचित इस प्रकार का ग्रंथ अनुकूल समय की ही प्रतीक्षा में अद्य तक रुका हुआ था।

आज मुझे यह देज कर अत्यन्त हर्ष है कि वह समय आ गया जब “स्त्री-कवि-कौमुदी” को हिन्दी-संसार के सामने आने का सौभाग्य मिला है। स्त्री-कवियों के काव्य का यह ग्रंथ अपने ढंग का अकेला है। यह बिल्कुल ही नवीन ग्रंथ है, जिसने हिन्दी साहित्य की भारी कमी की पूर्ति की है। प्राचीनकाल से लेकर अद्य तक हिन्दी काव्य-गगन में न मालूम कितनी स्त्री-कवियों ने विचरण करके अपनी प्रतिभा से इसे आलो-

बहुत बड़ी आशा से आई हूँ मत कर तू मुझे निराश ।
एक बार, वस एक बार तू जाने दे प्रियतम के पास ॥

९

फूल के प्रति

डाल पर के मुरझाये फूल । हृदय मे मत कर वृथा गुमान ।
नहीं है सुमन-कुञ्ज में अभी इसीसे है तेरा सम्मान ॥
मधुप जो करते अनुनय विनय बने तेरे चरणों के दास ।
नई कलियों को खिलती देख नहीं आवेंगे तेरे पास ॥
सहेगा कैसे वह अपमान उठेगी वृथा हृदय मे शूल ।
मुलावा है मत करना गर्व डाल पर के मुरझाये फूल ॥

१०

ठुकरा दो या प्यार करो

देव ! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं ।
सेवा मे बहुमूल्य भेंट वे कई रङ्ग के लाते हैं ॥
धूम-धाम से साज-वाज से वे मन्दिर मे आते हैं ।
सुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तु वे लाकर तुम्हे चढ़ाते हैं ॥
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई ।
फिर भी साइस कर मन्दिर में पूजा करने को आई ॥
धूप-दीप नैवेद्य नहीं है भाँकी का शृंगार नहीं ।
हाय ! गले मे पहनाने को । फूलों का भी हार नहीं ॥

कित किया, इसका कम-बढ़ और विस्तृत इतिहास हमारे पास अब तक कोई नहीं था। हिन्दी-साहित्य के भिन्न भिन्न कालों में कितनी खी कवि हुईं, और कितनी श्रेणी की उनकी रचनायें हुईं, इसका भी पूरा परिचय बहुत कम लोगों को था, क्योंकि उनके काव्य का तुलनात्मक समालोचना एक स्थान पर कहीं भी देखने को नहीं मिलती थी। यद्यपि 'कविता कौमुदी' में कुछ प्राचीन और वर्तमान खी-कवियों का परिचय दिया गया है पर वह इतने गौण रूप में है कि खी रचित काव्य का वास्तविक मूल्य उससे कुछ मालूम नहीं होता। उसमें न हम विस्तृत जीवना हा पाते हैं और न कवियों के काव्य की सम्यक समालोचना ही। यद्यपि "खी-कवि-कौमुदी" इस दृष्टि में बहुत ही समूल्य ग्रन्थ है; क्योंकि जिन ग्रन्थों के सम्बन्ध में हमें पग पग पर टिप्पणियों का सामना करना पड़ता था, इसकी स्थायी 'कौमुदी' में वह सब सरल हो जायेंगे। प्रस्तुत ग्रन्थ का श्रेय प० ज्यातिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल' को है वास्तव में आपका यह प्रयास सगद्नीय है। निर्मल जी ने परिश्रम और गाम्भ्यतापूर्वक इस ग्रन्थको तैयार किया है तथा सघनिकार रूप में इसको उपयोगी बनात का प्रयत्न किया है। प्राचीन और आधुनिक काल की जिन जिन खी-कवियों के विषय में आप पता खगा सकें हैं, उन सभी का काव्य का घापने यद्वा खोज और परिश्रम के साथ एकत्रित किया है। इस प्रकार जिन खी कवियों के नाम तथा रचनायें हमें अन्य कहीं नहीं मिलती थीं, इसमें समशीत की हुईं पाई जाते हैं। इससे ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रत्येक खी-कवि का जीवनी उसके काव्य की

गए तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण ,
 नहीं पर मैंने पाया सीख, बुन्दारा सा मनमोहन गान ।
 नहीं अब गाया जाता देव ! थकी अँगुली हैं ढीले तार,
 विश्ववीणा में अपनी आज, मिला लो यह अस्फुट भङ्गार !

२

अतिथि से—

वनवाला के गीतो सा निर्जन विखरा है मधुमास,
 इन कुञ्जों में खोज रहा है सूना कोना भन्द वतास ।
 नीरव नभ के नयनों पर हिलती हैं रजनी की अलकें,
 जाने किसका पंथ देखतीं बिछकर फूलों की पलकें ।
 मधुर चॉदनी धो जाती है खाली कलियों के प्याले,
 विखरे से हैं तार आज मेरी वीणा के मतवाले ।
 पहली सी भङ्गार नहीं है और नहीं वह मादक राग,
 अतिथि किन्तु सुनते जाओ टूटे तारों का करुण विहाग !

३

कौन ?

डुलकते औसू सा सुकुमार विखरते सपनों सा अज्ञात,
 चुराकर ऊषा का सिन्दूर मुस्कराया जब मेरा प्राव ।
 छिपाकर लाली मे चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन ?
 हँस उठे हूँकर टूटे तार प्राण में मँडराया वन्माद ।

सम्यक समालोचना और साथ ही कुछ चुनी हुई कविताओं को भी उद्धृत किया गया है जिससे ग्रंथ बड़ा रोचक बन गया है। साथ ही यह भी दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी-साहित्य के जिस युग में जो भाव, जो भाषा और जो शैली प्रधान रही, प्रायः उसी भाव से प्रभावित होकर उसी युग की प्रचलित काव्य, भाषा और शैली में स्त्रियों ने भी अपना काव्य रचा। इसलिए चिरकाल तक उनके काव्य का विषय भी धार्मिक ही रहा और उसमें भी राम और कृष्ण की भक्ति ही प्रधान रही। वर्तमान काल में जैसे जैसे काव्य के विषय, उसकी भाषा और शैली में परिवर्तन हुआ स्त्रियों के काव्य की गति भी उसी ओर मुड़ गई जो आज काल की स्त्री-कवियों की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यह प्रभाव यहाँ तक पटा है कि वर्तमान स्त्री-कवियों में से कुछ कवियों ने तो अपने काव्य को 'छायावाद' में ही डुबा रखा है। मारांश यह कि प्रायः साहित्य के प्रत्येक युग में स्त्रियों ने साहित्य-क्षेत्र में अपना कौशल और प्रतिभा दिखलाने का प्रयत्न किया है और इसी से प्रत्येक युग की छाप उनके काव्य पर लगी दिखाई देती है। पुस्तक-प्रणेत्या ने उन कवियों की रचनाओं का भी रसास्वादन कराया है जो अभी काव्य के शैशवकाल में ही विचरण कर रही हैं और इसलिये जिनकी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। उनके काव्य को देख कर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें से कई कवि ऐसी हैं जिनमें प्रतिभा, कल्पना-शक्ति और कवित्व-शक्ति पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, और वह उत्तम

बहुत दुखिया हूँ हे भगवान, हमे मत दो अब्र जीवन-दान ।
स्वप्नमय ही रहने दो प्राण, यही है मेरी प्रिय निर्वाण ॥

—कुमारी कमला जी, काशी

२०

विजयादशमी

आई है यह आज आर्य्य तिथि विजयादशमी ।
किन्तु हो रही राम । आर्य्य भावो की भस्मी ॥
लंक-विजय का यदपि सुभग सदेश सुनाती ।
वीर वर्ग के हृदय उदय उत्साह कराती ॥
राघव ने इस दिवस दुष्ट दानव दल जीता ।
मुनी जनों का पथ किया विघ्नो से रोता ॥
जननि जाति की सत्य धर्म की रक्षा की थी ।
गो द्विज के हित प्रवल प्रचण्ड प्रतिज्ञा ली थी ॥
फेवट शवरी आदि अष्टूतों को अपनाया ।
वन के वानर ऋक्ष जाति को मित्र बनाया ॥
आर्य्य-सभ्यता विजित विदेशों में फैलाई ।
भाव-प्रेम पितृ भक्ति जगज्जन को सिखलाई ॥
आर्य्य, देवियों आज अरक्षित दिखलाती हैं ।
पग पग पर वे रोज प्रचुर पीड़ा पाती हैं ॥
त्य। हो रहा नष्ट सुरभि जीवन खोती हैं ।
अमित आर्य्य संतान काल-कवलित होती हैं ॥

श्रेणी की कवि हो सकती हैं यदि उनको प्रोत्साहन दिया जाय । यद्यपि उनकी कुछ कवितायें साधारण्य श्रेणी की भी हैं परन्तु ऐसी कविताओं की भी कमी नहीं है जो काव्य के गुणों से सब प्रकार से विभूषित हैं और काव्य का कसौती पर कसने से उत्तम श्रेणी में धा सकती हैं । पुस्तक के प्रारम्भ में "हिन्दी में स्त्रियों का काव्य साहित्य" शीर्षक विवेचनात्मक लेख से ग्रन्थ की उपयोगिता दृढ़ी बढ़ गई है ।

मुझे आशा है कि 'स्त्री-कवि कौमुदी' को हिन्दी प्रेमी सप्रेम धननायेंगे और इसको समुचित धादर देंगे । साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा लेखक ने केवल स्त्री कवियों का प्रति ही सद्मानुभूति नहीं दिलाई है, बल्कि हिन्दी-साहित्य के विस्तरे हुए रत्नों का भी एकत्रित कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है ।

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्व विद्यालय
११ ३ ३१

}

चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए०
(हिन्दी प्रोफ़ेसर)

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

श्रेणी की कवि हो सकती हैं यदि उनको प्रोत्साहन दिया जाय । यद्यपि उनकी कुछ कवितायें साधारण्य श्रेणी की भी हैं, परन्तु ऐसी कविताओं की भी कमी नहीं है जो काव्य के गुणों से सब प्रकार से विभूषित हैं और काव्य की कसौटी पर कान्ने से उत्तम श्रेणी में धा सकती हैं । पुस्तक के प्रारम्भ में 'हिन्दी में स्त्रियों का काव्य साहित्य' शीर्षक विवेचनात्मक लेख से ग्रन्थ का उपयोगिता दृष्टी बट गई है ।

मुझे धारणा है कि 'धा-कवि-कौमुदा' को हिन्दी प्रेमा सप्रेम धरनायेंगे और इसको समुचित धावर देंगे । साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत हा उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा लेखक ने केवल स्त्री कवियों क प्रति हा सहानुभूति नहीं दिलाई है, बल्कि हिन्दी-साहित्य के विखार हुए रत्नों का भी एकत्रित कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है ।

हिन्दी विभा (}
 प्रयाग विश्व वि०,लय
 १५ ३ ३१

चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए०
 (हिन्दी प्रोफेसर)

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

काल या आधुनिक काल, इस कला-काल का अनुगामा हाकर गद्य-साहित्य का प्रचुर उन्नति करता हुआ आज तक चल रहा है ।

उक्त तान कालों में हिन्दी साहित्य की जा रचना हुई है और उसमें काव्य को जो विशाल अट्टालिका निर्मित हुई है उसे यदि हम तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उसके दो खंड दिखलाई पड़ते हैं । एक खंड का ता हम पुराण-काव्य (पुराण कवियों क द्वारा रचा गया काव्य) कह सकते हैं और दूसरे को खी काव्य । प्रथम का और तो हमारे कतिपय विद्वानों ने अपना विचार-पूख दृष्टि ढाली है किन्तु द्वितीय खण्ड को धार किमा ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया । इमालिये इस खंड की थालो खना पर्यालाचना आदि अथ तक मुचारु रूप से नहीं हा सका । इम कहने में काई अत्युक्ति न होगी कि खी-साहित्य की मुख्यस्थित एव मुमगाटित रूप से उस पर विवेचनारमक प्रकाश डालत हुए किमी ने हिन्दी-मसार के सम्मुख उपस्थित नहीं किया कि जिसमे खी-समाज और पुरुष समाज दाना इस एक विशेष अंग का ही समावलोकन और पूर्ण अध्ययन कर सकते । प्रस्तुत ग्रय हा इम उद्देश से रचा जाकर उक्त न्यूनता की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास यह प्रगट करता है कि संस्कृत में कइ ऐमा दविर्पा हुई हैं जिन्होंने विविध विषया पर ग्रथा का रचना करके संस्कृत-साहित्य का गौरवाम्बित किया ह । साहित्य-सेवी श्रीमती श्रीजावता (श्रीजावती नामक भीजगणित ग्रन्थ की रचने वाली) विक्ट नितम्बा देवी (उक्तुष्ट काव्य रचने वाली) कवयित्री आदि के

नामों से ध्वंस ही परिचित होंगे । धतः इस संबंध में विशेष न कह कर हम केवल यह ही दिखलाना चाहते हैं कि हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही स्त्रियों ने साहित्य के क्षेत्र में कार्य करना प्रारंभ किया है और अब तक करती आई हैं । संस्कृत-साहित्य के पश्चात् प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्यों में भी स्त्रियों ने न्यूनाधिक रूप में सहयोग दिया है । इसके पश्चात् जब से हिन्दी-साहित्य का विकास प्रारंभ हुआ उन्होंने इसके क्षेत्र में भी परियाप्त सफलता और सराहनीय सुयोग्यता से रचना-कार्य किया है । हम यहाँ उनके इसी कार्य (साहित्य-रचना-काल) के ऐतिहासिक विकास का सूक्ष्म वर्णन करते हैं ।

हिन्दी के 'जय-काव्य' की रचना में जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का इतिहास और विद्वानों का अन्वेषण बतलाता है, स्त्रियों ने कोई भी भाग नहीं लिया । 'जय-काव्य' के काल में देश और समाज जटिल राज-नीतिक परिस्थितियों के कारण अशांत और उद्ध्वस्त था । उस समय में केवल वैसे ही काव्य की रचना हो सकती थी जिनमें वीर रस की वह धारा उमड़ती हो जो प्रत्येक व्यक्ति की रग-रग में शौर्य-रक्त का प्रखर प्रवाह कर दे और वह देश की सत्ता-स्वातन्त्र्य तथा गौरव की रक्षा में अपना बलिदान करके देश और समाज का भाल ऊँचा करे । ऐसे समय में और इस प्रकार के साहित्य की रचना के क्षेत्र में स्त्रियाँ कितना कार्य कर सकती हैं यह स्पष्ट ही है । युद्ध के समय में स्त्रियों का कर्तव्य बड़ा संकटाकीर्ण हो जाता है । उन्हें अपनी लज्जा बचाते हुए अपने देश और समाज को भी विगर्हित एवं कलंक-पंक-पंकित होने से

बचाना पड़ता है और उनका मस्तिष्क इस दशा में ऐसा नहीं रहता कि वे साहित्य-रचना करें। यदि पुरुष अपने पुरुषत्व का त्याग कर कायरता के काने में धँस विभ्राम करें और दश तथा समाज की स्वातन्त्र्य सौख्य की अवहेलना करके युद्ध से उन्मत्त हों और कवि लाग अपने चार कड़खों से उन मृत प्राय शरारा में शौच्य-आनन से द्रुतगामा रक्त का प्रवाहन न करें तो अवश्यमेव स्त्रियों का यह कर्तव्य होगा कि वे वीरता के साथ निकल कर वीरों के कापुट्यत्व की तीव्र शब्दों में विगर्हणा करत हुए वारता के कड़खे गायें और समरागण में चढा-नृत्य करें। जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं उस समय में यह दशा न थी। वीर राजपूत स्वयमेव देश जाति का रक्षा के लिए अपना रक्त बहा रहे थे। वार कवि अपने श्रोज पूण काय से उन्हें प्रोत्साहित और उत्तजित करते हुए रणागण में वार-जीवन के आदर्श का उपदेश दे रहे थे। अतः स्त्रियों के लिये यह आवश्यक न था कि वे वीर-काय गात हुए रणागण में आवें। उनका एक अनिवाच्य कर्तव्य यहाँ रह गया था कि वे विजयध्री को देखकर प्रमोदामाद से वीर पुरुषों की धारती उतारें या पराजय-कालिमा को देखकर शत्रुर्घा के अनाचार प्रारभ के पूव ही सुहार आदि के द्वारा देश और समाज की लज्जा की रक्षा करते हुए अपने पंच भौतिक पिंजर से प्राण-पथेरघ्रों को निकाल कर स्वर्गाराहण करें और वहाँ अपने वीर-नाति प्राप्त प्रियजनों से पुनर्मिलन प्राप्त करें। यहाँ मुख्य बात है कि जय-काव्य-काल में स्त्रियों ने साहित्य-रचना के चंद्र में कार्य नहीं किया।

भक्ति-काव्य-काल में देश और समाज शांत-सुख का अनुभव करने लगा था और धार्मिक आन्दोलन तथा भक्ति का प्रचार-प्रसार प्राचुर्य के साथ होने लगा था। यह एक स्पष्ट बात है कि धर्म की शाखा उसकी सत्ता और महत्ता का जितना भाव स्त्रियों के हृदयों में रहता है है उतना कदाचित् पुरुषों के नहीं। स्त्रियों का हृदय अत्यन्त कोमल, सरस और सरल होता है, उसमें रागात्मिका-वृत्तियों (feelings) का ही प्राबल्य और प्राधान्य रहता है। बोध-वृत्ति साधारणतया स्त्रियों में उतने अच्छे रूप में नहीं मिलती जितनी वह पुरुषों में मिलती है। इसीलिये स्त्रियाँ भक्ति और प्रेम की और विशेष रूप से समारूढ और प्रवर्तित हो जाती हैं। इन दोनों का प्रभाव उनके जीवन पर मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। भक्ति-काल में भक्ति-काव्य की रचना का जो प्रसार सूर और तुलसी जैसे महाकविराजों की कला-कौशल से तत्पार हुआ उसकी छटा भारत-चिति पर ऐसी छहरी कि स्त्री-पुरुष सभी उससे प्रभावित हो गए। भक्ति-काव्य की सरिता दो मुख्य धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रथम है कृष्ण-भक्ति-धारा और दूसरी राम-भक्ति-धारा। प्रथम-धारा की काव्य-लहरी में संगीतात्मक-कलरव, भक्ति-भाव गाम्भीर्य, प्रेम-पीयूष-रस और काव्य-कजावली का सुप्रद-सौरभ पूर्ण विनोदकारी विलास का पावन प्रकाश था। द्वितीय धारा में जीवन-घटनाओं की जटिल भँवरें तो विशेष थीं किन्तु प्रथम धारा की सम्मोहक सामग्री उतने अच्छे रूप में उपस्थित न थी। इसीलिये भावुक कवियों, सरन हृदयों तथा मृदुल-मानस-शीला महिलाओं ने

प्रथम धारा को ही विशेष अपनाया है। निरकर्ष यह है कि हमारी कवियों ने विशेष रूप से कृष्ण-काल की हा रचिर रचना की है। कृष्ण-काव्य की रचना-परम्परा उस वज्रभाषा में चला है जो मधुर, रम्य-पूर्ण, भाव-रम्य तथा कोमल कान्तिवती है और जो स्त्रियों का प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। कृष्ण-काल का संगीत-तत्व भी स्त्रियों के लिए विशेष आकर्षण का कारण ठहरता है। कृष्ण-काव्य में कृष्ण का बाललीलाओं (जिन में वाग्मय्य भाव का ही प्रधानता रहता है) तथा उनके यावन-काल की प्रेम लीलाओं का (जिन में शृङ्गारात्मक रीति भाव के माधुर्य सरसस्नेह के सौरभ और मज्जुल भावों के भाव का प्राचुर्य रहता है) का ही वर्णन किया जाता है और इसके यह दोनों अंश खा हृदय के मुख्य तत्व हैं। यह बात राम-काव्य में नहीं। इसी-लिए स्त्रियों ने राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य को ही अपने लिए उपयुक्त मान कर ग्रहण किया है। हाँ, कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जिन्होंने राम-काव्य के पवित्र आदर्शों को देखते हुए अपने लिए उस अर्थात् ममता और अपनाया है किन्तु इसकी सख्या उँगलियाँ पर हाँ गिनी जा सकता है। राम-काव्यकार पुरुषों की भी सख्या कृष्ण-काव्यकारों की अपेक्षा बहुत ही अधिक सकीण है। क्योंकि राम-काव्य कवियों के सरस हृदयों के प्रायः अनुपयुक्त ही ठहरता है।

अब यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि भक्ति-काल से स्त्रियों ने पुरुषों के साथ भक्ति-काव्य की रचना के क्षेत्र में कार्य करना प्रारंभ किया और परियाप्त सक्रियता के साथ वे आगे बढ़ती गईं। भक्ति-काव्य के केन्द्र

उन्होंने स्थानों में विशेष रूप से बने थे जो भगवान के लीला-धाम तथा पवित्र तीर्थ-स्थान थे। इन स्थानों में सभी हिन्दू मात्र भक्ति-भाव से प्रेरित होकर सदैव आया-जाया करते थे। स्त्रियाँ भी इन स्थानों में आतीं और भक्त कवियों के भक्ति-काव्यामृत से परिष्णात होकर भक्ति-काव्य की रचना करने के लिए उत्कण्ठित और उत्साहित होती थीं। महात्मा सूरदास आदि के कलित-पदों को सुनकर उन्हें हृदयंगम करते हुए अपने साथ ले जातीं और गाया करती थीं। कृष्ण-काव्य सच पूछिए तो देश के प्रत्येक घर को स्त्रियों के कलकंडों में रम-जम कर तथा उनकी रसनाओं से सस्वरित होकर गुंजायमान करता था और श्रव भी करता है। इसलिये इस काव्य से प्रभावित होना न केवल पुरुष-समाज के ही लिए अनिवार्य हुआ वरन् स्त्री-समाज के लिए भी वह स्वाभाविक सा हो गया।

भारत का इतिहास इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालता कि मध्य-काल (१५ वीं, १६ वीं, १७ वीं, १८ वीं शताब्दियों) में स्त्री-शिक्षा का व्यवस्था-विधान देश में सुचारु रूप से प्रवर्तित न था। जहाँ तक जान पड़ता है कदाचित् स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था उस समय यहाँ यथोचित रूप में न थी। यह दूसरी बात है कि राव-राजाओं तथा कुछ धनी-मानी शिष्ट जनों के यहाँ स्त्री-शिक्षा का कुछ संचार या प्रचार रहा हो। साधारण रूप से स्त्री-समाज में शिक्षा का प्रचार न था। ऐसी दशा में यह आशा कदापि नहीं की जा सकती कि स्त्रियाँ काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके साहि-

त्यिक परम्परा से पूर्ण परिचित होते हुए काव्य की रचना करने में समता और सफलता प्राप्त कर सकतीं। हीं वे स्त्रियाँ अथवा अपवाद रूप में आ सकती हैं जिन्हें या तो यथोचित साहित्य की शिक्षा दी गई थी या जो साहित्यज्ञों अथवा सुयोग्य कविता के सपर्क का सौभाग्य प्राप्त कर सकती थीं। वस्तुतः प्रायः जितनी स्त्रियों ने इस काल में काव्य रचना की है वे बड़े घरों की ऐसी ही स्त्रियाँ थीं जिन्हें शिक्षा और सरसग दोनों या दोनों में से किसी एक की प्राप्ति का सौभाग्य मिला था। उनमें भी बहुत ही कम एसा स्त्रियाँ हैं जिन्होंने छंद शास्त्र की नियम नियंत्रित छंदों में रचनाएँ की हों। प्रायः स्त्रियों ने पद-शैली में ही अपना काव्य लिखा है। क्योंकि प्रथम तो कृष्ण काव्य की यही शैली मुख्य और विशेष प्रचलित रहती है और दूसरे इसकी रचना छंद रचना के समान अम-साध्य तथा कठिन नहीं है। जिन थोड़ी भी स्त्रियों ने छंदारमक काव्य लिखा है उनमें भी यह बात दृष्टा जाता है कि उन्होंने भी केवल वे ही छंद लिए हैं जिनकी रचना सरल, साधारण और स्पष्ट है। इतना होते हुए भी स्त्रियाँ ने इस बात का सफल प्रयत्न किया है कि वे उन सब प्रधान शैलियों में रचनाएँ करें जो उस समय के साहित्य क्षेत्र में महाकवियों के द्वारा प्रचलित की जाकर उपस्थित थीं।

भक्ति-काल के परचाएँ जब हिन्दी-क्षेत्र में कला-काल का उदय और विकास हुआ और लक्षण ग्रंथों की रचना परम्परा अथाध रूप से चलने लगी तब स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न चल सकीं और अपने रचना कार्य को स्मगित करने के लिए बाध्य हुई। शिक्षा के अभाव से वे

लक्षण-ग्रंथों की रचना करने में असमर्थ रहीं। ईं, यत्र-तत्र पुरानी कृष्ण-काव्य-परम्परा के अनुसार थोड़ी-बहुत भक्ति-काव्य की रचना अवश्य करती रहीं। कला-काल के अवसान में कुछ स्त्रियों का ध्यान स्त्रियोचित स्वतंत्र साहित्य-विशेष की ओर गया और उन्होंने कला-काव्य के स्थान पर इस साहित्य की रचना का श्रीगणेश करते हुए इसके प्रचार का प्रयत्न किया। दो-एक स्त्रियों ने स्त्री-समाजोपयोगी विषयों (जैसे सती-धर्म, पातिव्रत-धर्म, गृहिणी-धर्म आदि) पर सुन्दर रचनाएँ करके स्वतंत्र स्त्री-साहित्य की रचना का मार्ग रोला। किन्तु आधुनिक काल की परिवर्तित रचना-परम्परा के प्रबल बल-वेग ने इसे पूर्ण रूप से ध्वंस न होने दिया।

हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल गद्य प्रधान काल है। इसमें गद्य-साहित्य का ही प्राचुर्य और प्राबल्य हुआ और हो रहा है। पद्य-साहित्य यद्यपि परिस्थिति-प्रभाव से परिवर्तित और रूपांतरित होता हुआ चल अवश्य रहा है किन्तु उसकी प्रगति में वह बल-वेग नहीं, उसका प्रचार भी उतना नहीं, और उसकी ओर जनता की अभिरुचि भी उतनी विशेष नहीं है। इस काल के प्रारम्भ में जब उन राज-दर-वारों में भी, जहाँ राजाओं से सम्मानित कवियों का अर्द्धा जमघट रहता था, पार्श्व-प्रभाव से कवियों का आदर-सम्मान कम हो चला तब कवियों ने भिन्न भिन्न स्थानों में कवि-सदलों या कवि-समाजों की सृष्टि की। इनमें कवियों का सम्मेलन और काव्य-चर्चा के साथ ही साथ समस्या-पृथि का, जो एक कला के रूप में मानी गई है, अर्द्धा

आधुनिक कालान् हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अवलोकन यह स्पष्ट करा देता है कि उस काल के प्रारम्भ से ही साहित्य-रचना के क्षेत्र में देश एवं समाज का परिस्थिति का प्रभाव तथा पारचात्य सभ्यता के सम्पर्क से एक बड़ा महत्व पूर्ण परिवर्तन हुआ है। इस काल में गद्य का प्राधान्य क्या स्थापित हो गया कि उसके प्राबल्य एवं प्राचुर्य के सामने पद्य रचना का प्रवेग नितांत ही शिथिल सा पड़े गया। विविध विषयों में रचना करने का उत्साह न ललकों और कवियों को साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों का धार मुका दिया। प्रबन्धभाषा जो बहुत दिनों से न केवल काव्य का ही भाग होकर प्रचलित चली आई थी वरन् साहित्योचित गद्य-रचना की भी भाग हो कर हिन्दी प्रदेश में सर्वमान्य और व्यापक हो रही थी, अब केवल अत्यन्त सकीर्ण रूप में प्राचीन कालों का ही काव्य-रचना के लिए उपयुक्त ठहराई जाकर एक बहुत सकीर्ण सामान्य सामान्य हो गई और खड़ीबोली ने अपना आतंक सारे हिन्दी-प्रदेश में प्रचुर प्रभाव का सामना करने हुए अपना अक्षय साम्राज्य स्थापित कर लिया। यद्यपि उसमें साहित्योचित आवश्यक समता और एकरूपता अद्यावधि अनुपस्थित है तो भी उसके उपयोग न केवल गद्य में अनिवार्य माना जाता है वरन् पद्य में भी उसके प्रयोग का महत्ता और सत्ता माना जाती है, अर्थात् खड़ीबोली का उपयोग अब प्रबन्धभाषा के समान साहित्य के गद्य और पद्य दोनों अंगों की रचनाओं में प्रायः सभी क्षेत्रों और कवियों के द्वारा किया जाता है। ऐसी दशा में न केवल पुराने-समाज को ही अपनी

धार्मिक काल में आकर फिर वे पुरुषों के साथ पूर्ववत् चलने लगी हैं। केवल कुछ ही पत्नी खिया हुई हैं जिन्होंने अपने समाज को सम्मुख रख कर खियाचित साहित्य की रचना करने का विचार करते हुए अपनी समाज के उपयुक्त विषयों पर लिखा है। वेद है इन देवियों का अनुकरण करके हमारा दूसरी बहनों ने स्त्री-साहित्य के स्वतंत्र रूप का निर्माण करना न जाने क्यों अच्छा नहीं समझा और उस दूर ही रख दिया है। हमारा समझ से यदि हमारी बहनें इस ओर ध्यान दें और अपनी समाज के विषय स्वतंत्र तथा पृथक् साहित्य के निर्माण करने का प्रयत्न करें तो बहुत अच्छा हो और पाठकों में स्त्री-साहित्य का सुन्दर आसाद बन कर तैयार हो जाय। इस काल में कतिपय सुयोग्य लेखकों ने बाल-साहित्य के निर्माण का कार्य सुचारु रूप से सफलता के साथ आरम्भ कर दिया है। इसी प्रकार हमारी देवियों का बालिका और बालना-साहित्य के निर्माण का कार्य करना चाहिये।

धार्मिक काल में पुरुषों ने साहित्य के प्रायः सभी अंगों का उठा कर उसके भङ्ग का भरना बड़ा सफलता से आरम्भ किया है। किन्तु अभी तक हमारी सुयोग्य महिलायें इस ओर उदात्तता ही दिखलाती हैं। खियों ने अब तक जो साहित्य बनाया है वह बहुत ही संकीर्ण रूप में है। उससे साहित्य के केवल कुछ ही अंगों की पूर्ति होती हुई दिखलाई पड़ती है। नाटक काव्य-शास्त्र, आदि अन्य अंग अब तक खियों ने उठाये ही नहीं। थोड़े दिनों से यह अवश्य देखा जाता है कि खियों ने गद्य-काव्य (उपन्यास कहानी आदि) तथा आलाचना

रमक रंग से कुछ गम्भीर विषयों पर निबंध आदि का लिखना प्रारंभ किया है किन्तु यह कार्य भी अभी बहुत अच्छे रूप में नहीं किया जा सका है। जो कुछ भी हो रहा है वह आशाप्रद और सराहनीय अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि यदि हमारी वहनों में ऐसी उत्साह, अध्यवसाय तथा ऐसी ही उमर से विचार पूर्ण साहित्य-निर्माण का कार्य करती चलेंगी तो थोड़े ही दिनों में गौरव-पूर्ण साहित्य तैयार हो जायगा।

रचना-विवेचन

किसी कवि के काव्य का पूर्ण विवेचन करना हँसी-खेल नहीं। इसके लिए यह नितात आवश्यक है कि उसके समस्त ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन दिया जाय। इस ग्रंथ में जिन देवियों का विवरण दिया गया है उनकी केवल अत्यन्त मनोरम रचनायें ही चुन चुन कर रक्की गई हैं और इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि उन सभी विषयों की सभी उत्तम रचनाओं के उदाहरण दे दिए जाय जिन पर उन्होंने अपनी लेखनी उठाई है। अस्तु, इन्हीं रचनाओं को देस कर विवेचना के रूप में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

स्वभावतः ही कवि के ऊपर उस के समाज, उस के पूर्व साहित्य, उसकी लोक-संस्कृति एवं अन्य देश और काल-संबंधी परिस्थितियों का प्रभाव अनिवार्य रूप से पडता है और वह उनके ही अनुसार रचना करने के लिए एक प्रकार से बाध्य हो जाता है। कोई कोई महा-

कवि ऐसे भी होते हैं जो इन प्रभावों से प्रभावित होते हुए भी अपना एक स्वतंत्र मार्ग निर्धारित करके स्व उस पर चलते हुये जनता को भी उसी पर ले चलाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही महाकवियों के द्वारा साहित्य का परम्परा में नवीन विशेषतायें समुद्भूत हो जाती हैं और वे शैलियाँ विशेष बन कर दूसरा के लिए अनुकरणीय ठहरती हैं। हमारे देश में स्त्रियाँ सदा ही से पुरुष-समाज के ही प्रभावात्मक में रही हैं और उन्हीं के निदिष्ट किये हुए मार्गों पर बड़ी दृढ़ता के साथ चलती रही हैं। साहित्य-क्षेत्र में भा स्त्रियों ने ऐसा ही किया है। केवल कुछ ही ऐसी देवियाँ मिलती हैं जिन्होंने कुछ नवान विशेषतायें अपने समाज को लक्ष्य करते हुए उपस्थित की हैं।

मीराबाई से ले कर भक्ति-काल में प्रायः जितनी भा महिलाओं ने रचना की है वे सब प्रायः एक ही सौँचे में ढकी हुईं सा हैं। सुर आदि अष्टछाप के महाकवियों ने भक्ति के प्रचार प्रसार के लिए जिस मधुर मञ्जभाषा में संगीत-सुधा के साथ पद-रचना-शैली का प्रचार किया है उसी शैली को सर्वथापयुक्त जान कर मीराबाई वैसी भगवद्-भक्ति-परायणा देवियों ने भी अपनाया है और पद-शैली में ही भक्ति-काम्य की रचना की है।

जैसा हमें पुरुष कवियों की भाषा में प्रान्तीय प्रभाव परिलक्षित होते हैं वैसे ही इन देवियों की भी भाषा में प्रान्तीयता की पुष्टि पाई जाती है। जो महिलायें राजस्थान निवासीनी हैं उनमें राजस्थानी भाषा के रूप पाये जाते हैं। साहित्य प्रेमियों से यह क्षिपा नहीं है

कि राजस्थान में मुख्यतया दो भाषायें प्रचलित थीं। एक तो वह जिसका उपयोग साहित्य-रचना में किया जाता था और जो व्रजभाषा का एक विशेष रूप था और जिसे पिगल की संज्ञा दी गई थी। दूसरी वह जो साधारण, सामान्य फोटि की व्यावहारिक भाषा थी और जिसे पिगल फड़ते थे। साधारण बोलचाल की भाषा प्रांतीय वैभिन्य से अपनी अपनी विशेष बोलचाल रखती हुई स्वभावतः ही प्रचलित थी। अब भी हम यदि राजस्थानी महिलाओं का काव्य देखें और उसकी भाषा पर ध्यान दें तो यह प्रगट होता है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा को अपनी रचना में प्रधानता दी है। उनकी भाषा में जो राजस्थानी पुट है वह उनके लिए घम्य है क्योंकि स्त्रियों स्वभावतः ही उच्चकोटि की साहित्यिक भाषा से इतनी परिचित नहीं होतीं (जब तक वे ग्रथेष्ट रूप से सुशिक्षित और सुयोग्य न हों) कि उसका सर्वांग शुद्ध प्रयोग कर सकें। साधारण व्यावहारिक भाषा में परिचय-प्राप्त्य तथा प्रयोग-बाहुल्य से जो माधुर्य मिलता है वह भी उस बोली-का उपयोग करने में अच्छे समाकर्षण का काम देता है। कृष्ण-भक्ति विशेषतः बल्लभ-संप्रदाय-प्रचारित में चूंकि वात्सल्य भाव का प्राधान्य है इसीलिए उस भाव से पूर्ण रचनाओं में व्यावहारिक बोली का उपयोग और भी अधिक स्वाभाविक जँचता है। यही कारण है कि कृष्ण-भक्त कवियों ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओं में व्यावहारिक भाषा की पुट ऐसी ही उपयुक्त स्थानों में अवश्य लगाई है।

मीरा के बहुत से पद ऐसे हैं जिनसे यही प्रगट 'होता है कि वह वात्सल्य भाव की थपछा माधुर्य भाव को विशेष प्रधानता देती थी।^७ मीरा की रचनाओं को हम दो कथाओं में विभक्त कर सकते हैं। एक तो पहले वे रचनायें आती हैं जिनमें प्रजभाषा का सुन्दर रूप मिलता है।[†] दूसरे वे रचनायें हैं जिनमें राजस्थानी भाषा से मिश्रित प्रजभाषा मिलता है।[‡] साथ ही हम यदि भक्ति क विचार से देखें तो न केवल कृष्ण भक्ति ही हमकी रचनाओं में लहराती है वरन् राम भक्ति का भी छाती धारा कदा कहीं मिलती है। सम्भव हो सकता है राम भक्ति का प्रभाव मीरा पर तुलसीदास के कारण (जिनसे इनका परिचय आ) पड़ा हो।⁺ अब यदि विषय की धार हम देखें तो ऐसा काइ मौलिक विशेषता नहीं मिलती जो विशेष उल्लेखनीय ठहरे। विशेष ग शृंगार को ही लेकर मीरा ने बहुत से पद रचे हैं। उन पदों में हृदय की मर्मस्पर्शिता वेदना कियोगिता की अनुभूति और दिल की येरजा की कता ष्ठी मिली हुई मिलता है कि वह हृदयगम हुए बिना नहीं रहती। मीरा जगह जगह पर दीगनी हा कर अपने हृदयाद्गारा का भाषा में अनुवाद करती है।

७ (मारावाई) छं न० २२, २३, १६ २०, ११।

† , छं न० ६, ११ १४, १७ २६ २८ ३०।

‡ , छंद न० ६, ७, ६, आदि।

+ , छंद न० १।

भी अचरित और सानुप्रासिक है। खनीगोली का भी रूप इसके किली किसी छंद में मिलता है।^७

साहित्य-सर्षी यह जानते ही हैं कि जब मुसलमानों का राज्ग भारत में स्थापित हा चुका तब उनका जीवन आमाद प्रमाद और विलासपूण हो चला। उनके दरबारों में शृंगार रस के काय का विशेष प्रचार हुआ। इसलिये शृंगार-रस के काय का प्रचार दरगारा कवियों और बडे नगरों की शिष्ट जनता में भी हो चला। एक ओर सा भक्ति भाव-पूण साहित्य तैयार हो रहा था और दूसरी ओर दरबारी कवियों के द्वारा शृंगार-रस से परिप्लावित काय की गरस धारा से प्रमाणक साहित्य बन रहा था। नगर और दरवार से सबध रखने वाला या उनकी सपर्क-सीमा में आने वाली स्त्रियों पर भी इस शृंगार काव्य की मोहिना था गई। शेख जैमी स्त्रियों ने इसीलिये प्रेम पूर्य मधुर शृंगार की अड़ी समा-सुपमा निखराई और विग्नराई है। शेख बदा ही सहृदया और रसिका थी। काव्य कला कौशल और वाक्चानुर्ष्य भी उसमें ऐसा मनोमाहक था कि आलम जैने प्रेमी कवि भी उस पर मुग्ध हा कर विक गए। शेख का भाषा प्रसाद पूण सरल, सुयवस्थित और मधुर है। कह नहीं सकते कि प्रजभाषा से इतना परिवय इसका कैम हो गया। सम्भव है कि आलम के सहयाग या सबध का यह प्रभाव हो अथवा रेंगरेजिन होने के

कारण उसका सम्यन्ध व्रज-भाषा-परिचित अन्य रसिक कवियों से रहा हो ।

कहीं कहीं शैल ने प्रेम के उस रूप का भी चित्रण किया है जो फ़ारसी-साहित्य में प्रधानता से मिलता है । मजनों और लैला स्वभावतः ही उसके मन में आदर्श प्रेमी और प्रेमिका के रूप में अंकित थीं ।^६ चारीक रयाली और नाज़ुक मिज़ाजी भी कहीं कहीं अच्छी मिलती हैं । उर्दू और फ़ारसी में इसकी प्रधानता ही है । प्रेम की पीर भी इसके अन्दर बड़ी ही मर्मस्पर्शनी व्यजना के साथ पाई जाती है । कहीं कहीं तो ऐसा मालूम होता है कि मानों भुक्त-भोगी अपनी अनुभूति लिख रहा हो । वस्तुतः प्रेमात्मक काव्य का जैसा स्वभाविक वर्णन घनानन्द, बोधा और ठाकुर आदि में पाया जाता है वैसा ही यदि नहीं तो उस से कम भी नहीं शैल में पाया जाता । पाठक 'आलम-केलि' यदि देख सके हैं तो हमें यहाँ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है । अनुप्रास, यमक और दूसरे भावोत्कर्षक अलंकार भी इसकी रचना में अच्छे मिलते हैं । शैल ने कुछ छंद भक्ति अथवा शांति रस के भी लिखे हैं । उसमें यह प्रगट है कि शैल शांत रस भी अच्छा लिखती थी ।† यदि हम शैल को बोधा और तोप की श्रेणी में रखें तो शायद अनुचित न होगा ।

^६ छंद नं० २३, (शैल) ।

† छंद नं० २०, २१ (शैल) ।

दरजों के प्रभाव से वेदव्यास भी हिन्दी-काव्य की ओर मुकने लगी थी। वे न केवल संगीत कला का ही शिष्य प्राप्त करता था वरन हिन्दी काव्य शास्त्र का भी यथाचित अध्ययन करते हुए काव्य-रचना करने लगी थी। प्रवीणराय इसके लिए उदाहरण है। प्रवीणराय वस्तुतः काव्य कला कुशल और काव्य रसिका थी। आचार्य केशव ने भी मुक्त कद से इसकी प्रशंसा की है। प्रवीण ने केशव का ही अनुकरण करते हुए साहित्य की विविध छान्दोग्य शैली में रचना की है और इसके प्रायः सभी छन्द काव्य-कौशल से चम्पकृत हैं। आचार्य केशव के ससंग से इसकी रचना-शैली भाषा तथा विचारवाली सभी उन्हीं के ही समान है। कवित्त मय्या, दोहा गारी इत्यादि छन्द इसकी रचना में पाई जाती हैं। इसका रचा हुआ कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। संभवतः इसने किम्प्रा ग्रन्थ की रचना भी नही की। शृंगाररसक काव्य की इसमें विशेषता है और टीक भी है। आचार्य केशव तो इसकी कविता की इतना सराहना करते थे कि उन्होंने अपनी रामचरिता के लिए इसका रामकलेश के प्रसंग में गारी लिखाई है। यह गारी वास्तव में कबेवा के समय शिष्ट घरों में गाने योग्य है। उच्च कान्ति के साहित्यिक गुण भा इसकी रचना में पाये जाते हैं।

सरल भाषा में दाहा जैसे छोटे छोटे छन्द से सुन्दर भक्ति-काव्य लिखने वाली स्त्रियों में दयाबाई और सहजाबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भक्ति-काल में त्रिभूत प्रकार स्त्रियों ने जा कि भगवद्भक्त और ससंगी आत्मीय थे तथा काव्य-शास्त्र से पूर्य परिचित न थे, अपनी

अपनी यानियों, दोहा, साखी आदि छंदों में लिखी हैं, उसी प्रकार दयाचार्द और सहजोगार्द ने भी किया है। इन्हें हम संत-श्रेणी में रख सकते हैं। दोनों देवियों संत चरनदाय की शिष्या हैं। इसी-लिपु इन पर सत-काव्य का प्रेमा प्रभाव पटा है। इनके काव्य में उच्च कोटि की साहित्यिक क्षमता तो नहीं है किन्तु सतों के समान विरक्ति, गुरुपूजा, निगुर्ण-उपासना आदि की चिन्तारावली साधारण भाषा में सुचारता से मिलती है। कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य का भी आनंद मिलता है। संतों ने प्रायः आत्मा को प्रलु की प्रेमिका के रूप में मान कर समार में आने पर उससे पृथक हुआ कहा है और सांसारिक जीवन को विरोग-जीवन मानते हुए प्रेम की पीर से भरी हुई मर्नस्पर्शिनी व्यजना के माध आत्मानुभूति का अचछ चित्रण किया है। यही बात इन दोनों देवियों की रचनाओं में भी न्यूनात्रिक रूप से पाई जाती है।

साहित्य-भ्रमरों से सदारज नागरीदास का नाम छिपा नहीं है। यह बड़े सिद्ध और प्रसिद्ध महारत्ना और कवि हुए हैं। रसिकविहारी जी ने, इनकी धर्मपत्नी होना सब प्रकार से चरितार्थ किया है। यह महारानी भी भक्ति-रसशनाता और सहृदया कवि थीं। नागरीदास की रचनाओं के साथ जो रचनाएँ इनकी प्राप्त होती हैं वे वास्तव में बड़ी ही सुंदर हैं। इन्होंने व्रजभाषा और मारवाडी दोनों में रचनाएँ की हैं और दोनों अपने अचछे रूप में व्यवहृत हुई हैं। दोहा और पद-शैली की ही इनमें विशेषता है। इसी नाम के एक सुकवि और हुए हैं जिन्होंने शृंगाररत्मक रचना कवित्त-सर्वथा शैली में की हैं। रसिक-

विहारी ने अपनी भावुकता का परिचय अपनी भक्ति पूर्ण रचनाओं में दी है।

हिन्दी-साहित्य के पुराने कवियों में जिन प्रकार कुँडलिया छंद लिखने वाले श्री गिरि रामदास और श्री दानदयाल गिरि का कुँडलियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार खा-समान में साई और छत्रकुवरी बाई ने कुँडलिया छंद की रचना में विशेष स्थान प्राप्त किया है। छत्रकुवरी बाई ने तो कुँडलिया का एक विशय रूप में रखा है। दाहे के चतुर्थ चरण की आशुति करते हुए इन्होंने न तो पद्य शरय में अपना नाम या उपनाम ही रखा है और न कुँडलिया के प्रारम्भिक शब्द का आशुति उसके अन्तिम चरण में ही की है। इस प्रकार की कुँडलिया बहुत कम मिलती है और इसीलिए बाई या उल्लेखनीय हैं। बाई जी ने भक्ति पूर्ण रचना में इसी छंद का उपयोग किया है। यह भी एक विशेषता है क्योंकि प्रायः राति-काय ही कुँडलिया-शैली से लिखा गया है। साइ का नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय इसलिए है कि ये कविवर गिरिधर जा की छा हैं और इन्होंने उनके उस सकल्प को पूरा किया है जिस से कुँडलिया-ग्रथ रचना के सवध में कर लुके थे। जिस निरिचन सख्या में गिरिधर जा ने कुँडलियों के बनाने का विचार किया था उतना के पूरा करने के पूव ही उनकी मृत्यु हो गई। अस्तु उस मध्या की पूर्ति साइ ने की। गिरिधर और इनकी रचा हुई कुँडलियों में यहा अंतर है कि इनकी रचा हुई कुँडलियों में पहले साइ शब्द का प्रयोग अवरय मिलता है। उन्होंने अपने पति के

संकल्प-रघार्य उनका नाम भी थपनी कुंडलियो के उभी प्रकार रकरा है जैसे गिरिधर दास स्वय ररते थे । सभसे विशेष और ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनकी कुंडलियो भापा, शैली आदि किसी भी रृष्टि ने देखिये वैसी ही मिलती हैं जैवी गिरिधर दाम को है । इन्होंने थपनी रचना उनकी रचना से नर्वथा मिला दी है और यह मामूली योग्यता का काम नहीं ।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि हिन्दी-साहित्य-रचना का कार्य्य विशेष रूप से उन्ही देवियों ने किया है जो राजघरानो या धनी-मानी शिष्ट घरानों की सुगृहिणियाँ थो । इसकी पुष्टि के लिए बहुत सी रानियों की रचनायें उपस्थित की जा सकती हैं । प्रस्तुत ग्रथ में भी बहुत सी प्रधान रानियों की सुरचनायें भी रखी गई हैं । हम इन सब का एक विशेष वर्ग बना लेते हैं और साधारण घरों की खो-कवियों से इन्हें प्रथक करके 'रानी-कवि-वर्ग' में रखते हैं । इनके देखने से यह प्रगट होता है जितना अधिक कार्य्य रानियो ने अधिक संख्या में कि या है उतना अधिक कार्य्य उतनी अधिक सख्या में उस समय हमारे राजाश्रों ने नहीं किया । यह अवश्य है कि राजाश्रों में से बहुतों ने काव्य-शास्त्र जैसे गभीर विषयों पर भी सुन्दर रचनायें की हैं और रानियो ने नहीं की । किन्तु यह बात विचारणीय नहीं क्योंकि रानियो को काव्य-शास्त्रादि विषयों पर सुशिक्षा यदि साधारण स्त्रियों के समान अप्राप्य न थी तो दुष्प्राप्य अवश्य थी । प्रायः सभी रानियो ने भक्ति विषयक काव्य ही रचा है । कारण बश किसी किसी ने विप्रलंभ शृंगार-

सबधा कुछ रचनायें अवश्य कर दी हैं किन्तु समुदाय में व्यापकता विशेषतया भक्ति-काव्य की ही रहा है। हिन्दी-कवियों में वश-परम्परा स न तो कवि श्रेणी ही चली है और न काव्य-रचना ही प्रगति शील होना है। उद्द क समान उनमें कवियों के गुरु-शिष्य परम्परा के साथ भी कवि श्रेणी और काव्य-रचना की गति नहीं पाई जाना। रामा कवियों में कुछ ठेग वश है तिनमें वश-परम्परा के साथ कविता करने वाला रानिया की भा परम्परा चली है यर्थात् एक वश म उत्पन्न होने वाली रानियों ने काव्य-रचना-सम्पत्ति प्राप्त करके अपनी कवि सत्ता को श्रमप्लावत् प्रसर किया है। पाठक देखेंगे कि रानी धर्मकावता 'धनदासी' तिहोंने दाहा चौपाइ-शैली स प्रवधारमक कृष्ण भक्ति-काव्य वज्रभाषा में लिखा है उहाँ के यहाँ सुन्दरकुँवरि बाइ जैसी मत्यकाव्यपरिणी रानी हुई हैं। सुन्दरकुँवरि बाइ ने भा सान्त्विक विविध हृदामक शैली से श्रमारात्मक काव्य भी लिखा है और पद रचना भा की है। सुन्दरकुँवरि बाइ के काव्य में उच्चकादि के सान्त्विक गुण पाये गत हैं। इहोंने भा तितनी कुडलिया लिखा है वे सत्र कुँवरि बाइ का सा हा है। इनकी भाषा बड़ा ही शिष्ट स्वच्छ और सुयवस्थित है। लालित्य काति और प्रमाद गुणों के साथ साथ भाव-भागभाष्य और भावनात्कर्ष भक्ति का व्यजना के साथ अच्छे रूप में पाये जाने हैं। श्रमारात्मक काव्य भी तोप और दास की श्रेणी का है। उल्लास, उपमा और रूपक आदि छल कारों का सुन्दर याचना अनुप्रास छटा के साथ सबर इनके कवित्त आदि

छंदों में पाई जाती है। शान्त-रस की कविता भी इनकी बड़ी ही सुन्दर है। इनकी रचनायें न केवल स्त्रियों की भाषाएँ कक्षाओं में ही पढ़ाने योग्य हैं, परन्तु उच्च कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पुरुष कवियों की रचनाओं के साथ रची जाने की अधिकारिणी हैं। चर्यन-शैली भी इनकी चित्रोपम और साकार है। वीर रस की भी कविता हम देवी ने की है, वह भी उसी ढंग की है जैसी शृंगार-रस की। सुन्दर-कुँवरि वाई को हम इसलिए गीत-कवियों में बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। इन्होंने ११ ग्रंथों की रचना की है।

सुन्दरकुँवरि वाई के समान किन्तु साहित्यिक दृष्टि में उनमें कुछ उतर कर स्थान दिया जा सकता है प्रतापकुँवरि वाई को। इन्होंने १५ ग्रंथ रचे हैं और तुलसीदास के समान दोहा चौपाइयों में तथा कुछ अन्य छंदों में भी राम-काव्य लिखा है। इनके बराबर कदाचित् किसी दूसरी महिला ने राम-काव्य की ऐसी सफल रचना नहीं की। इनकी भाषा में राम-काव्य-प्रयुक्त परंपरागत प्रथमी भाषा का ही प्राधान्य है। वास्तव में श्रवणी भाषा राम-काव्य के लिए ही उठाई गई थी। कहीं कहीं 'हाज़िरी' 'हज़ार' आदि फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा बड़ी ही संयत, शिष्ट और सुन्दर है। यद्यपि वह अनुप्रासों ने बहुत समन्वित नहीं है तो भी यथोचित रूप से कहीं कहीं श्लोककारों से अलङ्कृत है। प्रतापकुँवरि वाई ने अपने काव्य-कौशल को अपने ही तक नहीं रखा, परन्तु उसे अपने मंचधियों और मस्त्रियों में भी प्रचलित किया है। रत्नकुँवरि वाई जी, जिन्होंने पद-शैली में अच्छी रचना की

है, यद्यपि योड़ी ही की हैं, इसकी उदाहरण हैं। राजा शिवप्रसाद तिनारोहिन्द का नाम हिन्दी सप्तर में विख्यात ही है, रत्नकुँवरि बीना इहाँ का दादी थीं। ये भी सुन्दर रचना करती थीं। कदाचित् यह दूसरी देवी हैं जिन्होंने प्रबंध-काव्योचित दोहा चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काव्य लिखा है।

तुलसी और केशव के पश्चात् राम-काव्य के क्षेत्र में जैसी रयाति राम नरेश भ्रामान् रघुराजसिंह जी को मिली है वैसी और किसी को नहीं प्राप्त हुई। बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि इहाँ की सुपुत्री था। इन्होंने तीन ग्रंथों की रचना की है। 'यत्रथ विलास नामी ग्रंथ में तो राम चरित्र दोहा चौपाई की शैली स लिखा गया है। यह तो इन पर पड़े हुए इनके पिता के प्रभाव का फल है। दूसरा ग्रंथ 'कृष्ण विलास और तासरा राधा-नाम विलास है। इन दोनों में कृष्ण काव्य लिखा गया है। विशेष अवलोकनीय तथा स्मरणीय बात यह है कि 'राधा-नाम विलास' में पद्य के साथ गद्य भी लिखा गया है। हमारी समझ में इनस पहले और शायद ही किसी दवी ने गद्य लिखा हो। हम प्रकार हम इन्हें गद्य लेखिका भी कह सकते हैं। इनकी रचना यद्यपि बहुत उच्छकाटि का नहीं है तो भी वह भरस सुन्दर और सराहनीय है। राम चरित्र लिखते हुए इन्होंने बहुत स्थलों पर तुलसीकृत रामायण से सहायता भी ली है। न केवल भाव ही उन्होंने अपना

लिये मैं घरन् फाँटों फाँटी तो तुलसीदास की पदावली भी रग्य ली है । राम-काव्य में जिस प्रकार शवधी का प्राधान्य है उसी प्रकार इनके कृष्ण-काव्य में, जो विवाहित होकर कृष्ण-भक्ति-स्नात जयपुर के राज्य-भवन में रहने के प्रभाव का फल है, प्रजभाषा की प्रधानता है । अतः कहना चाहिए कि रानी साहया दोनों भाषाओं में साधारणतः अच्युती रचना करती थीं । कृष्ण-काव्य में पद-शैली की रचना का चाहल्य है । फहीं फहीं इन्होंने कवित्त आदि दूसरे छंद भी लिखे हैं ।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का श्रवलोकन करने वालों को यह ज्ञात ही होगा कि कला-काल के पश्चात् जय आधुनिक काल का उदय हुआ है तब समस्या-पूर्ति की पद्धति से मुक्तक-काव्य रचना की परम्परा का अच्युता प्रचार और प्रस्तार हुआ है । उसी समय में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कवियो ने, जिनका अत्र पाश्चात्य-सभ्यता-साहित्य से प्रभावित राज-दरबारों में वैसा मान-सम्मान और शाना-जाना न रह गया था, अपने अपने कवि-समाज या कवि-मडल स्थापित कर लिखे थे जिनके द्वारा समस्या-पूर्ति की परम्परा प्रचुर रूप से बहुत दिनों तक चलती रही और अब तक कुछ कुछ अंश में चली जा रही है । कुछ समाजो ने भारतेन्दु बाबू की 'कवि-वचन-सुधा' नामी साहित्यिक पत्रिका को देख कर उसी रूप में समस्या-पूर्ति तथा स्फुट कविता संबंधी पत्रिकायें निकाली थीं जिनमें तत्कालीन सभी कवियों की पूर्तियाँ छपा करती थी ।

समस्या-पूर्ति की शैली से मुक्तक काव्य करने वाली महिलाओं में सब से प्रथम चन्द्रकला बाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है । करुणा-शतक,

राम चरित्र आदि कई ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की है। कवि-समाज में इनका नाम ऐसा फैल गया था और इनकी पूर्तियों को ठेगकर कवि लोग इनकी रचनाओं के लिए ऐसे उरसुक रहा करते थे जिसका परिचय पाठकों का इस पुस्तक से हो जायगा। इनकी पूर्तियों 'काव्य मुधा भर पत्र' में प्रकाशित होती थीं। इनकी रचना साहित्यिक-गुण-सम्पन्न और अद्भुत श्रेणी की है। पदावली सानुप्रासिक और अलङ्कृत है। भाषा परिष्कृत परिमार्जित और भाव पूर्ण है। मधुरता और सरसता भी पद-शालित्य के साथ इनके रचना-सौन्दर्य को और भी उत्कृष्ट और मनोरम करती है। कल्पना भी इनकी प्रतिभामयी है। 'रामचरित्र' में राम काव्य और 'करुण शतक' में करुणा रस की रचनायें अथलोकनीय हैं। शृङ्गाररामक काव्य भी इनका सराहनाय है। इन्होंने कविता को कला की दृष्टि से अपनाया था और इसलिए इन्होंने शृङ्गार रस की न्यूनाधिक रूप से वही रचना की है जैसे पुरुष कवि प्रायः किया करते हैं। स्त्रियाँ बहुधा हम प्रकार का रचनायें अपना स्वाभाविक लज्जा के कारण नहीं किया करतीं यद्यपि कला की दृष्टि से अदलीलता को दूर रखन हुए प्रेम पूर्ण शृङ्गाररामक कविता वे कर सकती हैं और का भी है। आजकल भी प्रेम के काव्यनिक चित्रों को हमारी कई स्त्रियाँ अपने काव्य में बड़ी धारणा से चित्रित किया करती हैं। हाँ उनका रूप बसा अजरय नहीं हाता जैसा अद्भुतता बाई जैसी दक्षिणों के शृङ्गाररामक रचनाओं में पाया जाता है। कहा कहाँ तो अद्भुतता ने अतिराम की सो छटा अपने छद्मों में दिखला दी है। सुन्दरकुँवरि बाई

के पश्चात् यदि हम किसी देवी को ऊँचा स्थान देना चाहते हैं तो वह चंद्रकला चाहे ही है ।

व्रजभाषा और उसकी कविता को खड़ीबोली की इस घटना-घटाटोप में सुप्रकाश करने वालों में महाकवि रत्नाकर आदि के पश्चात् सुविद्ययात् वियोगी हरि जी उल्लेखनीय हैं । हरि जी ने यह काव्य-कला-गुण जिनसे प्राप्त किया है वे भी चर्चाई और प्रशंसा की सुपात्रा हैं । छतरपुर के वर्तमान नरेश की महारानी श्री युगलप्रिया जी के ही वियोगीहरि शिष्य हैं । युगल-प्रिया जी हसीलिपि विशेष उल्लेखनीय हैं । कृष्ण-भक्ति-काव्य, जिसे इन्होंने पद-जैली में विशेष रूप से लिखा है, वास्तव में सराहनीय है । इन्होंने ने कहीं कहीं श्रुतिक समय के चद्विरंग भक्त तथा अंतरंग विषयासक्तों की छुटकी भी ली है । भक्तों में 'परस्पर प्रशंसति' की परिपाटी सदा ही से से अबाध रूप में चली आई है । भक्त भगवान के भक्त को न केवल अपना पूज्यपाद ही मानता है वरन् उसे अपना स्वामी और गुरु सा भी समझता है । भक्त, भक्त का भी दाम्य होता है चाहे भक्त कैसा ही क्यों न हो । भक्त-समाज में यही सिद्धान्त है । देवी जी ने ऐसा न करके साम्राज्ञी के नये नीति-पूर्ण नीर-धीर प्रियेकी हस-न्याय के प्रभाव से इस छद्माकृता प्रणाली की आलोचना की है और जनता को द्वेषी वृत्ति-धारी-बगुजा-भक्तों से सचेत रहने की चिन्तावनी दी है । रचना साधारणतया यदि परमोच्च कोटि की नहीं तो किसी प्रकार घट कर भी नहीं है ।

राम-काव्य लिखने वाली देवियों में जिनका नाम हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उनके पश्चात् यदि और कोई उल्लेखनीया हमें यहां

कोई जँचती हैं तो वह राना रामप्रिया देवी हैं । आप ने सवैया, प्राटक, कवित्त, पद आदि विविध छंदों में खालिस्य और भाजुष्य गुण पूण सुंदर रचना की है । यद्यपि रचना बहुत सुंदर नहीं है तथापि सराहनीय है । भक्ति भाव तो उस में खूब ही भरा हुआ है । पदावला भा परिष्कृत और प्रौढ़ है । वाक्य विन्यास, अनुशास और अलंकारा से यथाचित स्थानों पर अलंकृत है । सामयिक प्रभाव से रानी साहबा समस्या पूर्ति भी किया करती थीं और अच्छी कर लेती थीं ।

यहाँ तक तो हमने प्राचान महिल्लाघों की रचना का सूक्ष्म आलोच नात्मक विबोचन किया । अब वह समय हमारे सामने आता है जज से हमारे हिंदा-साहित्य का आधुनिक-काल प्रारभ होता है और हिंदी साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली के गद्य का प्रचार बडे प्रबल-बल वेग से होने लगता है । जिसके कारण साहित्य का पद्य विभाग कुछ शिथिल और मद-गति-गामी हो जाता है । खड़ीबोली के प्रचार से प्रज भाषा का यद्यपि उतना प्राधाय नर्दा रह जाता जितना पूर्ववर्ती कालों में था । अब तक प्राचीन शैली से काय करने वाले जा प्रजभाषा में रचनायें करते हैं इनका सख्या उतनी अधिक नर्दा है जितनी खड़ीबोली के लेखकों और कवियों की । पत्र-पत्रिकाओं के प्रचुर प्रचार प्व मुद्रण यन्त्रों के प्रचार से पुस्तक-प्रकाशन के काय के प्रस्तार से आज खड़ी बोली व्यापक और सब साधारण का भाषा हो रहा है ऐसी दशा में प्रजभाषा में रचना करना सुलभ साध्य नहीं रह गया । क्योंकि धिर परिचित तथा नियम व्यवहृत भाषा के स्थान पर किसी अपरिचित किंचित

कुमारी चौधरानी के समय से नवोन्नति का प्रारंभ देखते हैं। चौधरानी जी ने रचना-कार्य तो उतना स्तुत्य नहीं किया किन्तु अपने पिता श्री नवीनचंद्रराय को देखते हुए पत्राग्न प्रात में, जहाँ उस समय उद् का विशेष मौलयाला था, हिन्दा का चिरस्मणीय प्रचार-कार्य किया है। स्त्री शिक्षा की जागृति और उन्नति का श्रेय पत्राग्न प्रात में यदि किसी महिला रत्न को मिल सकता है तो वह इन्हीं को।

साहित्य-रचना का प्रशमनीय कार्य इस आधुनिक-काल में जिन महिलाओं ने किया है उनमें से रानी रघुवश कुमारी का नाम प्रथम उल्लेखनीय है। इस देवी ने अपनी रचनाओं से स्त्री-संसार को सूचित किया है कि स्त्रियों का साहित्य पुरुषों के साहित्य से स्वतंत्र और पृथक् होना चाहिए। इन्होंने स्त्री-उपयोगी विषय चुनकर इन्हीं पर मौलिक रचनाएँ की हैं। 'भामिनी विलास' 'मनिता बुद्धि विलास' और 'सूय-शास्त्र विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। पुस्तक के नामों से ही इनके विषयों का पर्याप्त परिचय मिल जाता है। वास्तव में हमारी स्त्रियों को हम ध्यान देना और कार्य करना चाहिए। यह कहा जाता है कि क्या स्त्रियाँ पुरुषों के समान उत्कृष्ट साहित्य का अध्ययन, उसका प्रवचन आदि मर्दा कर सकती हैं और क्या उन्हें ग्राहस्थोपयोगी विषयों पर ही सदैव निर्भर रहना चाहिए? उत्तर में यह कहना अनुचित न होगा कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान उत्कृष्ट के साहित्य क्षेत्र में विचरण कर सकती हैं। किन्तु इसके साथ ही उन्हें उस गौरव-पूर्ण उत्तरदायित्व को मंदा धरन लक्ष में रखना चाहिए जो उन्हें धर्म-न

विश्वास करके दिया गया है और जिसके आधार पर उन्हें गृह-लक्ष्मी और सहधर्मिणी आदि की उपाधियाँ दी जाकर पुरुष-समाज का जीवन-सार समर्पित कर दिया गया है। अस्तु। गार्हस्थ्य-सवधी विषयों में दक्षता प्राप्त करना स्त्रियों का एक परमोच्च कर्तव्य है। रानी रघुवंश कुमारी जी ने कविता, सवैया, वरवा, पद तथा सोहर आदि विविध छंदों में रचना की है। हमारी समझ में कदाचित्त इन्होंने सुन्दर वरवें लिखे हैं। भापा इनकी परम शुद्ध और सच्ची व्रजभाषा न होकर मिश्रित व्रजभाषा सी है। इसमें अवधी और कहीं कहीं रबीवोली की भी छुट है। किन्तु उस समय पूर्वी प्रान्तों में इसी प्रकार की भाषा का विशेष प्रचार था। इसलिये रानी साहवा का इस भाषा में रचना करना न्याय-संगत ही है।

हिन्दी-साहित्य के कला-काल में जिस प्रकार भूषण ने वीर-स्तवन-काव्य विशेष रूप से लिखा है उसी प्रकार इस काल में स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी की धर्मपत्नी श्री बुंदेलावाला ने वीर-काव्य लिख कर अपने नाम को सार्थक किया है। बुन्देलखंड भारतीय इतिहास के मध्यकाल में वीर वधेलों का प्रदेश था। बुंदेलावाला के शरीर और प्राण दोनों में वहाँ की वीर-रस-संसिक्त प्रकृति का पूरा प्रभाव था। इन्होंने स्वर्गीय लाला जी से काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था और इसीलिए इनकी कविता में काव्य-गुण चारुता से मिलते हैं। इनकी भाषा शुद्ध रबीवोली है। उसमें ओज-प्रसाद आदि गुण हैं। वह जोशीली और उत्तेजक है। शैली

इनकी साधारण और सरल है क्योंकि इनका उद्देश्य समाजोचित-साहित्य की रचना करने का था और ये अपनी वीर रसमयी वाणी को नवयुवकों और नवयुवतियों के हृदयों में पैठना चाहती थीं। दोहा-शैली से नीति काव्य भी इन्होंने कुछ जैसे कवियों के समान अच्छा लिखा है। प्रेम पर भी इन्होंने कुछ रचना का है और कहीं कहीं उर्दू-साहित्य के भाव तथा उदाहरण उर्दू शब्दों के साथ रख दिए हैं। इन्होंने तुकबंद कवियों पर भी उपदेश पूर्ण कटाच किये हैं। कुछ रचनायें इन्होंने कथापकथन शैली से भी लिखी हैं। सु-देखाबाबा जी का इहाँ विशेष सार्धा के कारण साहित्य में हम अच्छा स्थान स्वीकार करते हैं। श्री समाज में इन्हें वही स्थान दिया जा सकता है जो पुरुष कवि-समाज में भूषण जैसे कवियों को दिया गया है।

यह साहित्य सेवियों से लिपा नहीं है कि आधुनिक काल के प्रारम्भ में तथा भारतेन्दु बाबू के परचात् तक समस्या-पूर्ति सम्बन्धी मुक्तक-काव्य की रचना का अच्छा प्रचार रहा है। समस्या पूर्ति सम्बन्धी कतिपय पत्र और पत्रिकाएँ भी निकलती रही हैं। यहाँ जिस देवी जी का हम सूक्ष्म विवेचन करने जा रहे हैं वह इसी समय की शैली में रचना करने वाली हैं। इनका नाम रमा देवी है। इन्होंने मजभापा और लड़ी शैली दोनों में रचनायें की हैं, जैसा आधुनिक समय के कतिपय कवियों ने भी किया है। इन्होंने कहीं कहीं ठेठ देहाती शैली का भी प्रयोग किया है। सामयिक प्रवाह से प्रभावित होकर इन्होंने जो रचनायें र्व्यंग और हास्य-पूर्ण की हैं वे अत्यन्त मनोरञ्जक हैं। उर्दू-हिन्दी

मिश्रित भाषा का भी इन्होंने उपयोग किया है। नीति-विषयक-रचनाओं में दोहा-शैली को ही प्रधानता दी है। समस्या-पूर्तियों में कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य और कला-कौशल भी अच्छा मिलता है। हमारी समझ में रमा जी का भी स्थान साहित्य-क्षेत्र में ऊँचा ठहरता है।

खड़ीबोली के काव्य-जगत में नवीन पद्धति से काव्य-रचना करने वाली महिलाओं में श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' जी सर्वाग्रगण्य हैं। 'लली' जी ने शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग जैसा अच्छा किया है वैसा कदाचित्त किसी दूसरी देवी ने नहीं किया। इन्होंने सामयिकता को अपने सामने रख कर नवीन विषयों पर नवीन शैली से मनोहारिणी रचनाएँ की हैं। देशानुराग, प्रेम, वीर-भाव इनकी रचनाओं में विशेष प्रधानता रखते हैं। आपने काव्य-रचना की प्राचीन कविता, सर्वथा, दोहा, चौपाई आदि शैलियों को न अपना कर आधुनिक समय की नवीन छद्मात्मक शैलियों में ही रचना की है। रचना भाव-पूर्ण, प्रभावोत्पादिनी और रोचक है। इनकी कविता में श्रोज और वीरत्व का जो प्रादुर्भाव होता है वह वर्तमान खड़ीबोली के लिए नवीन और गौरवपूर्ण है। हम इन्हें आधुनिक समय में खड़ीबोली में रचना करने वाली देवियों की प्रधान प्रतिनिधि समझते हैं।

न केवल स्त्री-समाज को ही जिम्मे देवी पर गर्व है वरन् पुरुष समाज में भी जिनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है वे श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी चौहान हैं। वर्तमान समय में इन्हें खड़ीबोली की सुन्दर रचना के लिए अच्छी ख्याति और प्रतिष्ठा मिली है। हाल ही में

इनकी रच्य रचनाओं का समूह 'मुकुल' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। जितना रचनायें इनकी अब तक देखने में आई हैं उनसे इनकी मौद प्रतिभा और प्रशस्त कवित्व-शक्ति का पता चलता है। इन्होंने भी भिन्न भिन्न प्रकार के नवान छंदों में मुक्तक शैली से, जिसमें इतिवृत्तात्मक निबंध-रचना ही विशेष रूप से हाती है, रचनायें की हैं। भाषा यद्यपि उच्चकोटि का साहित्यिक खड़ीबोली नहीं है तो भी शुद्ध, सुस्पष्टस्थित और पूर्ण परिष्कृत होती हुई अच्छी साहित्यिक खड़ीबोली शवरय है और जिसमें कहीं कहीं उद् शब्द भी देखने में आते हैं। स्वदेश प्रेम तथा अन्य नवान विषयों पर इन्होंने अपना हार्दिक अनुभूति की मार्मिक व्यंजना का प्रतिबिंब डालत हुए रच्य कवितायें लिखा हैं। कहीं कहीं तो इन्होंने प्राचीन कवियों के भाव ले लिए हैं किन्तु उन्हें कुछ नवीनता से अपने साँचे में ढाल कर मौलिकता खाने का प्रयत्न किया है। कहीं कहीं उद् छंदों का भी उपयोग किया है। ध्यान-शैली इनकी सजावना और विद्यापन्नता रखता है। हार्दिक भावों का साधारण भाषा में यथातथ्य प्रकाशन इनका रचनाओं का मूल उद्देश्य जान पड़ता है। प्रेम का भी पवित्र धामा से इनकी बहुत सी रचनायें चमक उठी हैं। प्रेम स्थलों में जान पड़ता है कि सुभद्राकुमारी की प्रेम की पुजारिनी और अक्षर्य की उपासिका और कल्पना की अनुरक्ता हैं। स्वाभाविक भावों और अनुभावों का भी चित्रण इन्होंने अश्रद्धा किया है। बहुतरी रचनायें सा प्रेमा हैं जिनके देखने से यही कहना पड़ता है कि ये मुक्तभोगी हृदय से ही निकली हैं। वीर-रस की भी अपनी

उन्नत भावनाओं के साथ 'भांसी की रानी' जैसी रचनाओं में इन्होंने अच्छी धारा बहाई है। इन्होंने आद्योपात खड़ीबोली में ही रचना की है और उच्चकोटि की रचना की है। हमारी समझ में वर्तमान समय की खड़ीबोली की रचना करने वाली देवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

खड़ीबोली के काव्य-क्षेत्र में इधर कुछ दिनों से एक नवीन आन्दोलन सा उठा है और वह उठा है कवीन्द्र रवीन्द्र की रहस्यात्मक रचनाओं के प्रभाव से। इस आन्दोलन में नवोदित कवियों को कहाँ तक सफलता मिली है, अभी नहीं कहा जा सकता। इस आन्दोलन से जिस नवीन काव्य-शैली का प्रचार हो रहा है उसे छायावाद या रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। वास्तव में रहस्यवाद जिसे कहा गया है उसका अच्छा रूप तो इन नवोदित कवियों की रचनाओं में नहीं पाया जाता; हाँ रहस्यवाद की उसमें छाया अस्थिर पाई जाती है और इसीलिए उसे छायावाद कहना भी युक्ति-संगत है। अनंत-सौंदर्य, अमीम-प्रेम, और विचित्र आनंद की धोर कल्पना की ऊँची उड़ान से उड़ने वाले यह कवि खड़ीबोली काव्य-क्षेत्र के प्रकृति-चन-विहारी विचित्र विहंगम हैं। यदि ज्ञानानुभव से सहायता लेकर ये लोग अपनी प्रगति को परिमार्जित और पुष्ट करते चले तो छायावाद-काव्य का उज्ज्वल भविष्य निश्चित हो जायगा।

इस नवीन शैली में प्रभावित होकर जिन देवियों ने वर्तमान समय की खड़ीबोली में काव्य-रचना प्रारंभ की है उनमें श्रीमहादेवी वर्मा का

नाम सर्वाप्रगल्भ है। इन्हें अग्रजों सस्कृत और हिन्दी का उच्च शिक्षा में अपने वाक्य को प्रौढ़ एवं परिष्कृत करने में बहुत बड़ी सहायता मिली है। दर्शन शास्त्र के विषय के अध्ययन से इनकी रचि का आध्यात्मिक-रहस्य की ओर मुक्त जाना साधारण सा ही बात है। प्रेम के कल्पित चित्र जो इन्होंने सरल और सरस भाषा में चित्रित किये हैं वे बड़े ही मनोरम और स्वाभाविक हैं। अनुभूति व्यञ्जना भी इनमें अच्छी है। 'मरा जावन' शाशक जैसा रचनायें इसके लिए प्रमाण हैं। इनका रचनाओं में प्रेम भरे हृदय की मार्मिक पाशा और वेदना क्षिपी है। प्रकृति के साथ में खेलती हुई कल्पना इस वेदना के सूत्र से ग्रथित हाकर कैम उद्गार निकालती है पाठक स्वयं इनकी रचनाओं में देख लें। आधुनिक शैली में प्रायः विरोध मूलक शब्दों का एक विचित्र संगुम्फन करके रहस्यवादी की अनोखी सृष्टि का रचना विधान किया जाता है। इस विधान का कुछ मूलक इनकी रचनाओं में भी पाई जाता है। भाषा यद्यपि शुद्ध परिष्कृत और प्रौढ़ खड़ीबोली है फिर भी कहीं कहीं उसमें कुछ अव्यवस्था तथा व्याकरण की त्रुटि घटकने लगती है। वर्णन-शैली इनकी निरन्ध्यात्मक रचनाओं में साकार और सजीव है। पदावला में माधुर्य्य लालित्य और माद्व है। वर्तमान खड़ी बोली के रहस्यवादी और ध्यावावाणी कवियों में इनका स्थान ऊचा है।

अब दो एक दवियाँ ऐसा आर हैं कि जिनका उल्लेख न करना हमारी समझ में उनके साथ अन्याय करना होगा। इनमें से एक तो श्री राजदगी जी हैं, जो श्री सुमद्रा कुमारी चौहान की बड़ी बहन हैं।

आपने अपने समय की शैली के अनुसार खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है। यद्यपि कविता बहुत उच्चकोटि की नहीं है तथापि सरायनीय अवश्य है। कतिपय अनिवार्य कारणों से आपको अपनी प्रतिभा को दना देना पड़ा और रचना करना बंद करना पड़ा। यदि ये ऐसा न करके बराबर रचना-कार्य करती रहतीं तो संभवतः इन्हें स्तुत्य सफलता मिलती।

दूसरी उल्लेखनीय देवी है श्री सरस्वती देवी। आपके पिता बड़े ही सुयोग्य और सुकवि थे। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय आपके पिता के मित्र हैं और इसीलिए आपसे परिचित भी हैं। देवी जी ने कई पुस्तकें लिखी हैं और प्राचीन नीति-काव्य लिखते हुए शतक-शैली का अनुकरण किया है। इन्होंने वर्तमान समय की पाश्चात्य सभ्यता के आतंक से प्रभावित होकर अपनी प्राचीन सम्मानित भारतीय संस्कृति-परंपरा की उदंड-उद्धृंखलता से अवहेला करने वाली स्त्रियों को देखकर 'सुन्दरी-सुपथ' नामक ग्रंथ की रचना कर स्त्री-समाज के सामने सुन्दर आदर्श और उपदेश उपस्थित किये हैं। यद्यपि नवसमाज के सुधार की ओर अर्कपित नागरिक-जीवन न होने से इन्हें विशेष व्याप्ति नहीं मिली किन्तु हम समझते हैं कि यदि इनकी रचनायें प्रकाशित होकर पठित समाज के सामने आ जायें तो इनका अवश्य आदर होगा।

इस संग्रह में मित्रवर निर्मल जी ने एक 'कुसुम-माला' नाम से सुन्दर रचनाओं का गुच्छा भी रख दिया है और इसमें वर्तमान समय

की उन नवेदित महिला-कवयित्रियों की एक-एक सुन्दर रचनायें प्रथित करके एक मनु मालिका बनाई है जिसने हमें आकर्षित कर लिया— इसलिये पाठकों के सामने उसका भी सूक्ष्म विवेचन उपस्थित करना हमने अपना कर्तव्य समझा। क्योंकि ऐसा न करने से पुस्तक का एक अंश अविवेचित ही रह जाता। अस्तु।

हम मालिका की कवियों के देखने से यह ज्ञान होता है कि इनमें भी काव्य प्रतिभा है जो चाहे घलकर अपने अष्टौ रूप में प्रस्तुति हो सकती है, यदि उस एतद्दर्थ सुधवसर और अवकाश प्राप्त हो सके। ये सभी देवियाँ स्वर्गवाला में ही रचनाये करती हैं और इनकी रचनाये वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित भा जाती रहती हैं। 'निर्मल जी ने वैसा कि अपने कुमुम-माला-तगत सद्भिः प्राक्कथन में एक जगह लिखा है इन देवियों में स कतिपय देवियों का रचनाय वर्तमान समय के नवादिन पुरुष-कवियों का रचनाओं से कितना भा प्रकार कम नहीं है। कविता यथार्थ में पुरुषों की ही संपत्ति भी नहीं है। उस खा और पुरुष दोनों समानता से ले सकते हैं। इन देवियों की सकलित कविताओं में काव्यांगित सभी गुण वैसे ही पाये जाते हैं जैसे पुरुष कवियों में। इनमें से कदाचित ही कितना को ख्याति मिली हा और कदाचित ही मिले। कियों प्राय जनता प्रदत्त प्रसिद्धि क प्राप्त करने में पुरुषों स अत्रस्य पाव रह जाती हैं और बहुत हा कम देवियाँ धार्ति प्राप्त कर पाती हैं अथवा या कहिए कि केवल वे ही देवियाँ यथाभागिता होती हैं जो गृहस्थ जीवन से अलग होकर साहित्यिक-जीवन हा विशेष

रूप से रचती हैं और जिनकी रचनायें जनता के सामने किसी प्रकार उपस्थित हो जाती हैं। आजकल यदि सच पूछिये तो युग है विज्ञापन का। विज्ञापन-कला-कौशल चाहे वह किन्हीं भी क्षेत्र में कार्य करने वाला क्यों न हो और चाहे वह भला-पुरा कैसा भी कार्य क्यों न करता हो, अवश्यमेव प्रमिद्धि-प्रसाद-प्राप्त कर लेता है और उन सत्पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्राप्त करता है जो अपना विज्ञापन थाप नहीं करते।

इन देवियों में हमारी ममक में कई विशेष उल्लेखनीय हैं। १. जाह्नवी देवी दीक्षित, इनकी भापा सुन्दर मधुर और सरल है। कल्पना भी अच्छी है। वर्णन-शैली में भी सरलता है। २. शक्ति देवी, इनकी भापा प्रौढ़ परिपक्व और सानुप्रासिक है। कहीं कहीं झलकार भी हैं। निबन्धात्मक-शैली से वर्णन-चातुर्य भी कल्पना-कौशल के साथ सरसता और मधुरता रखती हुई अच्छी है। ३. केशव देवी, अनुभूति-व्यजना साधारण और स्पष्ट भाषा में इनमें विशेष पाई जाती है। ४. चुन्नी देवी, भाषा सुन्दर, सरस और भाव-पूर्ण है। पदावली सानुप्रासिक और अलंकृत है। कल्पनिक चित्र भी साकारता और सजीवता रखते हैं। ५. मुन्नी देवी, अनुभूति व्यंजना के साथ मृदु-मंजुल पदावली-पूर्ण सरस और मधुर भाषा में कल्पित चित्र-चित्रण इनका मनोरम है। ६. पार्वती देवी, संस्कृत-छंद की छटा है। परिपक्व भाषा, निबन्धात्मक वर्णन-शैली, इनकी रचनाओं में उल्लेखनीय है। ७. लीलावती, सानुप्रासिक, ओजस्विनी तथा प्रभावपूर्ण भाषा में इनकी काव्य-रचना अच्छी है। ८. सत्यवाला

देवी, उद् शैली से साधारण भाषा में भाव-योजना पूर्ण 'अन्योक्ति' शीशक रचना इनकी सुन्दर और सराहनाय है। ६ चकारी, आनखिनी, सबल और प्रौढ़ भाषा में इनका राष्ट्रीय भाषा से पूर्ण रचना उल्लेखनीय है। हमस उत्तेजना मिलती है और इनकी सशक्त प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इनके सिवा और भी अनेक देवियाँ हैं जिनकी कविताओं को देखकर उनके भविष्य का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

तुलनात्मक-विवेचन

हिन्दी-समाज में आज कल समालोचना का जो प्रवाह विरोध रूप स चल रहा है उसमें तुलनात्मक शैली का ही विशेष प्राधान्य है। कुछ दिनों से तो केवल तुलना मात्र का ही लोग तुलनात्मक आलोचना मानने लगे हैं। यद्यपि तुलना और तुलनात्मक आलोचना दोनों में बहुत अंतर है। यह प्रणाली यहाँ तक बढ़ गई है कि उन कवियों की भी तुलनायें की जानी हैं जिनका वास्तव में तुलना नहीं हो सकता। क्योंकि वे कवि भिन्न विषयों पर पृथक पृथक शैली से और प्रथक पद्धतियाँ से रचनायें करते हैं। ऐसा दशा में उनमें सादर्य कुछ भी नहीं रहता है वंगम्य की भाँसा विशेष रहता है। साम्य और वैगम्य दोनों ही यद्यपि तुलना के अन्वगत हैं तथापि साम्य की ही विशेषता रहती है।

समालोचना के इस सामयिक प्रवाह को देखते हुए हम भी यहाँ उद्य प्रधान देवियों की रचनाओं पर तुलनात्मक शैली से आलोचना-लोक डालना चाहते हैं। इन देवियों की तुलनायें दो प्रकार से हो सकती हैं। प्रथम स्त्रियों से स्त्रियों की तुलना, दूसरे स्त्री-कवयित्रियों की पुरुष-कवियों से तुलना। जहाँ तक प्रथम प्रकार की तुलना की बात है वहाँ तक तो यह बहुत ही स्वाभाविक और उचित है किन्तु दूसरे प्रकार की तुलना में हमें कुछ अस्वाभाविकता और अनुपयुक्तता सी जान पड़ती है। क्योंकि पुरुष कवियों के साथ उन देवियों की तुलना करना—जिन्हें पुरुषों के समान न तो साहित्यावलोकन, काव्य-शिक्षा, कला-कौशला-अभ्यास के उपयुक्त समस्त साधन ही सुलभ हैं और न सामाजिक नियमों के कारण सुयोग्य कविममाज के साथ सम्पर्क-संबंध की ही सुविधा प्राप्त है, जो काव्य-रचना के लिए न केवल परमावश्यक ही है वरन् अनिवार्य है। इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष-कवियों के साथ किसी भी स्त्री-कवि की तुलना करना यदि अनुचित नहीं तो असंगत अवश्य है। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों, भावानुभूतियों, संस्कृतियों, विचारधाराओं और उन सब से प्रभावित होने वाली काव्य-रचनाओं में अवश्यमेव विशेष अन्तर रहता है। फिर भी यदि बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो तुलनात्मक आलोचना के लिए कुछ न कुछ सामग्री मिल ही सकती है।

हमने पहले लिखा है कि स्त्रियों ने प्रायः काव्य-रचना-क्षेत्र में सभी प्रकार पुरुष-कवियों का अनुकरण किया है। प्रायः उन्होंने

अपने समय की उसी भाषा, उसी शैली, उसी रचना परम्परा को अपनाया है जिन्हें हमारे पुरुष-कवियों या महाकवियों ने उठा कर प्रवर्तित किया है। उसी आधार पर यहाँ हम कुछ देवियों की तुलना कुछ कवियों से करते हैं। किन्तु यह कह देना आवश्यक है कि इस तुलना से हमारा यह भाव नहीं है कि जिन देवियों की तुलना जिन पुरुष कवियों या महाकवियों से यहाँ की जा रही है उनका स्थान उन पुरुष कवियों के समान साहित्य के क्षेत्र में मान्य है और वे उसी काटि की कवयित्री हैं। तात्पर्य केवल यह है कि यहाँ तुलनात्मक आलोचना के द्वारा विचार साम्य अथवा भाव-वैषम्य की धार कुछ संकेत कर दिया जाय और यह दिखला दिया जाय कि छा. कवियों ने कहा तक पुरुष-कवियों के साथ काव्य-रचना के क्षेत्र में सफलता से काव्य किया है।

सब से प्रथम हम यहाँ मीराबाई को ही लेते हैं। मीराबाई का नाम आज हिन्दी समार में स्वर्णचरों लिखा गया है। पस्तुत मीरा ने अपने समय के अनुभार कृष्ण-काव्य का अचञ्छी रचना की है। कुछ छंद तो मारा के पुस हैं जिनके विषय में अब तक यह नहीं निश्चित हो सका कि वे वास्तव में मीरा के ही लिखे हुए हैं अथवा किसी अन्य कवि के। उदाहरण में हम काइ कइ कुलदा
 छंद को लेते हैं। यह छंद देव कवि का रचा हुआ कहा जाता है।^७
 ऐसी दशा में निश्चय रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमारा

भी विचार यही है कि इस प्रकार के छंद मीराबाई के रचे हुए नहीं हैं वरन् वास्तव में वेव जैसे पुरुष कवियों के ही रचे हुए हैं। क्योंकि मीराबाई को काव्य-शास्त्र अथवा छंद-शास्त्र का ऐसा प्रौढ़ ज्ञान न था जैसा इस प्रकार के छंदों से प्रगट होता है। मीरा ने अपने समय के गीति-काव्य की शैली से ही कृष्ण-काव्य की रचना की है और भापा भी प्रायः राजपूतानी मिश्रित ब्रजभाषा रखी है। अस्तु, भाषा के विचार से मीरा की तुलना हम किसी कृष्ण-भक्त कवि से नहीं कर सकते। उन छंदों के विषय में जिन में शुद्ध ब्रजभाषा मिलती है हमारी तो यह धारणा है कि वे वास्तव में मीरा के नहीं हैं और इसीलिए हम उनके आधार पर मीरा की तुलना किसी कवि से नहीं करना चाहते। शैली के विचार से हम मीराबाई की तुलना उन कृष्ण-भक्त कवियों से अवश्य कर सकते हैं जिन्होंने गीति-काव्य की शैली से भक्ति-विषयक रचनाये की हैं।

अब यदि भक्ति-पद्धति पर हम विचार करें तो ज्ञात होता है कि मीरा ने सूर और नंददास जैसे भक्त-कवियों के समान वात्सल्य और सरस्य-भाव की भक्ति न रख कर माधुर्य-भाव की भक्ति विशेष रूप से रखा है। कृष्ण को इन्होंने अपना प्रियतम मानते हुए अपने को उनकी दासी या परिचारिका ही माना है। हाँ, साथ ही कही कहीं इन्होंने कृष्ण को अपने पति (स्वामी) के रूप में मान कर अपने को उनकी चरण-सेविका, प्रिया दिसलाया है। जैसे—

“ घड़ी एक नहीं आवड़े तुम दरसण विन मोय ” (छंद नं० २)

“ पिय इतनी विनती सुन मोती ।”

(छन्द न० ३)

कहीं कहीं मीरा ने कृष्ण को ससार-सागर से पार करने वाले परमेश्वर के रूप में मानकर अपने को ससार-सागर में फँसा हुआ दिखाया है और उनमें पाथना की है ।

‘ मेरा बेडा लगाय दीजो पार प्रभुजी घरन करूँ छूँ ।’

(छन्द न० ४)

ऐसी दशा में हम यह कह सकते हैं कि मीरा के हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति-भावों का प्रभाव समय समय पर पड़ा है और इसीलिए इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति भावों की रचनायें की हैं । यदि कहीं वे कृष्ण को समस्त चराचरमय जगत का स्वामी मानती हैं उन्हें अपना स्वामी मानती है तो कहीं वे उन्हें अपना स्वामी, अपना प्रियतम और बेडा पार करने वाला भी कहती हैं । इनकी जीवनी से भी यह प्रगट होता है कि इन पर न केवल कृष्ण-भक्तों का ही प्रभाव पड़ा वरन् तुलसीदास का भी, जो क्षय भाव के भक्त थे, गहरा प्रभाव पड़ा था । ऐसे पद भी मीरा के मिलते हैं जिनके देखने से कबीर की माधुष्य भक्ति और विरोध मूलक भावविन्यास-शैली का भी प्रभाव इन पर जात होता है । जायसी जैसे सत कवियों के प्रेम पीर की भी कलक इनके हृदयाद्गारों में कलक पड़ती है ।

दरद की मारी बन धन डोलूँ ”

(छन्द न० ८)

भक्त और भगवान के बीच माया के कारण जो विषम वियोग की वेदना उत्पन्न होजाती है और जिसका संकेत कृष्ण-काव्य के विप्रलम्भ शृंगारात्मक भाग में तथा सूक्ती-संत कवियों के रहस्यात्मक प्रेम-गाथा-काव्य के एक पद्य में मिलता है उसका भी संकेत मीरा के कतिपय पदों में पाया जाता है। कहीं कहीं कयीर के ज्ञानाभासात्मक विचारधारा की भी पुट हनकी पंक्तियों में पाई जाती है। ।

“ना कोई मारे ना कोई मरता तेरा यह अज्ञान।

चेतन जीव तो धजर धमर है यह गीता को ज्ञान ”

(छंद नं० ६)

किन्तु उसमें निगुण्य एवं निराकारवाद की शैली की स्पष्ट झलक नहीं है जैसी कयीर में है। मीरा वस्तुतः साकारोपासना और सगुण्य धर्म की भक्ति में ही लीन रहती थी। सत्गुरु-महिमा की भी कहीं कहीं सूक्ष्म झलक है।

“सत्गुरु भवसागर तरि धायो”

(छंद नं० १०)

सूर के पदों का भी समिश्रण इनके काव्य में कहीं कहीं किया गया जान पड़ता है।

“करम गति टारे नाहि टरे”

(छंद नं० १२)

इस प्रकार अब हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि मीरा के जितने भी पद मिलते हैं उन सबके भावों पर दृष्टि डाली

तो कबीर, सूरदास, तुलसी, दस तथा जायसल आदि पुरुष महाकवियों के भावों का प्रतिदिग्ध पूर्ण रूप से मिलता है और इस आधार पर मीरा की तुलना न्यूनतम रूप से इनके साथ की जा सकती है। हाँ यह अवश्य है कि इन महाकवियों के समान न तो मीरा में भावोत्कर्ष ही है, न काव्य कौशल है और न भाषा आदि का सौष्टव ही। भाव साम्य अवश्य है और यही हो भी सकता था। मीरा प्रेम-रस ससिक्त भक्तिभावपूर्ण, सहृदय कवयित्री थीं। भावुकता और प्रतिभा उनमें अवश्य ही उररुट थी। इसीलिए अपने समय की प्राय सभी प्रधान रचना-शैलियों, विचारधाराओं और भक्ति भाव-पद्धतियों का जे कर उठाने सुन्दर रचनायें की हैं। स्त्रियों में तो हम यदि मीरा के सर्वोच्च स्थान दें तो कदाचित् अनौचित्य न होगा।

आलम प्राण प्रीता शैल यदि आलम से किसी प्रकार बड़ कर नहीं तो उनसे कम भी नहीं है। प्रेम की जा सुन्दर धारा आलम का सरल स्वाभाविक और स्पष्ट रचनाओं में मिलती है शैल में भी बड़ा प्रवाहित होता हुई जान पड़ता है। यह तो निर्विवाद ही मान सकत है कि दोनों में भाव भावना-साम्य स्वभावतः हा था। यदि प्रेमा न होता और दाना की प्रकृति एक ही न होती तो दोनों में अनुसारा ही न होता। आलम ने शैल की एक ही पक्ति को देख कर यह जान लिया था कि शैल में वे सब गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं। दानों की रचनायें भी ऐसी मिलती जुलती हैं कि कहीं कहीं तो उनका एक दूसरे से पृथक करना बहुत ही कठिन हो जाता है।

सामयिक प्रभाव तो दोनों में ही पाया जाता है। प्रेम की जो अनुभूति और सरसता की जो सुन्दर व्यजना आलम में है लगभग वही, शेर में भी है। नायक-नायिका-भेद तथा अन्य प्रकार कला-पूर्ण काव्य को लेकर हम शेर को कला-काल के साधारण पुरुष-कवियों की कक्षा में रख सकते हैं। यह अवश्य है कि शेर की रचना में सानुप्रासिक और अलंकृत पदावली उतनी विशेष नहीं जितनी कला-काल के पुरुष-कवियों में पाई जाती है। सब से विशेष बात जो शेर की रचना में हमें मिलती है वह है उसकी शुद्ध, सरल, सुव्यवस्थित और सरस व्रजभाषा। शेर के पहले और शेर के बाद भी बहुत दिनों तक ऐसी सुन्दर व्रजभाषा में ऐसी गठी हुई कविता और किसी भी महिला ने नहीं की। यह कहने में श्रुति न होगी कि शेर की भाषा ठाकुर और बोधा की भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। अब एक प्रश्न यह उठ सकता है कि शेर को ऐसी सुन्दर साहित्यिक व्रजभाषा से ऐसा पूर्ण परिचय कैसे प्राप्त हो सका? शेर की प्रति दिन व्यावहारिक भाषा जहाँ तक सम्भव है उसके जाति-संस्कार-प्रभाव से रट्टीबोली ही रही होगी जो उर्दू और फ़ारसी के साँचे में मुसलमानों के द्वारा ढाली गई थी और जिसका प्रयोग-प्रचार मुसलमानों के घरों में विशेष रूप से था। यदि यह कहा जाय कि आलम के साथ में रह कर शेर ने व्रजभाषा के इस साहित्यिक रूप का ऐसा पूर्ण परिचय प्राप्त किया था तो भी कुछ पुष्ट प्रमाण का प्रतिविम्ब इसमें नहीं झलकता। संपर्क-सम्बन्ध का प्रभाव अवश्य पड़ता है परन्तु इतना नहीं। अब एक तो अनुमान इस विषय में यह

हा सकता है कि कदाचित् शैल-स्नेहास्य पान से मदोन्मत्त भालुक आलम ने ही प्रम प्रमाद में धाकर शैल के नाम से रचना की हो जो अब शैल ही की रचना प्रसिद्ध हो गई है। इस अनुमान की पुष्टि के लिए कोई अकांक्ष्य तक, पुष्ट प्रमाथ्य और युक्त-युक्ति जब तक नहीं है तब तक यह केवल विवाद प्रस्य और विचारणीय हा है।

शैल की रचना घस्तुन ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी अच्छे सु-कवि की रचना हो। उसमें वाग्वचिन्थ, चमस्कार-चातुस्य, भाषा सौष्ठव, कला पूर्ण-काय का कौशल सभी अच्छे रूप में प्राप्त होता है। इसी आधार पर हमारा यह अनुमान है कि कदाचित् प्रसय होकर ही आलम ने अपने छर्दा पर शैल के नाम की मुहर लगाकर उसे अमर करने के लिए यह सुन्दर मुक्तक-काय रच दिया है। अनुमान कुछ और आगे बढ़ कर तप्य की ओर मुकने लगता है किन्तु है अभी यह विचारणीय और अवेपणीय ही।

शैल में कहीं-कहीं वृष्य भक्ति का भी रग चदा हुआ प्रनीत होता है। इसे हम सामयिक प्रभुत्व ही कह सकते हैं।^७ निरूपत हम यही कहना चाहते हैं कि जो छंद शैल के नाम से मिकते हैं यदि वे वास्तव में शैल के छंद हैं तो शैल का स्थान खो-समाज में तो उच्चतर है हा पुरुष कवियों में भा यह ऊचा है। हमारी समक से छियों में तो शैल की तुलना चंद्रकला घाई, जैसी दो एक देवियों से

७ छ० न० २० देखो।

हो सकती है और पुरुषों में ठाकुर, आलम, लछिराम और दास जैसे सु-कवियों से भी की जा सकती है ।

जिस प्रकार पुरुष कवियों में केवल कुंडलिया-छंद लिखने के लिए और नीति-काव्य की दोहा-शतक-शैली की कुंडलिया-शैली में रूपान्तरित करने के लिए कविवर गिरिधरदामजी का नाम अपना विशेष महत्त्व रखता है उसी प्रकार साईं का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है और न केवल स्त्री-समाज में ही वरन् पुरुष-समाज में भी । सच बात तो यह है कि जो प्रशंसनीय बात चाण कवि के सुपुत्र ने उत्तरार्द्ध 'कादम्बरी' की रचना करके अपने पिता के संकल्प के पूरा करने में और चन्द्र कवि के सुपुत्र ने 'रासो' की पूर्ति करके चंद्र की आज्ञा के परिपालन करने में दिखलाई है वही बात साईं ने भी अपने जीवन-धन के संकल्प को पूरा करने में दिखलाई है । किसी विशेष कवि की अधूरी रचना को इस प्रकार पूर्ति देना कि तनिक भी अन्तर न हो सके, एक बड़ी ही कठिन और श्लाघनीय बात है । साईं को जैसी स्तुत्य सफलता इससे मिली है वह कहने की बात नहीं । अब हम साईं की तुलना ही क्या करें ? क्योंकि केवल कुंडलिया छंद लिखने में उसके सामने मुख्यतया गिरिधर कविराय, दीनदयालगिरि जैसे कवि ही आते हैं । गिरिधरदास के साथ तो साईं का पूर्ण साम्य है ही । दीनदयालगिरि ने भी साईं की रचना बहुत कुछ मिलती-जुलती है । हाँ, अन्तर यह अवश्य है कि गिरि जी ने अपनी रचनाओं में अन्योक्ति की प्रधानता रखी है और इस प्रकार अपने कला-काल की रुचि को दिखलाया है । साईं ने यह नहीं

किया। क्योंकि उस उसी शैली, उसी भाषा और उसी विचार धारा का लगे हुए रचना करनी थी जो गिरिधरदास की रचना में पाई जाती है। छंद-रचना में साईं किसी भी कु बलिया लेखक पुत्र कवि से कुछ भी कम नहीं। छत्र कुँवरियाई ने भी कु बलिया छंद में रचना की है किन्तु हमारे विचार से वह साईं क सामने तुल्य नहीं करनी।

सुंदर कुँवरियाई की ही रचना ऐसी सुंदर हुई है कि वह भी कला-काल के द्वितीय श्रेणी के सु-कवियों में स्थान पा सकती है। कु बलिया छंद लिखने में यद्यपि इन्हें साईं के समान सफलता नहीं मिली तथापि हमसे इनकी और रचना का महत्व न्यून नहीं हो सकता। कवित्त, सबैलों में इन्होंने जितना भी रचना की है वह उत्कृष्ट कोटि की है। वहाँ-कहाँ तो इनके कवित्त ऐसे सुंदर बन पड़े हैं कि वे अनिराम और पश्चात् के कवित्त का स्मरण कराते हैं। कवित्त का लय इन्होंने बहुत कुछ पश्चात् की ही शैली में रखा है। पदावली भी इनका बहुत कुछ पश्चात् की ही छत्र रखनी है। इन्होंने भी राधा और कृष्ण को अपना रचना का आधार बनाकर शृंगारमय मुक्तक-काव्य लिखा है। यह धनश्य किया है कि विप्रलभ शृंगार को बहुत विशेषता नहीं दी। वचन चातुर्य भी मार्मिक व्यञ्जना के साथ इनके कवित्तों में अच्छी है। भाषा मजुर मार्दवमयी और सरस है साथ ही धलहत और सानुपासिक भा है। इस विचार से चाइ जी कला-काल के द्वितीय श्रेणी वाले किसी भी सु-कवि ने साथ तुल्य सजती है। छियों में इनकी समानता कोई यदि कर सकती है तो वह चन्द्रकला याई ही है।

जैसा हम पहले लिख चुके हैं मुक्तक काव्य-रचना करनेवाली देवियों में चन्द्रकला का बहुत ही ऊँचा स्थान है। हिज बगदेव, जो अपने समय के प्रसिद्ध कवियों थे, तथा लक्ष्मिराम, शंकर आदि से इन्होंने गुप टवकर ली है। कहीं-कहीं तो इन्होंने ऐसी चोगी और शनोगी चातुर्य दिखलाई है कि चलात् यह कहना पड़ता है यह रचना किमी देवी की न होकर एक प्रौढ़ सुकवि की है।^(७) समस्या-पूर्ति करने में जितना सराहनीय श्रम इन्होंने किया है उतना यदि ये किमी पुस्तक की रचना में करतीं तो आज हमें यहाँ पर कोई दूसरा ही पृष्ठ लिखना पड़ता और उसकी विवेचना करते हुए हिन्दी के किमी श्रेष्ठ सुकवि से इनकी तुलना करके साहित्य में ऊँचा स्थान देना पड़ता। जो कुछ सामग्री हमारे पास है उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्त्री-समाज-गण में चन्द्रकला वास्तव में चन्द्रकला है।

स्थानाभाव से हम इस प्रसंग को विस्तृत नहीं करना चाहते यद्यपि हमारी इच्छा यह अवश्य थी कि हम हम पर विरोध प्रकाश दालें। शेष जितनी भी देवियों की रचनायें यहाँ संग्रहीत हैं वे सब इस समय सौभाग्य से जीवित रह कर रचना-कार्य करती ही जा रही हैं। ऐसी दशा में हमको उनकी सुप्रतिभा से थभी और भी बढ़ी बढ़ी आशायें हैं। प्राचीन नियमानुसार जीवित कवियों की आलोचना करना भी अच्छा नहीं कहा गया। वास्तव में जय तक कोई कवि

आवित रह कर रचना-कार्य निरंतर करता जाता है सब तक यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता कि उसका प्रतिभा किम काटि की है। यह केवल तथा साध्य एवं ठीक होती है जब उसकी प्रतिभा के विकास का संभावना न रह जाय और उसके रचना-कार्य की सदा के लिए इतिथी हा जाय। वनमान समय के सदागता में जो कवित्तियाँ सुन्दर रचनायें कर रहा है यद्यपि उनकी आलाचना करना अस्वा प्रदान होता है तथापि हम इया आशा स कि उनकी सुप्रतिभा ने पूरा रूप से प्रस्तुति होकर अभा कोई ऐसा सुन्दर पुस्तक नहीं रच दा है जिसका विगद आलाचना की जा सक और जिसमें कि उनकी रचना का अन् माना जाकर उनका निश्चित रूप निर्धारित किया जा सके। जो कुछ मा रचनायें अब तक इन महिलायों ने उपस्थित की हैं वे बहुत हा सताम-प्रद और आशाजनक हैं।

पुस्तक-परिचय

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज वह दिन आ गया जब हमें अपने साहित्य के क्षेत्र में हिन्दा में बियों के उम काय-साहित्य के भी शुभागमन का स्वागत करने का अवसर मिल रहा है। आज तक जहाँ तक हम जानते हैं हमारे किमा भा विद्वान लेखक न हम छोरे प्यान नहीं दिया था। अर्द्धेय मिश्रवपुष्टों न अपने विनाद में कुछ परम प्रधान द्वियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है तथा मु'या दवाप्रसाद सुमिष्ठ न भा कुछ सात्र का है। इनके सिवा किमा भी हिन्दा-साहित्य

के इतिहास-लेखक ने स्त्रियों के रचना-कार्य का उल्लेख नहीं किया। साहित्य-इतिहास-मूलक कुछ अच्छे ग्रंथ जो आधुनिक समय में प्रकाशित किये गये हैं वे भी स्त्री साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। 'कविता-कौमुदी' आदि ग्रंथों में कहीं कहीं मीरा, सहजो और दया जैसी देवियों की थोड़ी सी रचनाएँ दे दी गई हैं और वे भी एक साधारण दृष्टि से। स्त्रियों का रचना-कार्य जैसा कि इस लेख से स्पष्ट हो गया होगा अपना एक महत्व-पूर्ण स्वतन्त्र इतिहास रखता है और एक स्वतंत्र विषय बनकर एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता दिखलाता है।

मित्रवर निर्मल जी ने, यद्यपि मित्र के नाते हमें न कहना चाहिए, अपने इस सुन्दर ग्रंथ से स्त्री-साहित्य के इतिहास का मार्ग खोल दिया है। जिस पर हम आशा करते हैं कि हमारे खोज करने वाले सुयोग्य लेखक इस अंग की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने ढंग का यह ग्रंथ अग्रिम है। न केवल सूक्ष्म जीवनी और सुन्दर रचनाएँ ही इसमें संग्रहीत की गई हैं वरन् प्रत्येक देवी की रचनाओं की मार्मिक और सूक्ष्म आलोचना भी जीवनी के साथ साथ कर दी गई है जिससे ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ गया है। अन्त में 'कुसुम-माला' के नाम से जो नवोदित कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है वह उन्हें प्रोत्साहित करता हुआ रचना-कार्य के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। ग्रंथ और भी उपादेय बनाया गया है उस शब्द कोष से, जो पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के रूप में दिया गया है। अत्र-तत्र टिप्पणियों के रूप में इतिहास-मूलक

जीवित रह कर रचना-काव्य निरंतर करता जाता है तब तक यह निरिच्छत रूप में नहीं कहा जा सकता कि उसकी प्रतिभा किम कोटि की है। यह केवल तभी साध्य जब ठीक होती है जब उसकी प्रतिभा के विकास की संभावना न रह जाय और उसके रचना-कार्य की मरदा के लिए इतिधा हो जाय। वर्तमान समय के खदीनोली में जो कवयित्रियाँ सुन्दर रचनायें कर रहा हैं यद्यपि उनकी आलोचना करना अस्वाभाविक होता है तथापि हम इसा आशा से कि उनकी सुप्रतिभा ने पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होकर अभी कोई ऐसी सुन्दर पुस्तक नहीं रच दी है जिसकी विषय आलोचना की जा सके और जिससे कि उनकी रचना का अर्थ माना जाकर उसका निरिच्छत रूप निर्धारित किया जा सके। जो कुछ भी रचनायें अब तक इन महिजाधरों ने उपस्थित की हैं वे बहुत ही सतोष प्रद और आशाजनक हैं।

पुस्तक-परिचय

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज यह दिन आ गया जब हमें अपने साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी में कियों के उस काव्य-साहित्य के भी शुभागमन का स्वागत करने का अवसर मिल रहा है। आज तक अहाँ तक हम जानते हैं हमारे किसी भी विद्वान लेखक ने इस धोर प्पान नहीं दिया था। अद्भ्ये मिश्रचन्द्रा ने अपने विनोद में कृष्ण परम प्रधान कियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है तथा मुशा दवीप्रसाद सुसिफ ने भी कुछ साज की है। इनके सिवा किसी भी हिन्दा-साहित्य

के इतिहास-लेखक ने स्त्रियों के रचना-कार्य का उल्लेख नहीं किया। साहित्य-इतिहास-मूलक कुछ अच्छे ग्रंथ जो आधुनिक समय में प्रकाशित किये गये हैं वे भी स्त्री साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। 'कविता-कौमुदी' आदि ग्रंथों में कहीं कहीं मीरा, सहजो और दया जैसी देवियों की थोड़ी सी रचनायें दे दी गई हैं और वे भी एक साधारण दृष्टि से। स्त्रियों का रचना-कार्य जैसा कि इस लेख से स्पष्ट हो गया होगा अपना एक महत्व-पूर्ण स्वतन्त्र इतिहास रखता है और एक स्वतंत्र विषय बनकर एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता दिखलाता है।

मित्रवर निर्मल जी ने, यद्यपि मित्र के नाते हमें न कहना चाहिए, अपने इस सुन्दर ग्रंथ से स्त्री-साहित्य के इतिहास का मार्ग खोल दिया है। जिस पर हम आशा करते हैं कि हमारे खोज करने वाले सुयोग्य लेखक इस धंग की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने ढंग का यह ग्रंथ अप्रतिम है। न केवल सूक्ष्म जीवनी और सुन्दर रचनायें ही इसमें संग्रहीत की गई हैं वरन् प्रत्येक देवी की रचनाओं की मार्मिक और सूक्ष्म आलोचना भी जीवनी के साथ साथ कर दी गई है जिससे ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ गया है। अन्त में 'कुसुम-माला' के नाम से जो नवोदित कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है वह उन्हें प्रोत्साहित करता हुआ रचना-कार्य के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। ग्रन्थ और भी उपादेय बनाया गया है उस शब्द कोष से, जो पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के रूप में दिया गया है। यत्र-तत्र टिप्पणियों के रूप में इतिहास-मूलक

सो यानें लिखी गई हैं वे पाठकों को महिला-साहित्य के विषय में खोज करने की धोर प्रोत्साहित करती हैं। उनमें मार्मिकता और विचार शीलता का अथवा आभास है। समझात रचनायें भा एसी हा हैं जा अपनी पूरा मइता और उल्लसनीयता रखता हैं। सभी उदाहरण शिष्ट सुन्दर, राचक और सुपाठ्य हैं। साथ हा वे उन सब विरापताओं को सूचिन करते हैं जा भिन्न भिन्न दृशियों में पाइ जाती हैं।

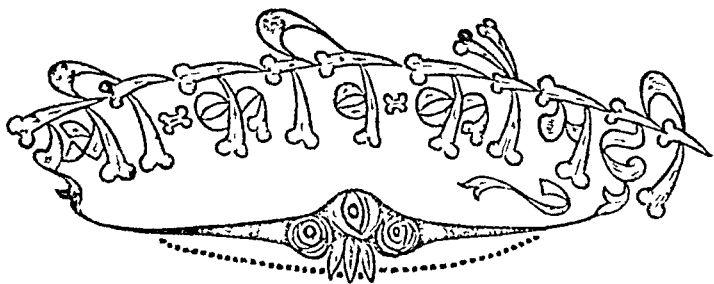
अन्त में इस सुन्दर और सराहनीय ग्रथ के लिए हम प्रसन्नता प्रगट करते हुए यह आशा रखते हैं कि हमारे हिन्दी-मन्सार के भावुक पाठक इसका पूर्ण रूप से ममादर करेंगे साथ ही वे इस पर विचार करते हुए स्त्री-साहित्य की धोर विशेष ध्यान देंगे। यहाँ हमें अपनी यदनों से यह सामाह निवेदन करना भी अनिवार्य जान पड़ता है कि ये इस ग्रथ से सहायता लेते हुए, इसका पूर्ण अध्ययन करके, इसी की शैली से अपने स्त्री-साहित्य का अ-वेपथु और विराप विवेचन करन का प्रयत्न करें और इस प्रकार इसका रचा करते हुए भारी समति के लिए एक स्थाया स्त्री-साहित्य का स्वसत्र आस्तित्व प्रदान करें, तायात्तु।

प्रयाग
२० १ २१

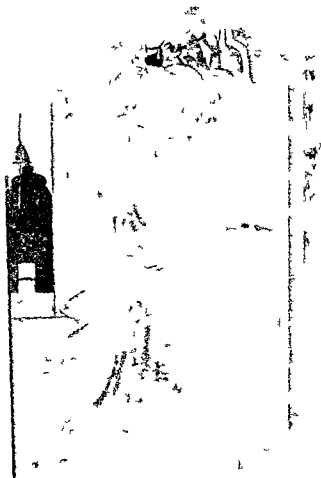
}

विद्वज्जन कृपाकाशी

रामशङ्कर शुरु 'रसाल' एम० ए०



१ खी-कपि-कौमुदी



मरे तो गिरिधर गांपान दूसरा न बाइ ।

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर, मंडता के राठौर रतनसिंह की एक लौटी बेटी थी। इनका जन्म चौकडी नामक ग्राम में हुआ था। इनका विवाह सम्वत् १५७३ में मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा गीमोदिया-कुल-भूपण भोजराज के साथ हुआ था। इनके जन्म और मृत्यु के सम्वत्तों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कहना है कि मीराबाई सम्वत् १६२० और १६३० में मरी होंगी।

मीराबाई का समय क्या है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। गुजराती साहित्य में भी मीराबाई के जन्म-मृत्यु के समय के सम्वन्ध में घोर मतभेद चला आ रहा है। मीराबाई के सम्वन्ध में 'मिश्रबधु' लिखते हैं, "ये बाई जी मेड़तिया के राठौर रतनसिंह जी की पुत्री, राय ईदा जी की पौत्री और जोधपुर में बसनेवाले प्रसिद्ध राव जोवा जी की प्रपौत्री थी। इन्होंने संवत् १५७३ में चौकडी नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमारभोज राज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त झारिका जी में सं० १६०३ में हुआ। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकारण की स्त्री थीं, और बाई जी का जन्मकाल सं० १३७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के

दिया। वे मीरा को गोपाल की भक्ति तथा सन्तों की संगति से अलग रखने का उपचार किया करती थीं। किन्तु इनके हृदय पर साधु-संगति का ऐसा गहरा रंग चढ़ गया था कि लाख कोशिश करने पर भी महाराणा विक्रमादित्य सिंह इनका हृदय घर-गृहस्थी की ओर न फेर सके। विक्रमादित्य सिंह ने मीरा के लिए विप का प्याला भेजा किन्तु वे उसे चरणामृत समझ कर पी गईं। कहते हैं कि इनके शरीर में विप का कुछ भी असर न हुआ। विक्रमादित्य सिंह ने साम, दाम, दंड, भेद सभी से मीरा को घर लौट आने के लिए मजबूर किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। मीरा को अपने देवर पर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने एक दिन महात्मा तुलसीदास को इसी सबन्ध में यह पद लिख कर भेजा —

श्रीतुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाईं ।
 वारहिं वार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई ॥❀
 घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई ।
 साधु सग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥
 वाल पने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मितार्ई ।
 सो तो अब छूटत नहि क्यो हूँ लगी लगन वरियाई ॥

❀ यहाँ इकार को सानुस्वार होना चाहिये था। क्योंकि प्रथम तुक में सानुस्वार इकार ही आया है। मालूम होता है कि मीरा के समय में तुक के इस सूक्ष्म साम्य पर ध्यान नहीं दिया जाता था।

मेरे पात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई ।
 हमको कहा उचित करियो है सो लिखियो समुझाई ॥
 इस पद के उतर में गोरवामी तुलसादास जी ने उन्हें यह पद लिख
 भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता महलाद, विभीषण घघु, भरत महतारी ।

बलि गुरु, तज्यो कल व्रज बनितन, मे सध भगलकारी ॥

नातों नेह राम से मनियत सुहृद सुमेव्य जहाँ लीं ।

अजन कहा औंछ जो फूट बहुतक कहीं कहीं लीं ॥

तुजसी मो सध भावि परम हित पूज्य प्रानवें प्यारो ।

जासों होय सनेह रामपद याही मतो हमारो ॥

गास्वामी जी का यह उत्तर पाने पर मागवाई जी वित्तौड़ छोड़कर
 मेंदता खड़ी गई ।

वहाँ भी मीराबाई का मन न जगा तब ये मेंदता से कृन्दावन खड़ी
 भाई । वहाँ मीराबाई ज्वीव गास्वामी का दर्शन करने गई । उन्होंने
 कहा कि हम छिर्यों छ नहीं मिळते । मीराबाई ने कड़खा भेजा—'मैं
 नहीं जानती थी कि गिराघरबाबा के सिवा यहाँ और भी पुरुष हैं । यह
 सुनते ही जाव गास्वामी नंगे पैर बाहर बाध्य मीराबाई को सन्धार के साथ
 भीतर ले गये । कृन्दावन में कुछ दिन रह कर मीराबाई द्वारका खड़ी
 गई । महाराणा विक्रमादित्य निह मे कई भक्तों को मीराबाई के छे जाने

को द्वारका भेजा किन्तु वे वहाँ से न लौटीं । भक्तों का कहना है कि ये श्री रघुचन्द्र जी के मन्दिर में गईं और वहीं उसी मूर्ति में समा गईं ।

मीराबाई के पद भक्ति रस से परिपूर्ण हैं । इनके पद शायः सभी मन्दिरों और गाँवों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं । इनके हृदय में गिरधर गोपाल का आगध प्रेम था । ये गोपाल की मूर्ति के सामने नाचतीं, गीतों और इन्हीं की सेवा सुश्रुता में लीन रहती थीं । महाकवि देव जी ने इनके सम्बन्ध में एक कवित्त लिखा है :—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,

कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं ॥

कैसो परलोक नरलोक वरलोकन में,

लौन्हों में असोक लोक लोकन ते न्यारी हौं ॥

तन जाहि मन जाहि 'देव' गुरुजन जाहि,

जीव क्यों न जाहि टेक टरन न टारी हौं ॥

वृन्दावन वारी वनवारी के मुकुट पर,

पीत पट वारी वाहि मूरति पै वारी हौं ॥ॐ

मीराबाई ने कई ग्रन्थ बनाये हैं । उनमें से 'नरसीजी का मायरा' भी एक है ; इसे मुंशी देवीप्रसाद जी ने देखा था । दूसरा ग्रन्थ 'गीत गोविन्द की टीका' है । तीसरा ग्रन्थ 'राग गोविन्द' है । इनके भजनों का

ॐ कुछ लोगों का कहना है कि यह छंद मीराबाई का ही रचा हुआ है ।

३

पिय इतनी बिनती सुण मोरी, कोइ कहियो रे जाय ॥
 औरन सूँ रस-वतियाँ करत हौ, हमसे रहे चित चोरी ।
 तुम बिन मेरे और न कोई मैं सरनागत तोरी ॥
 आवण कह गये अजहुँ न आये दिवस रहे अब थोरी ।
 मीरा कहै प्रभु कव रे मिलोगे अरज करूँ कर जोरी ॥

४

मेरा वेड़ा लगाय दीजो पार प्रभु जी अरज करूँ हूँ ॥
 या भव में मैं बहु दुख पायो संसा सोग निवार ।
 अष्ट करम की तलव लगी है दूर करो दुख भार ॥
 यों संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी धार ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर आवागमन निवार ॥

५

म्हॉरो जनम मरन को साथी,
 थॉ ने नहिं विसरूँ दिन राती ।

तुम देख्यौ बिन कल न परत है जानत मेरी छाती ।
 ऊँची चढ़ा चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती ॥
 या संसर सकल जग भूठो भूठा कुलरा नाती ।
 दोउ कर जोड्यौ अरज करत हूँ सुण लीजो मेरी वाती ॥
 ये मन मेरो बड़ो हरामी ज्यूँ मदमातो हाथी ।
 सत गुरु दस्त धर्यो सिर ऊपर आँकुस दै समझाती ॥

८

हेरी में तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय ।
 सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय ॥
 नभ मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय ।
 घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय ।
 जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय ।
 दरद की मारी बन बन डोल्लूँ, वैद मिल्या नहिं कोय ।
 मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब वैद सँवलिया होय ॥

९

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ वाटड़ियाँ ।
 दरसण विन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आँखडियाँ ॥
 तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी विरह की फाँसडियाँ ।
 अब तो बेगि दया कर साहब, मैं हूँ तेरी दासडियाँ ॥
 नैण दुखी दरसण को तरसै, नाभि न वैठै साँसडियाँ ।
 रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखै पासडियाँ ॥
 लगी लगन घूटण की नाहीं, अब क्यो कीजै आटडियाँ ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, पूरौ मन की आसडियाँ ॥

१०

पायो जी, मैने नाम रतन धन पायो ।
 वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ॥

जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी रोवायो ।
 दरचै नहिं कोई खोर न लेवै, दिन दिन षट् सवायो ॥
 रात की नाव खेवटियों सतगुरु भवसागर तर आयो ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरख हरख जस गायो ॥

११

बसो मेरे नैनन म नेंदलाल ।

मोहनो भूरति सौवरि सूरति नैना बने विस्ताल ।
 अघर-मुधा रस मुरली राजित छर वैजन्ती माल ॥
 छुद्र घटिका कटितल सोभित नूपुर मन्द रसाल ।
 मीरा प्रभु सतन सुखदाई, भक्त बङ्गल गोपाल ॥

१२

करम गति दारे नाहिँ टरे ।

सतवादी हरिचँद ये राजा नीच पर नीर भरे ।
 पाँच पाहु अरु कुती द्रौपदि हाइ हिमालय गरे ॥
 जज्ञ किया बलि लेण इन्द्रासन सो पाताल घरे ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे ॥ ❀

१३

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
 दूसरो न कोई साथे सकल लोक जोई ॥

भाई छोड्या वंधु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
 साधु संग वैठ वैठ लोक-लाज खोई ॥
 भगत देख राजी भई जगत देख रोई ।
 अँसुवन-जल सींच सींच प्रेम वेलि वोई ॥
 दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दर्ई छोई ।
 राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगण होई ॥
 अब तौ घात फैल गई जाणे सब कोई ।
 मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥

१४

मीरा मगन भई हरि के गुन गाय ।
 सौँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।
 न्हाय-धोय जब देखन लागी सालिगराम गई पाय ॥
 जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह वनाय ।
 न्हाय-धोय जब पीवण लागी हो गई अमर अँचाय ॥
 सूल सेज राणा ने भेजी दोज्यो मीरा सुनाय ।
 सौँफ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल विछाय ॥
 मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय ।
 भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै वलि जाय ॥

१५

नहिं ऐसो जनम चारम्बार ।
 क्या जानूँ कछु पुन्य प्रगटे मानुसा अबतार ॥

कहा भयो तीरथ व्रत कोन्हें कहा लिए करवट कासी ॥
 इहि देही का गरव न करना माटी में मिलि जासी ।
 यों संसार चहर की वाजी, सांभ पड्या उठ जासी ॥
 कहा भयो है भगवा पहिन्याँ घर तज भये सन्यासी ।
 जोगी होय जुगति नहि जानी उलट जनम फिर आसी ॥
 अरज करों अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फौंसी ॥

१९

म्हारे घर आयो प्रीतम प्यारा ।

तन मन धन सब भेंट करूँगी भजन करूँगी तुम्हारा ।
 वो गुणवंत सुसाहिव कहिए मोमें औगुण सारा ॥
 मैं निगुणी गुण जानू नार्ही वै छो वगसण सारा ।
 मीरा कहै प्रभु कवहिँ मिलोगे तुम विन नैण दुखारा ॥

२०

हे री मोसूँ हरि विन रह्यो न जाय ।

सासू लड़े, रीस जनावे ननदी पिव जी रह्यो रिसाय ।
 चौकी मेलो भले ही सजनी ताला द्योन जडाय ।
 पूर्व जन्म की प्रीति हमारी सो कहँ रहे लुकाय ।
 मीरा कहे प्रभु गिरधर के विन दूजौ न आवै दाय ।

२१

प्रभू जी थे कहाँ गयो नेहड़ी लगाय ।

मैं तो दाधी विरह की रे काहे कूँ औखद देय ॥
 मांस गलि गलि छीजिया रे करक रखो गल मांहि ।
 आँगुरियों से मूँ दड़ी म्हाँरे आवन लागी वांहि ॥
 रहु रहु पापी पपीहा रे पिव को नाम न लेय ।
 जे कोइ विरहिन साम्हले तो पिव कारन जिव देय ॥
 खिन मंदिर खिन आँगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय ।
 घायल ब्यूँ घूसू खड़ी म्हाँरी विथा न बूम्मे कोय ॥
 काटि करेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय ।
 ज्यों देसों म्हाँरो पिव वसै रे वे देखत तू खाय ॥
 म्हाँरे नातो नाम को रे और न नातो कोय ।
 मीरा व्याकुल विरहिनी रे पिय दरसण दीजो मोय ॥

२४

गोहने गोपाल फिरूँ ऐसी आवत मन में ।
 अवलोकत बारिज वदन विवस भई तन में ॥
 मुरली कर लकुट लेउँ पीत वसन धारूँ ।
 आछी गोप भेष मुकुट गोधन सँग चारूँ ॥
 हम भई गुल काम-लता वृन्दावन रैनौँ ।
 पसु पंछी मरकट मुनी शुवन सुनत वैनौँ ॥
 गुरुजन कठिन कानि, कासों री कहिये ।
 मीरा प्रभु गिरिधर मिलि ऐसे ही रहिए ॥

२५

तेरा कोई नाहिं रोकनहार, मगन होय मीरा चली ॥
 लाज सरम कुल की मरजादा, सिर से दूर करी ।
 मान अपमान दोऊ घर बटके, निकसी हूँ शान्त-गली ॥
 ऊँचो अठरिया, लाल किवड़िया, निरगुन सेज बिछी ।
 पँचरगी भालर सुभ सोई, फूलन फूल फलो ॥
 बाजूबद बहूला सोई, सेंदुर गौंग मरी ।
 सुभिरन धाल हाथ में लोन्हा, सामा अधिक मली ॥
 सेज सुखमणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी ।
 तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥

२६

दरस दिन वृषन लागे नैन ।
 जब तें तुम बिहुरे पियप्यारे, कबहुँ न पापों वैन ॥
 सबद सुनत मेरी छतिया फौँपै, मोठे लागै वैन ।
 एक टकटकी पथ निहारूँ, भई छमासो रैन ॥
 धिरह बिधा फौँसू कहुँ सजनी, बह गई फरपत ऐन ।
 मीरा के प्रभु कब हो मिलोगे, दुखमेठन सुखदेन ॥

२७

सखी, गोरी नींद नमानी, हो ।
 पिय की पथ निहारत सिगरी रैन बिहानी, हो ॥
 सब सखियत मिलि सीस दई, मन एक न मानी, हो ।

ताज

ताज नाम की एक स्त्री-कवि हो गई हैं। इनमें प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति थी। इनके जन्म और मृत्यु के संवत्तों का ठीक ठीक पता अभी तक नहीं चला है। सिहोर, रियासत भावनगर निवासी गुजराती और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक गोविन्द-गिह्ला भाई के पास इनके सैकड़ों छंद लिखे हैं। किन्तु उनको भी ताज कवि के सम्यन्ध में कोई प्रमाणिक बात नहीं मालूम है। शिवसिंह सरोज में, इनका जन्म संवत् १६५२ लिखा है। मुंगी देवीप्रसाद जी ने सं० १७०० के लगभग इनका समय माना है। ये जाति की मुसलमान थी। हमने गोविन्द-गिह्ला भाई से इनके विषय में पत्र व्यवहार किया था। उन्होंने हमारे पास ताजकी कई कवितायें भेजी हैं। किन्तु इनकी जीवनी पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं ढाला। गोविन्द-गिह्ला भाई इन्हें करौली राज्य में होना मानते हैं। आप अपने ११-१२-२५ के पत्र में लिखते हैं :—

“ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली ग्राम में हो गई है। वह नहा-धोकर मंदिर में भगवान का नित्यप्रति दर्शन करती थी; इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। किन्तु एक दिन वैष्णवों ने

उसे विधर्मिणा समझ कर मंदिर में दर्शन करने से रोक दिया। इससे ताज उस दिन उपवास करके मंदिर के आँगन में ही बैठा रह गई और वैष्णव के नाम का जप करती रही। जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और कहने लगे— तुने आज ज़रा सा भी प्रसाद नहीं खाया, ले भव हमे खा। कल प्रातः काल जब सब वैष्णव आवें तब उनसे कहना कि— तुम लोगों ने मुझ कल ठाकुर जी का प्रसाद और दर्शन का सौख्य नहीं दिया, इसने आज रात को ठाकुर जी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगों को अदेश कह गये हैं कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसके दर्शन और प्रसाद ग्रहण करने में रुकावट कर्मा मत डालो। नहीं तो ठाकुर जी तुम लोगों से नाराज़ हो जावेंगे। प्रातः काल जब सब वैष्णव आये तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रक्खा दस कर घे अग्र्यन्त चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के पैर पर गिर पड़े और जमा प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगा। पहले ताज मंदिर में जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने आते थे।’

“ताज कवि परम वैष्णव और महा भगवद्भक्त थी। उहाँ ठाकुर जी की कृपा ने यह कवि हो गई। जब मैं करीली गया था, तब बनेक वैष्णवों के मुख से मैंने यह बात सुना थी। वहाँ मैंने इनकी अनेकों कविता भी सुनी। उसी समय मैंने इनकी कितनी ही

कवितायें लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कविता मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में हैं।” ❀

गोविन्द-गिल्ला भाई

सिहोर

भावनगर-राज्य

मथुरा के कविराज चौबे नवनीत अभी मौजूद हैं। वे पहले प्रायः काँकरोली (मेवाड़) में रहते थे। उनका कहना है कि “ताज एक मुसलमान स्त्री-कवि थी और पंजाब की रहने वाली थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर इसका ध्यान हो गया था।”

अनेक सज्जनों का यह अनुमान है कि शाहजहाँ बादशाह की बेगम ताजवीवी (मुमताज महल) ‘ताज’ नाम से कविता लिखती थी। इन्हीं प्रकार अनेक दंतकथायें ताज कवि के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं किन्तु कोई बात प्रमाणिक नहीं जँचती।

ताज कवि पंजाब निवासिनी थीं, और मुसलमानिन थीं, इस पर तो किसी को भी सदेह नहीं हो सकता। क्योंकि इस बात का पता उसके निम्नलिखित कवित्त से चलता है। इस पद्य की भाषा भी सिद्ध करती है कि यह पंजाब की ही रहने वाली थी। कवित्त यह है :—

❀ दुःख है कि श्री गोविन्द-गिल्ला भाई का सन् १९२६ में देहान्त हो गया।

२

कालिन्दी के तीर नीर-निकट कदम्ब कुंज,
 मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की ।
 अन्तर के यामी कामी कँवल के दल लेके,
 रची सेज तहाँ शोभा कहा कहीं तिनकी ॥
 तिहिँ समै 'ताज' प्रभु दंपति मिले की छवि,
 वरन सकत कोऊ नाहीं वाहि छिन की ।
 राधे की चटक देखे अंखिया अटक रहीं,
 मीन को मटक नाहिँ साजत वा दिन की ॥

३

चैन नहीं मनमें न मलीन सुनैन भरे जल में न तई है ।
 'ताज' कहै परयंक यों बाल ज्यो चंपकी माल विलाय गई है ॥
 नेकु विहाय न रैन कछु यह जान भयानक भारि भई है ।
 भौन में भालु समान सुदीपक अंगन मे मनो आगि दई है ॥



खगनिया

खगनिया जिला अक्षात्र मे रणनीत पुरमा नामक ग्राम की रहने वाली थी। इसके पिता का नाम थासू था और जानि की तेलिन थी। यह पढ़ी लिखी तो विशेष रूप से नहीं थी किन्तु पहेलियाँ बनाने में बड़ी प्रवीण थी। इसकी पहेलियों को साधारण लोग बहुत पसन्द करत हैं। बहुत से लोग इसकी पहेलियाँ मुनकर इससे लिख ले जात थे और उन्हें कम्पय पर लेते थे। आज भी कितने ही लोगों को खगनिया की पहेलिया कम्पय हैं। अक्षात्र के एक बहुदय मित्र न खगनिया की कुछ पहेलियाँ हमारे पास भेजा हैं। उन्होंने खगनिया के सम्बन्ध में यह छंद भी लिख भेजा है —

सिर वै लिण तल की मेटी,
धूमति हौं तेलिन की बटी।
कहाँ पहेला बहले दिया,
मैं हौं थासू केर खगनिया ॥

इसन ग्रामीण भाषा में कविता लिखी है। इसकी पहेलियाँ माहि लियक दृष्टि से तो अत्यन्त साधारण हैं किन्तु उनमें कुछ ऐसा रस है जो सभी लोगों को पसन्द आता है। इसन अपनी पहेलियों में अपने पिता का भी नाम खरत है। समार में बहुत से तकी और तेलिन हो गई हैं किन्तु उनमें खगनिया का नाम आज भी अमर है। इसका समय

सं० १६६० विक्रमी के लगभग माना जा सकता है। इसकी कुछ पहेलियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

१

हाथी हाथ हथनियाँ कौंधे, चले जात हैं वक्रुचा बाँधे ॥

गज

२

आधा नर आधा मृगराज, युद्ध विआहे आवे काज ।
आधा टूट पेट में रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

नरसिंह

३

लम्बी चौड़ी आँगुर चारि, दुहो ओर तें डारिनि फारि ।
जीव न होय जीव को गहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कंधी

४

चारि पाँव बाँधे ते मोटि, अपने दल मां सबतें छोटि ।
दुखी सुखी सबके घर रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

चोली

५

भीतर गूदर ऊपर नांगि, पानी पियै परारा मांगि ।
तिहिं की लिखी करारी रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

दावात

६

धाम्हन खावै पटवा पार, लाली है रगति बहि ब्यार ।
नेरे नहा दूर मों रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कचौरी

७

रहत पातोंर बाके काधे, गुजत पुहुपन पै मन साधे ।
काय है पै रस को गहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

भौरा

८

तिरिया क्ष्मी एक थनोरौ, चाल चलति है चलजल बायो ।
मरना जीना तुरत बताय, नकु न अन्नहु पानी खाय ।
हायन मों है भारे रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

नाड़ी

९

इक नारी है धोहड़ नगी, मटपट धन जाती है जगी ।
रकत पियासी खासी रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

मनवार

१०

कोऊ बाको नेकु न खाय, सब ही बाको लेंय मुनाय ।
पास सबहि के ही बह रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

रुपया

११

चुप्पी साधे नेकू न घोले, नारी वाफी गाठें खोले ।
 दरवाजन माँ ऐसेन लटके, चोरन तें स्वावत वेखटके ॥
 रच्छा घर की करता रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

ताला

१२

आंखिन माँ सव लेंय लगाय, लरिका वाते हैं सुख पाय ।
 तनुक न ऊजर कारो रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

काजल

१३

दुइनों एक अजीव अनोखी, बड़ी करारी रगति चोखी ।
 जाते ये दोनों लग जातीं, विनु देखे नहिं वाहि अघातीं ॥
 विना न याके जीवन रहै, वासू केरि खगनिया कहै ।

आँख

१४

पटियाँ आंखिन माँ बंधवावैं, कोल्हू माँ हैं वाहि चलाव ।
 मौन रहे पै विपदा सहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कोल्हू का पैल



शेख

शेख ज्ञानि का मुसलमान थी। इसका विवाह आलम नाम के एक मुकबि स हुआ था। मकुर शिखमिह ने अपने शिखमिह सराज में आलम को सनातन धारण लिखा है और इसका जन्म सन् १७१२ में बताया है। ये औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुहम्मद क टगवार में रहा करता थे। आलम के जन्म-सम्बन्ध के दो चार वर्ष पीछे शरर का जन्म माना जा सकता है। शेख के जन्म और मृत्यु का ठीक ठीक समय निश्चित था नहीं हो सका है।

शेख रगरजिन था। कपडे रंगा करती थी। एक बार आलम ने, जब उनकी शेख म जान पहचान नहीं था, इसे अपनी पगड़ी रंगने का दी। भूल म एक कागज का टुकड़ा जिममें आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उस पूरा करने के लिए बांध दिया था, उसमें बांधा ही रह गया। पगड़ी रंगने समय शेख ने उस कागज के टुकड़े को खाल कर पत्ता। उसमें दोहे की एक पक्ति लिखी थी —

“कनरु घुरी सी कामिनो काहे को कटि छीन।”

शेख ने हय दोहे की पूर्ति हय मकर कर दी —

“कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य घरि दीन ॥”

शेख ने दोहे की पूर्ति करके, कपड़ा रंगने के बाद उस कागज को फिर उसी में बांध दिया। जब आलम को यह पगड़ी मिली और

उन्होंने दोहे की ऐसी सुन्दर पूर्ति देखी, तब वे तुरन्त शेख के घर पहुँचे । उन्होंने शेख को पगडी की रगई के थलावा फितनी ही अशक्तिपूर्ण पुरस्कार में दीं । उसी दिन से दोनों में अगाध प्रेम हो गया । आलम ने मुसलमानी मत को स्वीकार करके शेख के साथ अपना विवाह कर लिया ।

मुंशी देवी प्रसाद जी ने भी इसी प्रकार की एक घटना लिखी है, वह इस प्रकार है :—

“एक दिन आलम अपनी पगडी इमे रंगने को दे गये । इसने रंगते समय उसके छोर में एक कागज़ का परचा बंधा देखा तो उसमें ये तीन पद नायक की प्रशंसा में लिखे थे :—

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोवन की जोति जगि जोर उमगत हैं ।

मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
भूमत हैं मुकि मुकि मँपि उघरत हैं ॥

आलम सा नवल निकार्ड इन नैननि कां,
पाँखुरी पटुम पै भँवर थिरकत हैं ।

शेख ने उसके नीचे निम्नलिखित चौथा पद लिख कर कवित्त पूरा कर दिया :—

चाहत हैं उड़िवे को देखत मयंक-मुख
जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं ॥

आलम ने ज्योंही चौथा चरण पढ़ा त्योंही वे प्रेम में मस्त होकर रंगरेजिन के घर आये । वह उस समय रोटी खा रही थी । उन्होंने

पूछा कि यह चौथा धरन किसने लिखा है तो वह हाथ जोड़कर खड़ी हा गई और बोली कि साह्य मैंने लिखा है। यह सुन कर आलम के हृदय में प्रेम और प्रमथना का हतना कुछ आवेश हुआ कि विस्मरलाह कह कर उसके सग भोजन करने का बंट गये। इसके बाद विवाह होजाने पर दोनों निरिधत होकर काय-रस का मजा लेने लगे।”

आलम और शेर बड़े प्रेमी जीव थे। शर के एक पुत्र भी था उसका नाम था 'जहान'। एक दिन शाहजादा मुअज्जम ने शेर स मजाक में पूछा—“क्या आलम की औरत आप दाई है?” शेर ने उसी समय जवाब दिया—“हाँ जहाँपनाह जहान की माँ मैं दाई हूँ।” शाहजादा शेर का जवाब सुनकर बड़ा खिन्न हुआ। उसने शेर को बहुत सा धन दिया।

शेर और आलम को कविताओं का एक संग्रह 'आलम केलि' नाम का लाला भगवानदीन^७ की संपादकत्व में प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के अंत में लिखा है :—

“इति श्री आलम कृत कविय 'आलम केलि समाप्तम्'। “सम्बन् १७२२ समये अयमन बड़ी शिल्पी धार शुक ॥”

इसके सिवा 'माधवानन्द काम कदवा' नामक सरहृत ग्रन्थ का अनुवाद भी इन्हीं का किया हुआ मतलबापा जाता है। किन्तु इन ग्रन्थ का

^७ छेद है कि लालाजी का १८७३० को फारी में स्वर्गवास हो गया।

अभी तक पता नहीं चल सका है । “आलम-केलि” में आलम और शेख के ४०० छंद संग्रहित हैं । छंदों में कवित्त और सर्वैया प्रधान हैं ।

आलम और शेख का सम्बन्ध प्रेम-भय था । इनके छंदों से साहित्य समझता सच्ची कृष्णभक्त और धनूरी प्रतिभा का परिचय मिलता है । हमारा विचार है कि ‘आलम’ की प्रतिभा से ‘शेख’ की प्रतिभा कुछ ऊँची है । लोग कहते हैं कि आलम, शेख के लिए मुमलमान हो गये । किन्तु हमारी राय में ‘आलम’ की सुसंगति पाकर ‘शेख’ कृष्ण-भक्ति के रंग में रंग कर वृत्तार्थ हो गई । सच्चे कवियों का कोई धर्म नहीं होता । वे तो धर्म के दिखाऊ बंधनों को तोड़कर सच्चे प्राकृतिक सौन्दर्यमय प्रेम-पथ के पथिक होते हैं । ‘शेख’ रंगरेजिन ही न थी वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह सच्चे प्रेम-रग में स्वयं रँगी हुई थी । वह बड़ी प्रतिभाशालिनी और हाज़िर जवाब थी ।

स्वर्गीय मुशो देवीप्रसाद जी के पुस्तकालय में आलम और शेख के १०० छंद मौजूद हैं । इन दोनों का कविता-काल साधारणतः संभव १७४० से सं० १७७० तक माना जाता है । हम यहां ‘शेख’ की कुछ चुनी हुई कवितायें उद्धृत करते हैं :—

१

रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते,
अति कजरारे हग तेरे यों सोहात हैं ।
तीखी तीखी कोरनि करीरे लेत काठे जिउ,
केते भये घायल औ केते तलफात हैं ॥

स्त्री-करि-कौमुदी

६

जोगी कैसे फेरनि वियोगी आवै धार धार,
 जोगी हूँ है तौ लागि वियोगी विनलातु है ।
 जा छिन ते निरखि किसोरी हरि लियो हेरि,
 ता छिन ते खरोई धरोई पियरातु है ॥
 'सेख' प्यारे अति हीं बिहाल होइ हाय हाय,
 पल पल अग की मरोर मुरझातु है ।
 आन चाल होति तिहि तन प्यारी चलि चाहि,
 बिरही जरनि ते निरह जरयो जातु है ॥

७

सीस फूल सीस धखो भाल टोका लाल जखो,
 फट्टु सुक मगल में भेदु न बिचारि हौं ।
 बेसरि की चूनी जोति खुटिला की दूनी दुति,
 धीरनि के नागिन तरैयों ताकि वारि हौं ॥
 'सेख' कवै स्याम विधु पून्यो को मो देखि मुख,
 बुद्धि निसरैगी बेगि सुधि न सँभारि हौं ।
 नम के से नपतत डुरैगे नहीं न्यारे चारे,
 दीपक दुराय तव दीपति निहारि हौं ॥

८

रस में निरस जानि कैसे बसि कीजै आनि,
 हा हा करि मो सों अब बोलि हौ तौ लरैगी ।

औरनि के आधे नाउँ आधो रैन दौरि जाउँ,
 राधा जू के संग पै न आधौ डग भरौंगी ॥
 'सेख' होत न्यारे ऐसी पीर लाये प्यारे तुम,
 अबहीं हौं धिरह बखाने पीर हरौंगी ।
 आज हू न ऐहै कोऊ कालि चलि जैहै सौँह,
 परौं लगि हौं ही वाके पाँय जाय परौंगो ॥

९

मोती कैसी ढरनि ढरकि आवै नैना नेकु,
 तुमैं ढौरी लागी जानौ गौरी ढरि आई है ।
 'सेख' भनि ताकों हाय हाय करौं पाय परौं,
 आय त्राय ऐसी जीय कैसे करि आई है ॥
 नेह नहीं नैननि सनेह नहीं । मन माहिं,
 देह नहीं विकल वियोग जरि आई है ।
 मूठे ही कहत परवस मखो जात हौं सु,
 परवस नहीं वरवस वरिआई है ॥

१०

प्रीति की परनि वैरी धिरह की जीति भई,
 हारे सब जतन जहाँ लौं जानियत है ।
 वेदन घटै न विघटी सी बहै जाति 'सेख',
 आन आन भांति उपचार आनियत है ॥

केल के अरम्भ खिन खेल के वड़ाइवे को,
प्रोढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा हे ढरति है ॥

१३

निरखैं निघाहैं तेई गोरी हैं कठोरी हम,
चोरी ही में चाहैं पतम्कारी केसे पात हैं ।
'सेख' कहि एक वार कान्हर की खोरि आयें,
ठौर रहै मानस, कठोर सोई गात हैं ॥
मोहिनी से बोल कारे तारनु, की डोल मिली,
बोल डोल दोऊ बटमारे वात वात हैं ।
नैना देखें स्याम के ते वैना कैसे सुन माई,
वना सुनैं तिनै कैसे नैना देखे जात हैं ॥

१४ ✓

निधरक भई अनुगवति है नन्द घर,
और ठौर कहूँ टोहे हू न अहटाति है ।
पौरि पाखे पिछवारे कौरै कौरै लागी रहें,
आँगन देहली याहो बीच मँडराति है ॥
हरि रस राती 'सेख' नेकहूँ न होइ हाती,
प्रेम मदमाती न गनति दिन राति है ।
जब जब आवति है तब कछु भूलि जाति,
भूल्यो लेन आवति है और भूलि जाति है ॥

गाढ़े जु हिया के पिय ऐसी कौन गाढ़ी तिय,
 गाढी गाढी भुजन सो गाढ़े गाढे गहे हो ॥
 लाल लाल लोयन उनीद लागि लागि जात,
 साँची कहौ 'सेख' प्यारे में तौ लाल लहे हो ।
 रस बरसात सरसात अरसात गात,
 आये प्रात कहौ वात रात कहाँ रहे हो ॥

१८

तुम निरमोही लोग औरै कछु बूझत हैं,
 कहा एती वात को परेखो जिय मानिये ।
 भावै सोई आवै जु वियोगी दुख पावै जातें,
 परबस भये येती मनहिं न आनिये ॥
 अब नैना लागे भागे कैसे छुटियत है जू,
 पैँडे के चलत सोई नीके पहिचानिये ।
 नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,
 पायन की धूरि हमें दूरि कै न जानिये ॥

१९

जुग है कि जाम ताको सरम न जानै कोऊ,
 विरही की घरी और प्रेमी को जु पल है ।
 'सेख' प्यारे कदियो सँदेसो ऊधो हरि आगे,
 ब्रज वारिये को घरी घरी घृत जल है ॥

हाँसी नहीं नैसकु उकासी देत जोग तन,
विरह बियोग म्हार औरै दावानल है ।
सिर सों न खेनै पग मेले न परे लौं जाय,
गिरि हू ते भारो यहाँ विरह सबल है ॥

२०

मिटि गयो मौन पौन साधन को सुधि गई,
भूली जोग जुगति त्रिमाखा तथ धन को ।
'सेख' प्यारे मन को बनारो भयो प्रेम नेम,
तिमिर अज्ञान गुन जास्यो बालपन को ॥
चरन कमल ही की लोचनि में लौच घरी,
रोचन हूँ राव्यो सोच मिटो धाम धन को ।
सोक लेस नेक हू कलेस को न लेस रखो,
सुमिर श्री गोकलेस गो कलेस मन को ॥

२१

पैंडो सम सूधो बड़ों कठिन किंवार द्वार,
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है ।
'सेख' भनि तहाँ मेरे त्रिमुवन राय हैं जू,
दीन बंधु स्वामी सुरपतिन को पति है ॥
बैरी को न बैरु धरियार्द को न परबेस,
हीने को हटक नाहीं छीने को सकति है ।

हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावे,
चौंटी की चिंघार पहिले ही पहुँचति है ॥

२२

जीत गई प्राननि अनीति भई भीति सब,
बोति गयो औसर बनावै कौन बतिया ।
ऊक भई देह धरि चूक है न खेह भई,
हूक बढ़ी पै न विषि टूक भई छतिया ॥
'सेख' कहि साँस रहिबे की सकुचनि कवि,
कहा कहौ लाजनि कहौगे निलज तिया ।
और न कलेस मेरो नाथ रघुनाथ आगे,
भेसु यहै भाखियो सँदेस यहै पतिया ॥

२३

थोरी वार है जु कहु थोरे सो मैं ताकि आई,
ओरो सो विलाइ कहीं खिन ही मे खोइगो ।
धीरज अधारते रह्यो है खंग धार जैसो,
आँसुन की धार सो न धूरि है जु धोइगो ॥
आहि सुनि आई औ न चाहि ताहि पाई फेरि,
देखि 'सेख' मजनुँ विनाही नींद सोइगो ।
नीकै कै निहारि वाके वसननि झारि डारि,
तार तार ताकि कहूँ वार सो जु होइगो ॥

२४

विद्युरे ते बलभीर धरि न सक्त धीर,
 उपजी विरह पीर ज्यों जरनि जर की ।
 सपिनि सँभारि आनि मलय रगि लाया,
 तैमा उड़ी अवली कहूँ ते मधुकरि फी ॥
 वैश्या थाय कुच बीच उडि न सक्त नीच,
 रहि गई रेख 'सेख' दत दुहूँ पर की ।
 मानहु पुरानन सुमरि वैरु समु जू सों,
 माख्या सम्बरारि रहि गई फोंरु सर की ॥ २३

२५

रूप सुधा मकरन्द पिय त तऊ अलि कट वियोग अरे हैं ।
 'सेख' कहै हरि सों कहियो अलि ध्यान प्रतच्छ समान करे हैं ॥
 जो मन मूरति क निरखे हम दम्बत ही गिरि गात गरे हैं ।
 जोति प्रसग पतग गरे इक मोंई के मूमत तल तरे हैं ॥

२६

जोवन के फूल बन फूलनि मिलनि चला,
 बीच मिग काह सुधि बुधि बिसराई है ।
 बाँसुरी सुनत भइ बाँसुरियो बाँसुरी सु,
 बाँसुरी की काहि 'सेख' आँसुनि अयाई है ।
 थकि थहराइ थहराइ धैठिया न कहूँ,
 ठहराइ जीय ऐसी पनि ठहराई है ।

वारुनी विरह आक आक बकवास लगी,
गई हुती छाक दैन आपु छकि आई है ॥

२७

केसू कुर हरे अध जरे मानो क्वेला धरे,
कौलहाई कोयल करेजा भूँजे खाति है ।
फूली बन वेली पै न फूली हौ इकेली तन,
जैसी तलवेली औ सहेली न सुहाति है ॥
चहुँघा चकित चंचरीकन को चारु चौंप,
देख 'सेख' राती कोंप छाती खोंप जाति है ।
होन आयो अंत तंत मंत पै न पायो कछु,
कत सो वसाति ना वसंत सो वसाति है ॥

२८

जाकी बात रात कही सो मैं जात आजु लही,
मो तन तिरिछे हँसि हेरि सुख दियो है ।
ऐसी देखी आन कोऊ सो न देखी आन तुम,
वाके देखे मानस मरु कै कोऊ जियो है ॥
कै तो कहूँ वीधो डर वेधिवे को ठौर नहीं,
'सेख' ऐसो रावरे कठोर मन कियो है ।
पीरो नहीं प्रेम पीर सीरो न सिथिल भयो,
चीरो नहीं चित या सु हीरो है कि हियो है ॥

स्त्री कवि-कौमुदी

२९

सरिन बुलावै कान्ह मुखहि न लावै मुकि,
 दूतियो निकारी बोनि बेगि ही धगर तें ।
 हौं न भई हाती कहीं बाही की सुहाती ऐसी,
 मान रस माती हौं न बाला डोली डर तें ॥
 जो लौं कहूँ मुरली की घोर मुनी कान 'सेख'
 घरी हीं में देहली दुहेली भई घर तें ।
 परी तिहि काज हुती पीरी पीरी बाल जनु,
 सारी भई सुनि छुटि धीरी गई कर तें ॥

३०

जौहीं भौंह भीजी आँखि ताकि है जु तीजिये से,
 जीवी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै ।
 अबर पत्तारे ते दिगम्बर बनै है तोहि,
 छलक छुआये गज छाल तन छाइ लै ॥
 'सेव' कहै आपी षोऊ जैनी है कि जापी कसो,
 पापी है तो नीर पैठि नागन नहाइ लै ।
 आग बोरि गग में निहग हूँ कै बेगि चलि,
 प्रागे आउ मैल धाइ बैल गैल लाइ लै ॥

छत्रकुँवरि बाई

छत्रकुँवरि बाई रूपनगर (राजपूताना) के राजा सरदारसिंह जी की बेटी और ब्रजभाषा के प्राचीन कवि नागरीदास जी की पोती थीं। ये अपने 'प्रेम-विनोद' नामक ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार देती हैं—

रूपनगर नृप राजसी, निज सुत नागरिदास ।
 तिनके सुत सरदार सी, हौं तनया मैं तास ॥
 छत्रकुँवरि मम नाम है, कहिये को जग माँहि ।
 प्रिया सरन दासत्व तें, हौं हित चूर सदाँहि ॥
 सरन सलेमावाद की, पाई तासु प्रताप ।
 आश्रय है जिन रहसि के, वरन्यो ध्यान सजाप ॥

इनका विवाह महाराजा बहादुरसिंह जी ने वैशाख सुदी १३ सम्बत् १७३१ में कोठडे के गोपालसिंह जी की पुत्री से किया था। इसलिए इनका जन्म सं० १७१५ के लगभग मानना चाहिए। ये बहुत दिनों तक अपने पति के पास रह कर फिर रूपनगर चली आईं। एक स्थान पर यह भी लिखा मिलता है कि ये राजा सरदारसिंह की खवास थीं। बाल्यकाल ही से इन्हें कृष्ण-प्रेम का चस्का लग गया था। उन्हीं की गुणावली के वर्णन करने में ये अपना समय बिताती थीं। ये अपने बाबा नागरीदास के ग्रंथों का अधिक अध्ययन किया करती थीं। इसी से इनके हृदय में कृष्ण जी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार

सख्यग और प्रेम से इनके हृदय में भक्ति भाव-भयी कविता करने की इच्छा पैदा हुई ।

अतः में इन्होंने सलेमाबाद के निम्बाकं सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली । हमका पता ठीक ठीक नहीं चलता कि इनका मरण किये सन्वत् में हुआ । इनका 'प्रेम विनाद' नामक ग्रन्थ सन्वत् १७४६ भागाद सुदी तीन वृहस्पतिवार को समाप्त हुआ था । इनकी कविता सरस, शृंगार भक्ति के रंग में रेंगी हुई सुन्दर है । 'प्रेम विनोद' से इनकी कुछ रचनाएँ यहाँ दी जाती हैं —

१

श्याम मध्वी हँमि कुँवरि दिसि, धोली मधुरी बैन ।
 सुमन लेन चलिण अरै, यह विरियोँ मुख दैन ॥
 यह निरियोँ मुख दैन, जान मुमुकाय चलो जय ।
 नवल सखी वरि कुँवरि, रग सहचरि विधुरी सय ॥
 प्रेम भरी सख सुमन चुनत, जित तित सौँमी हित ।
 ये दुहुँ घेउस अग फिरत, निज गति मति मिहितः ॥

⊙ कुँडलिया छंद का यह नियम है कि वह जिस शब्द से प्रारम्भ होता है उसी पर समास भी होता है । किन्तु वहाँ जा की कुँडलियों में यह नियम सर्वथा चरितार्थ नहीं होता । प्रायः कुँडलिया लिखन वाले सभी कवियों ने पंचम पद में अपने नाम या उपनाम दिए हैं परन्तु वहाँ जो ने ऐसा नहीं किया ।

२

गरवाही दीने कहूँ, इक टक लखन लुभाहिं ।
 पगपग द्वै द्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं ॥
 थकित खरी रहि जाहिं, हगन हग छुटै न छुटै ।
 तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सुद्धै ॥
 नैनन नैनन सलग वैन सो नहिं वनि आवै ।
 उमड़न प्रेम समुद्र थाह तिहिं नाहिन पावै ॥

३

फूलन संझा समय अति, फूले सुमन सुरंग ।
 फूले नैन दुहन के, फूलि समात न अंग ॥
 फूलि समात न अंग रंग तिहिं सुगल सम्हारै ।
 साँझी सुरत सुआय लैन तव सुमन विचारै ॥
 प्यारी भूमक भुकात डार भूमत अलवेली ।
 कर पहुँचै तहँ नाहिं, चढ़ावत कध नवेली ॥

४

लेत सुमन वेलीन तें, मोतिन की सी वेलि ।
 वृन तोरत लखि छकि तहाँ, नागरि सखी नवेलि ॥
 नागरि सखी नवेलि, अपन पौ सर्व निवारै ।
 सुमन गहावत सघन, भूम निरवारै डारै ॥
 अरुभक्त प्यारी वसन जहां द्रुम वेलिन माँही ।
 सुरभावत नव नारि, अपुन उरभक्त उरभाहीं ॥

८

मिला मिली की रीति जो चलन लगी इहिं वाग ।
 रहिये तिहि सामिल तहाँ, जो प्रसंग जिहिं जाग ॥
 जो प्रसंग जिहिं जाग तिहीं वानिक गति गहिण ।
 अलि मनोज वर फिरत, दुहाई देत सुलहिण ॥
 मिल विछुरन न सलाह, लाह दैहैं प्रह साँझी ।
 मिलै मेल है रंग अन्नंग रस सुरहैं माँझी ॥

९

कछु मुसुकत मतराय कछु, कछो कुँवरि सकुचात ।
 वात तिहारी ये कछु, मोहि न समझी जात ॥
 मोहि न समझी जात, कहा झकझोर मचाई ।
 साँझी खेलन-वेर, यहै अत्र नियमा आई ॥
 कहिहैं गोप कुँवारि, गई कव की कित न्यारी ।
 गेह चलन की वेर, अवै क्यों करत अवारी ॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय बेरया थी। यह भावड़ा (गुदेखलड) के महा राजा इद्र जातसिंह का क. यहाँ रहती थी। महाकवि केशवदास दास ने इसी के विष 'कवि प्रिया' ग्रन्थ की रचना की थी। केशवदास जी 'कवि प्रिया' के प्रथम प्रभाव के अंतिम दाहे में कहते हैं—

सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकारा ।

ताक काज कवि प्रिया, कीही केशवदास ॥

यह केशवदास की शिष्या थी। इहाँ की सगति से इसने भी कविता करना सीख लिया था। 'कवि प्रिया' में केशवदास का ने प्रवीणराय का बड़ी प्रशंसा की है। कुछ उदाहरण लीजिए—

तत्री तुमुरु सारिका, सुद्ध सुरत सों लीन ।

देव-सभा सी देखिये, रायप्रधीन प्रधीन ॥

अर्थात्—रायप्रधीन की अति सुन्दर धीणा देव-सभा की है। क्योंकि जैस देव-सभा तत्री (वृहस्पति) तुमुरु (गणव) सारिका नामी अप्परा तथा सतोगुणी देवताओं से संयुक्त रहती है वैसे ही रायप्रधीन की धीणा भी तार, तूँषा, सारिका इन्द्र सुरों से युक्त है।

सत्या रायप्रधीन युव, पुरतडर सुरतर रोह ।

इद्रजीत तासो बँधे, केशवदास सनेह ॥

अर्थात्—प्रवीणराय (पातुर) सत्यभामा के समान है । क्योंकि जैसे सत्यभामा में कृष्ण के प्रति सुन्दर प्रेम था वैसे ही रायप्रवीण में भी अपने पति के प्रति सुन्दर प्रेम है । जैसे सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष था वैसे ही इसके घर में भी सुरो का वृक्ष अर्थात् जिसमें सातों सुर निकलते हैं ऐसी वीणा है । जैसे सत्यभामा पर श्रीकृष्ण जी अनुरक्त थे वैसे ही राजा इंद्रजीत भी इससे बँधे हैं अर्थात् अनुरक्त हैं ।

नाचति गावति पढ़ति सव, सवै वजावत वीन ।

तिनमें करति कवित्त इक, रायप्रवीन प्रवीन ॥

अर्थात्—इंद्रजीत सिंह के यहाँ जितनी वेश्यायें थी वे सभी नाचने, गाने, पढ़ने और वीणा बजाने में अत्यन्त कुशल थीं, किन्तु उनमें रायप्रवीण केवल कविता करने में ही अति प्रवीण थी ।

रतनाकर लालित सदा, परमानदहि लीन ।.

अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रवीन ।

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि लक्ष्मी है । क्योंकि लक्ष्मी रत्नाकर द्वारा लालित हुई है तो यह भी रत्न-समूह से सदा लालित रहती है । (रत्न-जटित आभूषण पहने रहती है) और लक्ष्मी परमानंद (नारायण) की सेवा में लीन रहती है तो यह भी अत्यंत आनन्द में सदा निमग्न रहती है । लक्ष्मी के हाथ में निर्मल सुन्दर कमल रत्ता है तो यह भी हाथ में सुन्दर कमल (कमल नामक आभूषण) रखती है ।

रायप्रवीन कि शारदा, मुचि रुचि राजत अग ।

वीणा पुस्तक धारिणी, राजहस सुत सग ॥

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि शारदा है । क्योंकि शारदा का अग स्वेत कांति से रजित है और इसका अग भी शृ गार की कांति से रजित है । शारदा वीणा और पुस्तक लिए रहती है और यह भी वीणा और पुस्तक लिए रहती है । शारदा के साथ राजहस रहता है और यह भा इस-जात (सूर्यवशी) राजा के साथ रहता है ।

वृषभ वाहनी अग उर, वासुकि लसत प्रवान ।

शिव सँग सोहै सर्वदा, शिवा की रायप्रवीन ।

अर्थात्—यह पावती है या रायप्रवीण, क्योंकि पार्वती शिव का अग हाने म वृषभ-वाहिनी हैं, उनके उर में वासुकी नाग पदा रहता है और प्रवीण भी हैं । वे सर्वदा शिव के सग रहती हैं । इसी प्रकार प्रवीणराय भी अपने अग पर धर्म को बहन करती है अर्थात् वेरपा होने पर भा वेरपा-वृत्ति छाड़ केवल एक राजा ही से सम्बन्ध रखती है अतः पतिव्रता है । उस पर पूजों की माला धारण करती है और उत्तम वाद्या भी रखती है तथा मवदा सुन्दर रूप-युक्त शाभा देवी है ।

सुवरन धरन सु सुवरननि, रचित रुचिर रुचि लान ।

तन मन प्रगट प्रवीन मति, नवरँग रायप्रवीन ।

अर्थात्—प्रवाणराय कैमी है कि माने का सा सुन्दर रग है । साने के बने हुए सुन्दर आभूषण उनकी कांति में लुप्त होते जान हैं । उसके तन से और मन स मति की प्रवीणता प्रगट होती है ।

प्रवीणराय बड़ी मुन्दरी थी। वेरया होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पदी लिखी थी। कविता करने में अत्यन्त प्रवीण थी। महाराज इंद्रजीत सिंह ने अनेक वेरयाओं से युक्त संगीत का एक अखाड़ा बनवाया था, जिसमें यह प्रधान थी।

प्रवीणराय कविता करती थी, इसलिए महाराज इंद्रजीत को अत्यन्त प्यारी थी। उस समय भारत में मुगल सम्राट अकबर का शासन था। प्रवीणराय की काफ़ी प्रशंसा हो रही थी। अकबर बादशाह ने भी अपने किन्हीं हिन्दू दरबारी से उसकी प्रशंसा सुनी। उसने प्रवीणराय को बुला भेजा। प्रवीणराय ने इंद्रजीतसिंह के पास जाकर यह सबैया पढ़ा :—

आई हौ ब्रूमन मन्त्र तुम्हें निज स्वासन सो सिगरी मति गोई ।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिए न लजौं लजि हैं सब कोई ।
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई ।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भग न होई ॥

इन्द्रजीत सिंह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। इससे अकबर ने नाराज़ होकर इंद्रजीत सिंह पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया और प्रवीणराय को ज़बरदस्ती बुला भेजा। प्रवीणराय अकबर के दरबार में गई। यह बड़ी चतुर और पतिव्रता थी। इसने दरबार में जाकर पहले अकबर बादशाह को यह सबैया सुनाया:—

अग अनंग तहीं, कुछ संभु सु केहरि लंक गयन्दहिं घेरे ।
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजन क्यो न चुगै तिलि नेरे ॥

है कच राहु तहीं उदै इदु सु कीर के त्रिम्बन चाचन मेरे ।
कोऊ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकबर तरे ॥

प्रवीणराय ने बादशाह के सामने कई गीत गाए । इय समय रायप्रवाण का व्यवस्था कुड़ डलने पर था गई थी । बादशाह अकबर ने इसका व्यवस्था देखकर एक दोहे का आधा पद कहा —

युवन चलत तिय देह ते, चटक चलत किहि हेत ।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया —

मनमथ वारि ममाल को, सौति सिहारो लत ॥

बादशाह ने फिर आधा दाहा कहा —

ऊँचे है सुरवम किये सम है नरवस कीन ।

प्रवीणराय न उत्तर दिया —

अय पताल वस करन को डरकि पयानो कीन ।

अकबर बादशाह प्रवीणराय की कविता पर मुग्ध हो गया । उसने प्रवीणराय से अपने दरबार में रहने के लिए कहा और उसे धन शौलत का भी खोभ दिया । किन्तु प्रवीणराय ने बादशाह से यह दोहा कहकर बिदा माँगी :—

धिनती राय प्रवीणकी, मुनिये साह सुजान ।

जूठी पतरी भखत हैं, धारी-बायस-स्वान ॥

प्रवीणराय का प्रवीणता और कविशुगुण देखकर बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने उसे इन्द्रजीत के पास उसी समय भेज दिया । केशवदास जी के उद्योग और महाराज वीरबल की प्रेरणा से अकबर

वाटशाह ने महाराज इन्द्रजीत सिंह का एक करोड़ के जुमाना भी माफ कर दिया ।

प्रवीणराय का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ हमने नहीं देखा और न उसके रचना-काल के ही सम्यन्ध में हम कुछ ठीक ठीक कह सकते हैं । केशवदास जी के समय में तो यह थी ही । इसलिए इसका समय भी वही हो सकता है जो केशवदास जी का है । इसकी जो फुटकर रचनायें हमारे देखने में आई हैं उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

१

सीतल सरीर डार, मंजन कै घनसार,
 अमल अँगोछे आछे मन मे सुधारि हौ ।
 देहौं न अलक एक लागन पलक पर,
 मिलि अभिराम आछी तपन उतारि हौं ॥
 कहत 'प्रवीणराय' आपनीन ठौर पाय,
 सुन वाम नैन या वचन प्रतिपारि हौं ।
 जबहीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान-प्यारे,
 दाहिनो नयन मूँदि तोहीं सौं निहारि हौं ॥

२

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधोत कलश हर ।
 उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर ॥
 सरवन शरवन हेम मेरु कैलास प्रकासन ।
 निशि वासर तरुवरहिं काँस कुन्दन दृढ़ आसन ।

इमि कहि 'प्रतीन' जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सँग ।
कलि रलित चरज बलटे सलिल इहु शीश इमि चरज डँग ॥

३

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखों,
चुनि दै धिरैयन को मूँदि राखों जलियो ।
सौरग में सौरग सुनाइ के 'प्रतीन' धीना,
सौरग दै सौरग को जोति करौं थलियो ॥
बैठि परयक पै निसक हूँ कै अक भरो,
करौंगी अघर पान मैन मत्त मिलियो ।
मोहि मिलैं इद्रनीत धीरज नरिन्द राय,
एहो बद् । आज नहु मद गति चलियो ॥

४

छूटा लटैं अलवली सी चाल भरे मुखपान चरी कटि छीना ।
चारि नकाग उघारे उराजन मोहन हेरि रही जु प्रतीनी ॥
वात निशक कहै अति मोहि सों मोहि सों प्रीति निरतर कीनी ।
छौंठि महानिधि लोगन की हित मेरा सो क्यों तिसरै रसभीनी ॥

५

अन गारि तुम कहैं दहिं हम कहि कहा दूलह राय जू ।
कतु बाप विप्र परदार सुनियत करा कहत कुवाय जू ॥
का गनै कितने पुरुष की-हैं कहत सब ससार जू ॥
सुनि कुवर चित दै वरनि ताका कहिय सब व्योहार जू ॥

बहु रूप सो नवयोवना बहु रत्नमय वपु मानिये ।
 पुनि वंश रत्नाकर वन्यो अति चित्त चंचल जानिये ॥
 शुभ शेष फण मणिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू ।
 करि शीश पश्चिम पाँय पूरव गात सहज सुगंध जू ॥
 वह हरी हठि हिरनाक्ष दैयत देखि सुन्दर देह सो ।
 वरवीर यज्ञवरात वर ही लई छीनि सनेह सों ॥
 हँ गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू ।
 पुनि कछुक दिन वश भई ताके लियो सरवम सार जू ॥
 वह गयो प्रभु परलोक कीन्हौ हिरणकश्यप नाथ जू ।
 तेहि भांति भांतिन भोगियो भ्रमि पलन छांड्यो साथ जू ॥
 वह असुर श्रीनरसिंह माख्यो लई प्रवल छडाइ के ।
 लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत गोसुख पाइ के ॥
 हरिचन्द विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै ।
 तेहि वरी वलि वरिवंड वर ही विप्र तपसी जानि कै ॥
 वलि वांधि छल—वल लई वावन दई इन्द्रहिं आनि कै ।
 तेहि इन्द्र तजि पति कख्यो अर्जुन सहस भुज का जानि कै ॥
 तव तासु मद छवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू ।
 सो परशुराम सगोत जाख्यो प्रवल वलि की अग्नि जू ॥
 तेहि वेर तवही सकल चित्रिन मारि मारि वनाइ कै ।
 इक वीस वेरन दई विप्रन रुधिर-जल अन्हवाइ कै ॥
 वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै ।

अरु कहत हँ सन रावणादिक रहे ता कहँ हूँडि कै ॥
 यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू ।
 अरु और मुख निरखैं न ब्या ल्यो राखिया रघुनाथ जू ॥ॐ

६

नीकी घनी गुननारि निहारि नरारि तऊ अँलिया ललचाती ।
 जान अजानन जारति दीठि बसीठि के ठौरन औरन हाती ॥
 आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी 'प्रवीन' बहै रसमानी ।
 ब्या ब्या कहु न प्रसाति गोपाल की त्या ल्यो फिरै घर में मुसुकाता ॥

७

सैन कियो उर सों उर लाय कै पानि दुहँ कुच सपुट कीने ।
 कोटि उपाय उपाय सखीनि भुराइ भुराइ बिसासिनि दीने ॥
 देखि कला कल प्यारी 'प्रवीन' सुवीन भयो मुख नैननि लीने ।
 नेक कपोलन अँगुरी लाय कै दुख दुराइ महा रस भीने ॥

८

मान कै बैठी है प्यारी 'प्रवीन' सो देखे धनै नहीं जात बनायो ।
 आतुर है अति कौतुक सों उत लाल चल अति मोद बग्याया ॥

ॐ उपयुक्त सान पद्य केशव की रामचंद्रिका के हैं । केशवदाम ने यह गारा राम के विवाह की कथा लिखते समय प्रवीणराय से लिखाई थी ; देखा स्वर्गीय आवा भगवानदीन जी का कहना है ।

जोरि दोऊ कर ठाढ़े भये करि कातर नैन सों सैन बतयो ।
देखत बेदी सखी की लगी मित हेखो नही इत यो बहरायो ॥

९

दोहा लाल कक्षो सुन्यो, चित दै नारि नवीन ।
ताको आधो विदु युत, उत्तर दियो 'प्रवीन' ॥

१०

चिबुक कूप, मद डोल[†] तिल, वैधत अलक की डोरि ।
दृग भिस्ती, हित-ललकि तित, जल-छवि भरत भकोरि ॥ॐ



ॐ ये पाँच छंद पं० कृष्णविहारी मिश्र के छोटे भाई पं० विपिनविहारी मिश्र ने भेजे हैं ।

† पानी भरने का डोल ।

दयावाई

दयावाई महात्मा चरनदास की शिष्या थीं। प्रसिद्ध सहजोबाई इनकी गुरु बहन थीं। ये चरनदास जी स्वजातीय थीं। इनका भी जन्म चरनदास जी के जन्म स्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाव में हुआ था। ये अपने गुरु जी के साथ दिल्ली में धार रहने लगीं और भगवद् भक्ति में अपना समय बिनाकर वहीं अपना शरार द्वादा। सन्तवानी के सम्पादक का कहना है कि सवत् १७२० और सम्बत् १७७२ के बीच के किसी सम्बत् में इनका जन्म होना पाया जाता है।

इनकी दयावाई की बानी नामक एक पुस्तक सन्तवानी-पुस्तक-माला में प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस व प्रकाशित हुई है। जिसमें 'दया बोध' और विनय मालिका नामक पुस्तकें सम्प्रहीत हैं।

दयाबाध सम्बत् १८१८ वि० में बना। दयाबोध के अंत में यह दोहा लिखा है—

सवत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति ।

चैत सुदी तिथि सातवाँ, भया प्रथ सुभ रीति ॥

इसमें 'गुरुमहिमा प्रम के अंग 'सूर का अंग 'सुमित्त का अंग' शीर्षकों द्वारा अनेक दोहे और पदों का समूह है। इसमें दयावाई का ने अपने गुरु चरनदास जी का बड़ी महिमा गाई है। इनके सभी पद भक्ति-रस व परिपूर्ण हैं।

इस ग्रन्थ के पदों में दयावाई जी ने अपने नाम दया, दयादास और दयाकुँवरि रखे हैं। पता नहीं ये तीनों नाम दयावाई के ही हैं या इनमें से दो और किसी के। सम्भव है किसी 'दयादास' नामक साधु सज्जन ने अपने पद इस पुस्तक में रख दिये हों? क्योंकि दयावाई जी का अपनी रचना में तीन प्रकार से नाम का प्रयोग करना कुछ असम्भव सा जान पड़ना है। 'दया कुँवरि' नाम से यह प्रगट होता है कि गायद ये किसी राज-घराने की स्त्री रही होंगी। क्योंकि 'कुँवरि' का प्रायः राजकुमारियों के नाम के साथ प्रयोग होना है। कुछ भी हो दयावाई जी परम भक्त और भगवद्-भक्ति-परायणा थी। उन्होंने अपनी बानी में प्रेम की व्याख्या सुन्दर रूप में की है।

'मिश्रवधु-विनोद' में दयावाई का नाम नहीं दिया गया। कविता-कौमुदी-कार ने भी दयावाई के सम्बन्ध में थोड़ा ही सा परिचय दिया है। सन्तबानी के सम्पादक ने इनकी एक दूसरी पुस्तक 'विनय-मालिका' नाम से प्रकाशित की है। किन्तु हमारी समझ में यह पुस्तक दयावाई जी की रची हुई नहीं है। मालूम होता है यह चरनदास जी के शिष्य और दयावाई के गुरु भाई किसी 'दयादास' नामक सज्जन की रचना है। इसी 'दयादास' के नाम से अनेक पद दयावाई जी के 'दयावोध' में भी पाये जाते हैं। दयावाई जी के 'दया' और 'दया कुँवरि' नाम से जितने पद मिले हैं उन्हें हम उन्हीं के रचे हुए मानते हैं। 'विनय-मालिका' और 'दयावोध' की कतिपय

२

ज्ञान-रूप को भयो प्रकास,
 भयो अविद्या तम को नास ।
 सूक्त पख्यो निज रूप अभेद,
 सहजै मिट्यो जीव को खेद ॥
 जीव ब्रह्म अन्तर नहिं कोय,
 एकहिं रूप सर्व घट सोय ।
 विमल रूप व्यापक सब ठाईं,
 अरध उरध मधि रहत गुसाईं ॥
 जग-विवर्त सो न्यारा जान,
 परम-द्वेव रूप निरवान ।
 निराकार निरगुन निरवासी,
 आदि निरंजन अज अविनासी ॥



कविरानी

वंशी-राज्य के छात्र्य में बहुत से कवि रहने चाये हैं और रहते हैं ।
२ राव राजा बुधसिंह जा के छात्र्य में कविराज लोकनाथ चौबे नाम क एक कवि रहने थे । इनका स्त्री कविरानी जी भी मुकवि थीं । राव राजा बुधसिंह जी सवन् १७२२ से सम्बन् १८०२ तक वर्तमान थे । यही समय कविरानी जी का भी माना जा सकता है ।

कविरानी जी के पति कविराज लोकनाथ चौबे एक शक्ते कवि थे । इन्हीं का सम्मग से कविरानी जी को भी कविता करने का अष्टा अभ्यास हो गया था । ये कविता अपने पति के समान सरल, सुन्दर और सरस करती थीं ।

एक बार कविराज लोकनाथ चौबे राव राजा बुधसिंह के साथ दिल्ली गये । राव राजा बुधसिंह ने उन्हें किर्पी कारण से अटक (सिध नन्नी) के ठस पार जाने का हुशम दिया । कविरानी जी ने जब सुना कि राव राजा बुधसिंह ने उन्हें अटक-पार जाने का हुशम दिया है ता वह अनन्त दुसा हुई क्योंकि ये बड़ी धार्मिक रमणी थीं । उन्हें यह डर था कि यदि कविराज जी अटक-पार जावेंग ता वहाँ कहीं उनका धम्म न अष्ट हो चाय । क्योंकि वहाँ अधिकतर मुसलमानों का निवास था । कविरानी जी ने अपने पति कविराज जी को एक कविता लिख भेजी ।

कविराज जी ने वह कवित्त राव राजा सुधसिंह जी को सुनाया । सुधसिंह जी को वह कवित्त बहुत पसन्द आया ।

कविरानी जी ने कोई पुस्तक लिखी थी या नहीं, इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला । इनके बनाये हुए कुछ ही छंद सुने जाते हैं । बूंदो के वर्तमान कविराज रामनाथ सिंह से भी हमने पूछ-ताछ की थी किन्तु उन्होंने भी दो छंदों के सिवा और कोई छंद नहीं बताया । वे छंद ये हैं :—

१

मैं तो यह जानी हो कि लोकनाथ पति पाय,
 संग ही रहौंगी अरधङ्ग जैसे गिरजा ।
 एते पै बिलक्षण है उत्तर गमन कीन्हों,
 कैसे कै मित्त ये वियोग विधि सिरजा ॥
 अत्र तौ जरूर तुम्हे अरज करे ही वने,
 वे हू द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरजा ।
 जो पै तुम स्वामी आज अटक उलंघ जैहौ,
 पाती माहि कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरजा ॥

२

बिनती करहुगे जो बीर राव राजाजी सो,
 सुनत तिहारी बात ध्यान मे धरहिगे ।
 पाती 'कविरानी' मोरी उनहि सुनाय दीन्हो,
 अवसि विरह-पीर मन की हरहिगे ॥

वे हैं बुद्धिमान सुखदान वढ़भागी वढे ,
घरम की बात सुन मोद सों भरहिंगे ।
मेरी बात मानौ रात्र राजा सों अरज करौ,
लौटन को घर फरमाइस करहिंगे ।



रसिकविहारी *

रसिकविहारी जी, महाराज नागरीदासजी की दासी थी। इनका असली नाम बनीठनी जी था। ये हमेशा महाराज की सेवा में रहा करती थीं। महाराज की संगति से इन्हें भी कविता करने का अच्छा अभ्यास हो गया था। उन्होंने कविता का कोई ग्रन्थ नहीं रचा। 'नागर-समुच्चय' नामक ग्रन्थ में, जो महाराज नागरीदासजी की कविताओं का संग्रह है, रसिकविहारी जी की भी कविताएँ संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर नागरीदासजी की कविता के साथ ही साथ 'शानकवि कृत' इस नाम से इनके बहुत से पद छपे हुए हैं।

'नागर-समुच्चय' ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ है। वह अत्यन्त अशुद्ध ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में छपे हुए रसिकविहारी जी के पदों से यह प्रगट होता है कि ये बड़ी धर्मपरायणा और कृष्ण-भक्त थीं। इनका देहान्त महाराज नागरीदासजी की मृत्यु के कुछ पीछे आपाड़ सुदी

छइसी नाम के एक दूसरे कवि हिन्दी संसार में विख्यात है। पाठक उनसे परिचित ही होंगे।

† सूरदास की प्रचलित की हुई पद-शैली का प्रचार इतना अधिक हो गया था कि वह राजपूताना, मारवाड़, उत्तरी गुजरात, पूर्वी पंजाब और युक्तप्रान्त में भी अपनाई गई थी।

१५ सवत्र १८२२ में हुआ था। 'नागर समुच्चय' में इनके दो पद छपे हुए हैं उनमें से कुछ चुने हुए पद यहाँ दिये जाते हैं —

१

रतनारो हो थारी आँखडियों ।

प्रेम छकी रस-बस अलसाणी जाणि कमल की पॉलणियों ॥

सुन्दर रूप लुभाई गति मति हों गई ज्यू मधु मॉखडियों ।

'रसिकविहारी' वारी प्यारी कौन बसी निसि कौँखडियों ॥

२

हो मालो द छे रसिया नागर पनों ।

सारों देखें लाज मरों छों आवों किण जतनों ॥

छैल अनोरयो क्यों कह्यो मानै लोभी रूप सनों ।

'रसिकविहारी' छणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मनो ॥

३

पावस श्रुतु घृदावन की दुति दिन दिन दूनी दरसै है ।

छवि सरसै है ।

लूम मूम सावन घना घन धरसै है ॥

हरिया तरधर सरवर भरिया जमुना नार कलोलै है ।

मन मोलै है ।

प्यारी जी रो बाघ मुहावणो मोर धोलै है ॥

आमा आया यीष विमकै जलधर गहरो गाजै है ।

निर राजै है ।

स्यामा सुन्दर मुरली रली वन बाजै है ॥

‘रसिकविहारी’ जी रो भीष्यो पीताम्बरप्यारी जी री चूनर सारी है ।

सुखकारी है ।

कुंजा कुंजा भूल रमा पिय प्यारी है ॥

४

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ ।

होरी खेलत नद लाडिलो क्यों कर निवहन पाऊँ ॥

वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल-बधू कहाऊँ ।

जो छुवें अचल ‘रसिकविहारी’ धरती फार ममाऊँ ॥

५

कुंज पधारो रंग-भरी रैन ।

रँग भरी दुलहिन रँग भरे पीया स्यामसुंदर सुख दैन ॥

रँग-भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रँग-भख्यो उलहत मैन ।

‘रसिकविहारी’ प्यारी मिलि दोउ करौ रंग सुख-चैन ॥

६

आज वरसाने मगल गाई ।

कुँवरलली को जनम भयो है घर घर वजत वधाई ॥

मांतिन चौक पुरावो गावो देहु असीस सुहाई ।

‘रसिकविहारी’ की यह जीवनि प्रगट भई सुखदाई ॥

७

आज बधावो वृषभान के धाम ।

मगल कलश लिए आवत हैं गावत ब्रज की वाम ॥

कीरति के की रति प्रगटी है रूप धरे अभिराम ।

‘रसिकविहारी’ की यह जोरी हौंनो राधा नाम ॥

८

में अपनो मन भावन लीनीं, इन लोगन को कहा न कीनीं ।

मन दै मोल लयो री सजनी, रत्न अमोलक न ददुलारे ॥

नवल लाल रँग भीनो ।

कहा भयो सब क मुख मोरे, में पायो पीव प्रथानीं ।

‘रसिकविहारी’ प्यारा श्रातम, सिर बिघनों लिख दानों ॥

१०

धीरे भूलो री राधा प्यारी जी ।

नवल रँगाली सधै मुलावत गावत सखियों सारी जी ॥

फरहरात अचल चल चचल लाज न जात सँभारी जी ।

कुजन ओर दुरे लखि दखत प्रीतम ‘रसिकविहारी’ जी ॥

११

ये बाँसुरियाबारे ऐसो जिन बतराय रे ।

यों न बोलिण । धरे घर बमे लाजनि द्वि गइ हाय रे ॥

हौं घाई या गैलडि मो रे । नैन चल्यो धौं जाय रे ।

‘रसिकविहारी’ नौव पाय के क्यों इतनो इतराय रे ॥

१२

कै तुम जाहु चले जिन धरो मेरी सारी ।
 सुन श्याम सुन श्याम सौहैं तिहारी ॥
 याही बेर छिनाइ लेउँ कर ते पिचकारी ।
 अब कुछ मोपै सुन्यो चहत हौ गारी ॥
 घर मे सीख्यो यह ढग हे रसिकविहारी ॥

१३

भीजै म्हाँरी चूनरी हो नँदलाल ।
 डारहु केसर—पिचकारी जनि हा । हा ! मदन गुपाल ॥
 भीज वसन उधरो सो अँग अँग बडो निलज यह ख्याल ।
 'रसिकविहारी' छैल निडर थे पाले को जजाल ॥

१४

दोहा—गहगह साज समाज-जुत, अति सोभा उफनात ।
 चलिवे को मिलि सेज-सुख, मंगल-मुदमय-रात ॥
 रही मालती महकि तहँ, सेवत कोटि अनंग ।
 करो मदन मनुहार मिलि, सब रजनी रस-रंग ॥
 चले दोउ मिलि रसमसे, मैन रसमसे नैन ।
 प्रेम रसमसी ललित गहि, रंग रसमसी रैन ॥
 'रसिकविहारी' सुख सदन, आए रस सरसात ।
 प्रेम बहुत, थोरी निसा, है आयो परभात ॥

१५

बडि गुलाल धूँधर गई, वनि रघो लाल श्रितान ।
 चौरी चारु निकुञ्ज म, ब्याह फाग सुख-दान ॥
 फूलन के सिर सेहरा, फाग रँग मँग वेस ।
 भाँयर ही में चलत दोउ, लै गति सुलभ मुदेस ॥
 भोज्या केसर—रग सों, लगे असन पर पीत ।
 कालै चावर चौक में, गहि बँहियौ दोउ भात ॥
 रच्यो रगीली रैन में, होरी के बिच ब्याह ।
 बनी बिहारन रसमयी, 'रसिकबिहारी' नाह ॥

१६

होरी होरी कहि बोलै सब वज्र की नारि ।
 नदगोंब-बरसानो हिलि मिलि गावत इत एत रस की गारि ॥
 उडत गुलाल अहण भयो अबर चलत रग पिचकारि कि धारि ।
 'रसिकबिहारी' भानु दुलारा नाथक सँग खेलें खेलवारि ॥

१७

वाजै आज नद भवन बधाइयो । ❀
 गह गह अँनन भवन भया है गापी सत्र मिलि आइयो ॥
 महरिन गावहि कै भयो सुत है फूला अगन भाइयो ।
 'रसिकबिहारी' प्राननाथ लखि दत असीस सुहाइयो ॥

❀ यह मंत्र रूप है ।

ब्रजदासी

ब्रजदासी जी महारानी बाँकावती के नाम से प्रसिद्ध थीं। ब्रज-दासी इनका उपनाम था। इनका असली नाम महारानी ब्रजकुँवरि बाई था। ये जयपुर राज्य में लिवाण के कछवाहा राजा आनदराम जी की पुत्री थीं। लिवाण में महाराजा भगवानदासजी एक सुप्रसिद्ध और वीर पुरुष हो गये हैं। अकबर बादशाह ने उन्हें कई बार अपने चंगुल में फँसाना चाहा किन्तु वे अकबर के चक्कर में न आये। उन्होंने दो-चार स्थानों पर अकबर का अपमान भी किया था इससे अकबर बादशाह उन्हें बाँका कहा करता था। इसीसे उस वंश में जितने महाराजा हुए वे बाँकावत के नाम से प्रसिद्ध हो गये और महारानियाँ बाँकावती के नाम से पुकारी जाने लगीं।

ब्रजदासी जी का जन्म सम्वत् १७६० वि० के लगभग हुआ होगा क्योंकि इनका विवाह कृष्णगढ़ के महाराजा राजसिंह से संवत् १७७६ ई० में वृन्दावन में हुआ। महाराज राजसिंह की पहली रानी का देहान्त हो चुका था। ब्रजदासी जी दूसरी रानी थीं। महाराज इनका बड़ा आदर करते थे। इनके दो सत्ताने थीं, एक पुत्र और दूसरी कन्या। पुत्र का नाम वीरसिंह और कन्या का नाम सुन्दर-कुँवरिबाई था जो बड़ी प्रवीण, भक्त और सुकवियत्री हो गई हैं।

महाराजी प्रज्जदासी जी की कविता में बड़ी रुचि थी। वे भागवत और प्रेम सागर में कृष्ण भगवान की सारी कथाएँ पढ़ा करती थीं। इनके हृदय में भागवत के प्रति इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि उन्होंने संस्कृत श्लोकों का पद्यों में उल्था कर डाला, जो आज प्रज्जदासी भागवत के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रज्जदासी कृत भागवत बड़ी सुन्दर पुस्तक है। भक्त लोग उसका बड़ा आदर करते हैं। उसका कविता निर्दोष और भावपूर्ण है। इसमें दोहों और चौपाइया का बाहुल्य है^७। इसकी भाषा प्रज्जभाषा और वैसवादी का मिश्रित रूप है। इसमें कहीं कहीं राजपूताना भाषा के भी शब्द आ गये हैं। इनका मृत्यु-सम्बन्ध का ठीक ठीक पता नहीं है। हम इनकी कुछ रचनाएँ उद्धृत करते हैं।

१

नमो नमा आ हस नमो सनकादि रूप हरि ।
 नमा नमा आ नार्द दव ऋषि जग को सम सरि ॥
 नमा नमा आ व्यास नमा शुक्रदव सुस्वामी ।
 नमा परीक्षित राज ऋषिन में ज्ञानी नामी ॥

^७ दाहों और चौपाइयों में प्रबन्ध-काव्य के लिखने की शैली जायसी ने प्रारंभ की थी। इसको प्रबलता महात्मा तुलसीदास ने दी। कृष्ण-काव्य में भी उसी शैली का प्रयोग किया गया है।

नमो नमो श्री सूत जू, नमो नमो सोनक सकल ।
नमो नमो श्री भागवत, कृष्ण-रूप छिति मे अटल ॥

२

श्री गुरु-पद वन्दन करूँ, प्रथमहिं करूँ उछाह ।
दम्पति गुरु तिहुँ की कृपा, करो सकल मो चाह ॥
वारवार वन्दन करौँ, श्रीवृषभानु कुँवारि ।
जय जय श्री गोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि ॥
वन्दौँ नारद, व्यास, शुक, स्वामी श्रीधर सग ।
भक्ति कृपा वन्दौ सुखद, फलै मनोरथ रंग ॥
कियो प्रगट श्रीभागवत, व्यास-रूप भगवान ।
यह कलिमल निरवार-हित, जगमगत ज्यो भान ॥
कखो चहत श्रीभागवत, भाषा बुद्धि प्रयान ।
कर गहि मोहिं समर्थ हरि, देहैं कृपा-निधान ॥

३

व्यास भागवत आरँभ माँही, प्रसु को आन हृदय सरसाहीं ॥
ऐसो वचन कहत सुनि आन, प्रसु सों परम प्रेम उर ठान ॥
परम प्रेम परमेश्वर स्वामी, हम तिहिं ध्यान धरत हिय मानी ।
यहै त्रिविध भूठो संसारा, भांति भांति बहु विधि निरधारा ॥
अरु साँचों सो देत दिखाई, सो सत्यता प्रभुहिं की छाई ।
जैसे रेत चमक मृग देखै, जल के भ्रम मन माहिं सपेखै ॥
जल-भ्रम भूठ रेत ही सत्य, भ्रम सो दीख परत जल छत्य ।

जल भ्रम काच भाहि व्या हात, सो मूठो सति कांच उदोत ॥
 यों मूठो सबही ससारा, सोंचो हौ स्वामी करतारा ।
 प्रमु में नहि माया सम्बन्ध, न्यारो हरि ते माया बघ ।
 उपजन, पालन, प्रलय सँसारा, होत सबै प्रमु से विस्तारा ॥
 व्यापन है रख्यो प्रमु मत्र ठौर, जगमगात जग में जग-मौर ।
 सबहि वस्तु को प्रमु ही ज्ञाता, आप प्रकाश रूप मुखदाता ॥
 हृदय बीच त्रिधि के निन आय, दीने चारों वेद पढाय ।
 जिन वेदन में बड़े पडित, मोहित होइ रहे गुन मडित ॥

४

अबै व्यास जू कहत हैं, यहै भागवत मोंहि ।
 कर्म सबै निहकाम अब्र, बखन करि मुख पोंहि ॥



गिरधर कविराय और उनकी स्त्री की रचनायें विशद्वृत्त मिश्रती
 श्रुतता हैं। कविराय का जन्म जिन्य सवत् के लगभग माना जाता है
 उसी सवत् के द्वा-वार वर्ष बाद इनकी स्त्री का भी जन्म हुआ होगा।

इनका जन्मस्थान अथर्व का कोई गाँव जान पड़ता है क्योंकि
 कुंडलिया की भाषा में अधिकांश शब्द अथर्व के आस पास की बोल
 चाल के हैं। हमकी रचनाओं से ऐसा मालूम होता है कि यह उन्हें
 और प्रारसा भी अथर्वी तरह जानती थीं। कुंडलियों का प्रचार ग्रामों में
 बहुत है। इनकी सैकड़ों कुंडलियाँ लोगों को कल्पस्थ हैं। कुंडलियों
 में नीति-व्यवहार कुशलता और विनोद की छात्रा सामग्री विद्यमान
 है। हम यहाँ इनकी स्त्री की बनाई हुई कुछ चुनी हुई कुंडलियाँ
 उद्धृत करते हैं —

१

साई । बेटा बाप के विगरे भयो अकाज ।
 हरिनाकस्यप फस को गयठ दुहुन को राज ॥
 गयठ दुहुन को राज बाप बेटा में विगरी ।
 दुश्मन दावागार हँसे महिमण्डल नगरी ॥
 कह गिरधर कविराय युगन ते यह खलि आई ।
 पिता पुत्र के बैर नका कहु कौने पाई ॥

२

साइ बैर न काजिए गुरु पठित कवि यार ।
 धौरिया यज्ञ करावनहार ॥

यज्ञ-करावनहार राज-मन्त्री जा हाई ।
 विप्र, परोसी, वैद्य आपकी तपे रमाई ॥
 कह गिरधर कविराय युगन त यह चलि आई ।
 इन तरह मो तरह दिये बनि आवे साई ॥

३

साई ऐसे पुत्र ते बांझ रह बरु नारि ।
 निगरे घेटा वाप मे जाय रहे समुगारि ॥
 जाय रहे समुगारि नारि के हाथ मिकाने ।
 कुल के धर्म नसाय प्रीर परिवार नसान ॥
 कह गिरधर कविराय मातु भुवे वहि ठाई ।
 अस पुत्रनि नहि होय बांझ रहतिउँ बरु साई ॥

४

साई पुरपाला पखा आसमान त आय ।
 अधहि पंगुहि छोड़ि कै पुरजन चले पराय ॥
 पुरजन चले पराय अध एक मत्र विचाखा ।
 पगुहि लीन्हेउँ कध पीठ वाके पगु धाच्यो ॥
 कह गिरधर कविराय सुमति गेमी चलि आई ।
 विना सुमति को रंक पक रावन भो साई ॥

५

साई सत्य न जानिए खेलि शत्रु सँगमार ।
 दाव परे नहि चूकिये तुरत डारिये मार ॥

६

तुरत डारिये मार नरद कधी करि दोजै ।
 कधी होय तो होय मार जग में जस लीजै ॥
 कह गिरधर कविराय युगन याही चलि आई ।
 कितना मिलै पिघाय शत्रु को मारिय साई ॥

६

साई तहाँ न जाइये जहाँ न आपु सुहाय ।
 वरन विपै जानै नहीं गदहा दासै षाय ॥
 गदहा दासै षाय गऊ पर दागि लगावै ।
 सभा वैठि मुसुकाय यही सब नृप को भावै ॥
 कह गिरधर कविराय मुना रे मेरे भाई ।
 तहाँ न करिये वास तुरत उठि आइय साई ॥

७

साई सब ससार में मतलब को व्यवहार ।
 जब लगि पैसा गौंठ में तब लगि ताको यार ॥
 तब लगि ताको यार यार सँग ही सँग डोलै ।
 पैसा रहा न पास यार मुझ ते नहिं डोलै ।
 कह गिरधर कविराय जगत यह लेखा भाई ।
 बिना बेगरजी प्राति यार बिरला कोइ साई ॥

८

साई जग में योग करि युक्ति न जानै फोय ।
 जब नारी गीने चली चढ़ी पालकी रोय ॥

चढ़ी पालकी रोय न जाने कोई जिय की ।
 रही सुरत तन छाया सुछतियों अपने हिय की ।
 कह गिरधर कविराय अरे । जनि होहु अनारी ।
 मुँह से कहै वनाय पेट में बिनवै नारी ॥

९

साईं घोड़े अछत ही गदहन पायो राज ।
 कौआ लीजै हाथ में दूर कीजिए वाज ॥
 दूर कीजिए वाज राज पुनि ऐमो आयां ।
 सिंह कीजिए कैद स्यार गजराज चढायो ॥
 कह गिरधर कविराय जहाँ यह चूकि बड़ाई ।
 तहाँ न कीजिय भोर साँभ उठि चलिये साईं ॥

१०

साईं अवसर के परे को न सहे दुख द्वन्द ।
 जाय विकाने डोम घर वे राजा हरिचन्द ॥
 वे राजा हरिचन्द करी मरघट रखवारी ।
 फिरे तपस्त्री भेष धरे अर्जुन बलधारी ॥
 कह गिरधर कविराय तपे वह भीम रसोईं ।
 को न करै घटि काम परे अवसर के साईं ॥

११

साईं कोउ न विरोधियो छोट बड़ो इक भाय ।
 ऐसे भारी वृत्त को कुल्हरी देत गिराय ॥

कुल्हरी देत गिराय मार के जमी गिराई ।
 टूफ टूफ के काटि समुद्र में देत बहाई ॥
 कह गिरधर कविराय पृथि जिहि के घर जाई ।
 हरनाकुम अरु कस गये बलि रावन साई ॥

१०

साई अपन चित्त को भूलि न कठिण फाय ।
 तब लग मन में राखिय जब लग कान न होय ॥
 जब लग काज न हाय भूलि कवहुँ नहि कहिये ।
 दुर्जन तातो होय आप सियरे है रहिये ॥
 कह गिरधर कविराय रात चतुरन के ताइ ।
 करतूती कहि देत आप कठिण नहि माइ ॥

१३

माइ अपने भ्रात को कवहुँ न दीजै पास ।
 पनक दूर नहि कीनिए मदा राखिये पास ॥
 सदा रागिये पास ब्राम कवहुँ नहि दीजै ।
 पास दिये लकेम ताहि की गति सुन लीजै ॥
 क- गिरधर कविगाय राम सों मिलियो जाई ।
 पाय विभीषण राज लकापति बायो माइ ॥

१८

माई नदी समुद्र को मिलि बहप्पनि जानि ।
 जानि नाम भो मिलत ही मान-मदत की हानि ॥

मान-महत की हानि कहो अब कैसी कीजै ।
जल खारा होइ गयो ताहि कहु कैसे पीजै ॥
कह गिरधर कविराय कच्छ औ मछ सकुचाई ।
बड़ी फजीहत होय तवै नदियन की साईं ॥

१५

साईं समय न चूकिये यथा शक्ति सनमान ।
को जानै को आइ है तेरी पौरि प्रमान ॥
तेरी पौरि प्रमान समय असमय तकि आवै ।
ताको तू मन खोलि अक भरि कंठ लगावै ॥
कह गिरधर कविराय सवै यामे सधि जाई ।
शीतल जल फल फूल समय जनि चूकौ साईं ॥

१६

साईं ऐसी हरि करी बलि के द्वारे जाय ।
पहिले हाथ पसारि कै बहुरि पसारे पाय ॥
बहुरि पसारे पाय कहो राजा न बतायो ।
भूमि सवै हरि लई बाँधि पाताल पठायो ॥
कह गिरधर कविराय राम राजन के ताई ।
छल बल कर प्रभु मिलै ताहि को तुष्टे साईं ॥

१७

साईं अगर उजार मे जरत महा पछताय ।
गुन गाहक कोऊ नहीं गीत सुवास सुहाय ॥

गीत सुपास सुहाय सून बन कोऊ नाहीं ।
 कै गीदड कै हिरन सुतौ कछु जानत नाहीं ॥
 कह गिरघर कविराय बडा दुख यहै गुसाई ।
 अगर आक की राख भई मिलि एकै साई ॥

१८

साई हसन आप ही त्रिनु जल सरवर दास ।
 निर्जल सरवर त डरें पच्छी पथिक उदास ॥
 पच्छी पथिक उदास छाँद विश्राम न पावैं ।
 जहाँ न फूलत कमल भौर तहँ भूलि न आवैं ॥
 कह गिरघर कविराय जहाँ यह बूझि बडाई ।
 तहाँ न करिये साँझ प्रात ही चलिये साई ॥

१९

साई लोक पुकार द रे मन तू हो रिन्द ।
 यह यकीन दिल में धरो मैं सबको खाविन्द ॥
 मैं सबको खाविन्द एक खालक हकताला ।
 खिलफत है यह फना और हर से पर चाला ॥
 कह गिरिघर कविराय आपना दुखी दुखाई ।
 मन खुदाय ला जिसम धोंग हर दम द साई ॥



प्रतापकुँवरि बाई

प्रतापकुँवरि बाई जी जासण परगना जोधपुर के भाटी ठाकुर गोयद-
दासजी की पुत्री और मारवाड के महाराजा मानसिंह जी की
रानी थीं। चंद्रवंश के यदुकुल क्षत्रियों की अनेक शाखाओं में से भाटी
एक प्रबल और प्रसिद्ध शाखा है। भाटियों की भी कई शाखाएँ हैं। इनमें
एक शाखा का नाम रावलोत है। रावलोत शाखा की भी दो शाखाएँ
थीं। देरावरिया रावलोत और जैसलमेरिया रावलोत। श्रीमती
प्रतापकुँवरि के पिता गोयंददास जी देरावरिया रावलोत भाटी थे। देरा-
वरिया रावलोतों के मूल पुरुष रावल मालदेव थे। प्रतापकुँवरि के
पिता आठवीं पीढ़ी में हुए थे।

महाराज मानसिंह के तेरह रानियाँ थीं जिनमें पाँच रानियाँ भाटिया
वंश की थीं। देरावरिया के रावल अपने घर की लड़कियों का विवाह
राजा-महाराजों के यहाँ करते थे। क्योंकि भाटिया जाति की स्त्रियाँ
सुन्दर और दृढ़ होती थीं। महाराजा मानसिंह की पाँच भाटिया
रानियों में श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई तीसरी रानी थीं। प्रतापकुँवरि
बाई जी के पिता गोयन्ददास के चार संताने थीं। तीन पुत्र गिरधर-
दास, अजब सिंह और लछमनसिंह चौथी कन्या श्रीमती प्रतापकुँवरि
बाई थीं। किन्तु गिरधरदास जी के कोई संतान न थी। इससे

उन्होंने अपने भाई तारनसिंह के बेटे कमरसिंह को गोद ले लिया। कमरसिंह के दो बहने या तो महाराज प्रताप सिंह का ब्याहा गई थीं। एक का दूतन सम्बन्ध १६६१ में हुआ गया और दूसरा रतनकुँवरि दाई थीं जो इंदर का महारानी थीं।

प्रतापकुँवरि का बाल्यकाल ही से यन्त्री प्रवाण और उन्नतिशीला दिग्गजानी थीं। इनके पिता इनका सम्बन्ध किम्बा बेटे घर में करन का उद्योग कर रहे थे। उसी समय राममनेहा साधुओं के महत पूर्ण दास का कारण बस जासण्ड से आकर रहने लगे। पूणदास का बेटे भक्त और भगवन् रसिक महत थे। महत जी से और गायदाम का स बड़ा मित्रता हो गई। गोधदाम जी ने अपना मन्तव्य महत पूणदास का सुनाया। पूणदास ने नै कहा कि दाई जी का भाग्य अति उत्तम है आप चिन्ता न कीजिए। पहले इनके पदाने लिखान का प्रबन्ध कीजिए। महत जी ने बार्त्त जा के लिखाने-पदाने का विरोध उद्योग किया। साधु-सम्प्रदाय में पढ़ कर बाई जी भक्ति भाव में लिख रहने लगीं। उन्होंने महत पूणदास को अपना गुरु मान लिया और अत तक अपने इस गुरु-भाव का निगन्ता रहीं। बार्त्त जा के उत्तम विचारों का अधिक ध्यान महत पूणदास का ही है।

आपका विवाह मारवाड़ के महाराज मानसिंह के साथ हुआ। इनके कोई मतान नहीं थीं। महाराज मानसिंह का स १६०० में नहान्त हो गया। तभी से ही साधु भाव से रहने लगीं और भगवद्भक्ति में अपना समय बिताने लगीं। महाराजा मानसिंह का मृत्यु के बाद

गहमदनगर के महाराजा तरवतमिह राज सिंहासन पर विराजमान हुए। तरवतमिह का व्यवहार प्रतापकुँवरि वाई जी के साथ बहुत उत्तम था।

प्रतापकुँवरि वाई जी को राज्य से कई बड़े बड़े गाँव मिले थे। उसकी नारी ग्रामदनी इन्हीं को दी जाती थी। उस ग्रामदनी से वाई जी अपना काम चलातीं तथा धर्म-पुण्य के लिए हजारों रुपया दान दिया करती थी। इनकी कीर्ति इससे वहाँ बहुत हुई। ये श्री रामचंद्रजी की भक्त थीं। इन्होंने मारवाड़ में गुलान सागर तालाब पर पक्का मिरर-बध मन्दिर फाल्गुन वदी ६ सं१६०२ में बनवाया और उसमें श्री रामचंद्रजी की मूर्ति स्थापित कराई। पुष्कर में इन्होंने पक्का घाट बनवाया और अपने पतिदेव के इष्टदेव जालंधर जी का मन्दिर आषाढ़ सुदी १२ सं० १६०४ में बनवाया। जोधपुर के गोल मुहल्ले में एक बहुत बड़ा रामद्वारा अपने गुरुभाई दामोदरदास जी के लिये बनवाया जिनसे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। गुलान सागर का मन्दिर बहुत उत्तम बना है। इससे बनाने में वाई जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे। मन्दिर में सैकड़ों बहुमूल्य तरवीरें जड़ी हुई हैं। दान-पुण्य में वाई जी अद्वितीय थीं। जब तक मारवाड़ में इनका बनवाया हुआ यह मन्दिर रहेगा तब तक वाई जी की भी कीर्ति अटल रहेगी।

व्रतों के दिनों में ये सहस्रों रुपये दान दे डालती थीं। वैतरणी एकादशी के उपलक्ष में २०००० ब्राह्मणों को दान देती थीं। चारणों और कविता कहने वाले भाटों को भी ये भन देती थीं। चारणों और

भादों ने इन बाईं जी की प्रशंसा में अनेकों कवितायें रचा हैं। उनमें से एक दाहा यह है —

कजर दे उस कारणे, लाखों लाख पसाव ।

यह रानी नृप मान री, हेरावरि दरियाव ॥

सम्बत् १६२१ में महाराजा खलतसिंह का देहान्त हो गया। महाराज के देहान्त हो जाने पर बाईं जी का बड़ा दुःख हुआ। अतः में इन्होंने सत्कार का ध्यार समझकर श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में मन लगाया। जब इनकी अवस्था ७० वर्ष की हुई तो इन पर रोगों का प्रकोप होने लगा। इन्होंने अपना सारा धन दान दान प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने अतः समय में कपड़ों रुपया दान द दिया। किन्तु भाग्यवश ये रोग से मुक्त न हो सके और अतः में माघ वदी १२ सम्बत् १६४३ में इनका देहान्त हो गया।

प्रतापकुंवरि बाईं जी का जब से महत पूर्णदान से सम्पन्न हुआ था तभी से इनका प्रवृत्ति कविता करने की ओर मुक्त गई थी। ये हिन्दी भाषा के पढ़ने लिखने में अधिक मन लगाती थीं। इन्होंने अपने गुरुमाई दामोदर दास के कहने से कविता में बड़ी उत्तम पुस्तकें लिखीं। इनकी कविता भगवद्भक्ति से पूर्ण हैं। इनके सारे ग्रंथ ईश्वर की महारानी श्रीमती रतन कुंवरि बाईं ने छपवाये हैं। इनकी पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है —

१ ज्ञान-सागर २ ज्ञान प्रकाश ३ प्रताप पक्षीसी ४ प्रमसागर
५ रामचन्द्र-नाम-महिमा ६ रामगुण-सागर ७ रघुवर स्नेह-खाजा

८. राम-प्रेम-सुखसागर ९. राम-सुजस-पचीसी १०. पत्रिका सं० १९२३
 चैत्र वदी ११ की ११. रघुनाथ जी के कवित्त १२. भजन पद हरजस
 १३. प्रताप-विनय १४. श्रीरामचन्द्र-विनय १५. हरिजस-गायन ।

यद्यपि उस समय मारवाड और राजपूताने आदि में कृष्ण-भाक्ति का ही प्राबल्य एवं प्राधान्य था तथापि वाई जी ने वैष्णव शाखा के रामानुजीय संप्रदाय की रामभक्ति का अनुसरण किया है । हिन्दी में रामभक्तिकाव्य बहुत कम कवियों ने लिखा । इसलिये हम इन्हें रामभक्तिकाव्यकारों में अच्छा स्थान देते हैं । इनकी कविता मधुर और प्रेम-पूर्ण है । हम इनकी कुछ चुनी हुई कवितायें इनके ग्रन्थों से यहाँ देते हैं —

१

चौपाई

अव सुनिए चित धार सुजाना । रघुवर किरपा कहूँ बखाना ॥
 राम-रूप - हिरदै धर सुन्दर । वरनू प्रन्थ हरन दुख दुन्दर ॥
 जदुकुल अति उत्तम सुखदाई । जामें कृष्ण प्रगट भे आई ॥
 तेहिं कुल में गोयँद मम ताता । प्रगटे जाण नगर विख्याता ॥
 सूरवीर रत धरम सुग्यानी । राजनीति जानत सुखदानी ॥
 रघुवर-चरन प्रीति नित करहीं । मग अनीति पग कबहुँ न धरहो ॥
 तिन के तीन पुत्र भल कहिए । गिरधर, अजब सिंह पुनि लहिए ॥
 मात पिता नित मोहिं लड़ावहिं । हमकूँ देख परम सुख पावहिं ॥
 या पुत्री अति प्राण पियारी । इनके वर अव करौ विचारी ॥

नगर जोधपुर मान महीपा । सब राठौर वश में दीपा ॥
 जेहि सँग चलत सेन चतुरगा । धवल महल मुक रहे दुरगा ॥
 तेहि नृप त में कियो विवाहा । गावत भगल अनत उद्याहा ॥
 दासी दास तुरंग रथ भारी । दीयो दायज पिता अपारी ॥
 मान महीपति हम पति पाये । कारज सरे सजन मन भाये ॥
 ईस-रररूप जानि पति साधा । सेवा कीही मनसा वाचा ॥
 पति समान नहि दूजा दवा । ताते पति की काजै सेवा ॥
 पति परमात्म एक समाना । गाँ सब ही वेद पुराना ॥
 घरम अनेक कह जग माहीं । तिय क पतिव्रत सम कछुनाहा ॥
 दवहुती, अनुसुइया नारी । पतिव्रत ते हरि सुत अवतारा ॥
 तात में पति सर समभाइ । पति सुमूर्ति हिरदै पधराइ ॥
 यूँ करते कइ बरस बिताने । पति दरसन ते जात न जान ॥
 सँवत अठारौ अत उदासा । बरस सइ का भादव मासा ॥
 सुदि वारस दिन मान नरेमा । तन तज सुरपुर कियो प्रवेसा ॥
 पति वियोग दुख भयो अपारा । हुआ सकल सूना समारा ॥
 कछु न सुहाय नैन बह नीरा । पति निन कौन बँधावे धीरा ॥
 विकल भयो तन बचन न आये । हरे राम ! दुख जौन गिराये ॥
 असन, बसन लागत दुखदाइ । इक दिन एक बरस सम जाई ॥
 यह दुख करत गये दिन कते । जान मूठ जगन सुख जेते ॥
 तरतसिंह सुत घाट विराजे । घर घर मगन बाज बाजे ॥
 देख देख सुत आक्षाकारी । कछुइक दुख की बात विसारी ॥

सुनि सुनि कथा पुरान अपारा । सब भूयो जान्यो संसारा ॥
 एक समय सपनो निसि आयो । रघुवर दरसन मोहिं दिपायो ॥
 मेघ वरन तन श्याम विराजै । धनुष बाण प्रभु कर में छाजै ॥
 कर माथाण कस्यो सुखदाई । वनमाला कर में पधराई ॥
 सीस मुकुट कुण्डल छवि सोभै । पीतांबर ओढत मन लोभै ॥
 वीचै अंग जानकी माता । दरसन करत हृष्य भयो गाता ॥
 दोनों हाथ मीस मय वीने । बोले वचन कृपा रस भीने ॥
 सुन परतापकुँवरि कहूँ तोही । तू बल्लभ लागत अति मोही ॥
 भूयो जगत मोह नहिं करिये । मोकुँ भज भवसागर तरिए ॥
 मात-पिता - सुत संग न साथी । भूयो घर धन घोडा हाथी ॥
 आयो एक एक ही जासी । पाप पुत्र अपनो जिय दासी ॥
 ताते जगत मोह तज दीजै । हमरे हित एक मन्दिर छीजै ॥
 यो मूरति तामें पधराओ । कर उत्सव मन-प्रेम बढ़ाओ ॥
 सुनत वचन मम नाँद उड़ाई । हरख भयो सो कह्यो न जाई ॥
 रघुवर किरपा कीन्हो भारी । तव मन्दिर की कीन्ह तयारी ॥

दोहा

सबत उगणी सैतिये, चौथ चैत त्रिदि जोय ।
 सर गुलाब के तीर पर, नीव दियाई सोय ॥
 अब मन्दिर रघुवीर को, तुरत भयो तैयार ।
 दरसन कर परसन भये, सब ही नर अरु नार ॥
 सरव देव अवतार सब, सब राजन के चित्र ।

जहँ तहँ भीतिन पर लिखे, सोभित सदा विचित्र ॥
 सनमुख साज मुहावणे, रघुवर रमण निवास ।
 हौद भखो निरमल सुजल, सुधा-समान मुबास ॥
 कथासाल^१ तिनमें सदा, कथा भागवत होय ।
 प्रेम सहित नित प्रति मुनै, नर नारी सब कोय ॥

चौपाई

तुलसी रघुवर प्राण पियारी । ताकौ विडौ^२ सरद सुखकारी ॥
 चौक वाच सोभित सरसाई । सीतापति नित चरण चलाई ॥
 रतन जड़ित हिंडोले साजै । मोतिन की मालरी बिरजै ॥
 सुवरण प्रभा सोभित भारी । तापर तोरण की छवि न्यारी ॥
 तामें सीता सहित सदाई । सावन में मून्त रघुराई ॥
 लोक नगर के दरसन करहीं । कर दरसन भवसागर तरहीं ॥
 एकादशी दिवस जब होई । साधु विप्र आवत सब कोई ॥
 नर नारी बहु होत समाजा । कथा कीरतन बाजत याजा ॥
 पाट उद्धव दिन आवत जवहीं । उद्धव अधिक होत है तवहीं ॥
 नौवत भरत बजत सहनाई । जय जय सबद होत सुखदाई ॥
 उद्धव राम नवमि दिन तैसे । जनम अष्टमी जानहु जैसे ॥
 सरद आदि अनकूट अपारा । उद्धव होवत बरस मंगरा ॥
 भाति भाति भोजन पकवाना । सीर पाँड घृत बिजन नाना ॥

१. अर्थात् कथा कहने का स्थान । २. याजा ।

सीरो लाहू पुरी पकोरी । घेयर केसर पाक कचौरी ॥
 पेड़ा दही हड़ी अरु पूवा । नुफती सेव जलेवी सूवा ॥
 औरहि भोजन विविध प्रकारा । भोग लगत रघुवर कै सारा ॥

दोहा

मान महीपति मोहि पति, ज्ञानी-गुनी-उदार ।
 इष्ट जलंधर नाथ कौ, जानत सब संसार ॥
 तातें पति के प्रेम सो, मंदिर नाथ अनूप ।
 कीन्हो पुस्कर ऊपरै, हय हिरदै धर चूँप ॥
 मेरे मन तन बचन तें, लछमन सीताराम ।
 इष्ट आसरो वाहिं बल, सकल सुधारन काम ॥

२

श्री सिद्ध नगर वैकुण्ठ जान, उपमा जहँ अधिक विराजमान ॥
 जहँ अष्ट सिद्धि नव निधि निवास, कौचैर करत भडार जास ॥
 विधि वेद उचारत वार वार, हाजरी करत निसि दिन हजार ॥
 शिव करत निरत तांडव अभंग, रघुवीर रिभावत लेत रंग ॥
 जहँ पंथ दुहारत पवन चाल, जल भरत इन्द्र लै मेघ-माल ॥
 दीवा' ससि सूरज सुभग दोय, जमराज जहाँ कुटवाल जोय ॥
 नित अंग रसोऊ तपत जास, दरवान खड़े जय विजयदास ॥
 मुकि कनक महल अद्रुमुत अनंत, उपमा न कहत मुख तें वनंत ॥

मणि जटित मम सुन्दर कपाट, देहली रची विट्ठम सुघाट ॥
 भीतिन परमाणिक लगे लाल, चिल्नाय मनोकव वेलि जाल ॥
 बहू वरन वरन बघे प्रितान, तोरण पताक घुज चमर जान ॥
 सिंहासन अरु मज्जा अनूप, ऊपरनि विमलपय पैन रूप ॥
 चहुँदिसा विराजत विविध बाग, तामाहिं कलपतर रह लाग ॥
 चपा जु चमेली रामवेल, केरौ केतकी दास कल ॥
 अनार जाँतु आँना अनार, मुकि रहे मूमि फल-फूर भार ॥
 चातक त्रिहग काकिना मोर, शुक्र रातहस पिक करत सार ॥
 नित भरे सरोवर विमल नीर, मापान कनकमणि रचित तीर ॥
 बटु कमल कुमादनि रह फूल, मदमत्त भरमता नाहिं भूल ॥
 है सीतल मद सुगध पौन, भल भ्राज रह्यो वैकुण्ठ भौन ॥
 आरव विमान क झुड झुड, तिमिमावन सोभत कर घुमुड ॥
 नागद मनकादिक भक्तराज, नित वसत तहाँप्रमु परस काज ॥
 ऊँचौ सिंहासन अति अनूप, ता बीच विराजत ब्रह्म-रूप ॥
 पट घट प्रति व्यापक एक गोत, पट ततु चभामिलि ओतपात ॥
 डक' आदिपुष्प अणधड अन्ध, नहिं लहत पार सारदा शप ॥
 कहँ नति नति नित चार वेद, सुर नर नहिं गावत जास भेद ॥
 ससार सरव परगर करत, सबहा का पालन पुन हरत ॥

१ बाहू जा ने थारामचत्र जा क नान भक्ति के धावश में चापर
 एक पत्र बचिना में लिखा था उमी का यह एक श्लोक है ।

आधार सरव रह निराधार, नहिं आदि अंत नहिं आरपार ॥
 पर तीन अवस्था गुणातीत, धर सगुण रूप निज भक्तप्रीत ॥
 गो विप्र साधु पालक कृपाल, देवाधिदेव दाता दयाल ॥
 राजाधिराज महाराज राज, रघुवंश-मुकुट-मणि धरम साज ॥
 उपमा प्रभु की है अति अनंत, श्री श्री श्री श्री श्री रमाकंत ॥
 श्रीरामचन्द्र करुणा-निकेत, जानकी-नाथ लल्लिमन समेत ॥
 चरणारविद प्रति लिखत आप, कायापुर सो कुँवरी प्रताप ॥
 हंडोत विनय मम बार बार, वाँचिये कृपानिधि सहित प्यार ॥
 तुम सदा कुसल-मूरति कहाय, दुख सोक न जाके निकट जाय ॥
 रम रहे सदा आनंद रूप, भगतन प्रतिपालक राम भूप ॥
 नित कृपादृष्टि राखियो राम, हमरे नहि तुम विन और श्याम ॥
 मो औगुण कवहुँ न चित्त धार, निज विरद जान कीन्हो सँभार ॥
 हमरे तुम जीवन प्राण एक, मन वचन काम नहि तजूँ टेक ॥
 मो मति मलीन कछु समझ नाहि, अब अधिक लिखूँ का पत्र माहि ॥
 अपरंच अरज इक सुनो मोहिं, तुम सर्व जानि कह लिखूँ तोहिं ॥
 कायापुर मैं तो हुकुम पाय, मैं वास कियो प्रभु यहाँ आय ॥
 तुम आज्ञा हमको करो एह, मो चरन सरन कीजो सनेह ॥
 नित कथा हमारी सुनौ कान, हिरदै विच हमरो धरौ ध्यान ॥
 हाथन तैं सूकृत सदा होय, नैनन तैं दरसन करौ सोय ।
 पग ते नित तीरथ चलौ पंथ, रसना तैं गावौँ ज्ञान - ग्रंथ ॥
 आसा करि पाई ऐसि आप, मैं सिर पर धारन लगी छाप ॥

इतने सुनि कै यह समाचार, भोमिया दौड़ि आये अपार ॥
 मद काम ब्राध अरु लोभ मोह, ईर्षारु बादि अज्ञान द्रोह ॥
 भय भत्सर ममता अरु गुमान, आसा बड वृसना सोक जान ॥
 मन क्रोध महा बलबत जोय, ता सम नहिं जोधा और काय ॥
 सुर नर सगही को लिए जीत, नहिं कीह कर्षो ओछी अनात ॥
 मन मोह रेप को कामदार, सब सेना चाल ताहि लार ॥
 सामत सुर सब एक एक, जाधा ऐसे आए अनेक ॥

दोहा

सबत उमगी सौ बरस, तेई सौ निरधार ।

चैत कृष्ण एकादशी, लिख्यो पत्र रविवार ॥

३

आस तो काहू की नाहिं मिटी जग में भये रावण से बड जोधा ।
 साबैत सुर सुयोधन से बल से नल से रत बादि विरोधा ॥
 कते भये नहिं जाय बयानत जूझ मुये सबही करि क्रोधा ।
 आस मिटे परताप कहै हरि-नाम जपेरु विचारत बोधा ॥

४

घर ध्यान रटो रघुवीर सदा^१ घनुधारी को ध्यान हिये घर रे ।
 पर पीर में जाय कै बेग परौ करतें सुभ सुकृत^२ को कर रे ॥

१ इम शब्द में कृ का द्वित्व करके पढ़ना चाहिए, यद्यपि हिन्दी काव्य में इस प्रकार बहुत ही कम है । इस शब्द में 'कृ का द्वित्व रूप में बिधा जाता है ।

तर रे भवसागर को भजि कै लजि कै अघ-अवगुण ते डर रे ।
परताप कुँवारि कहै पद-पंकज पाव घरी मत वीसर रे ॥

५

होरी खेलन की सत भारी ।
नर-तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी ।
अरे अव चेत अनारी ।
ज्ञान-गुलाल अवीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी ।
लास उसास राम रँग भर भर सुरत सरीरी नारी ॥
खेल इन संग रचा री ।
उलटो खेल सकल जग खेलै उलटो खेलै खिलारी ।
सतगुर सीख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी ॥
भरम सब दूर गुमारी ।
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण खेले मीरा करमा नारी ।
कहै प्रतापकुँवरि इमि खेलै सो नहि आवै हारी ॥
साख सुन लीजै अनारी ॥

६

होरिया रँग खेलन आओ ।
इला पिंगला मुख मणि नारी ता सँग खेल खिलाओ ॥
सुरत पिचकारी चलाओ ।
काचो रंग जगत को छाँड़ौ साँचो रंग लगाओ ।
वाहर भूल कबौ मत जाओ काया-नगर वसाओ ॥

तवै निरभै पद पाओ ।

पॉचौ उलट धरे धर भीतर अनहद नाद वजाओ ।

सब बकवाद दूर तज दीजै ज्ञान-गीत नित गाओ ॥

पिया के मन तबही भाओ ।

तीनो ताप तीन गुण त्यागो, ससा सोक नसाओ ।

कहै प्रतापहुँवरि हित चित सों फेर जनम नहिँ पाओ ॥

जोत में जोत मिलाओ ।

७

अबध पुर घुमडि घटा रही छाया ।

चलत सुमद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय ॥

दादुर मोर पपीहा धोलत दामिनि दमकि दुराय ।

मूमि निकुज सघन तरुवर में लता रही लिपटाय ॥

सरजू उमगत लेत हिलोरैं निरस्तत सिय रघुराय ।

कहत प्रतापहुँवरि हरि ऊपर वारनार बलि जाय ॥



सहजोवाई

सहजोवाई का जन्म सं० १८०० के लगभग राजपूताने के एक प्रसिद्ध दूसरे कुल में हुआ। ये महात्मा चरनदाम की प्रसिद्ध चेलियो में से थीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री दयावाई इनकी गुरु-बहन थीं। ये परम भक्त थीं। सहजोवाई अपने गुरु की भाँति साधुवृत्ति से रहती थीं। सहजोवाई ने चरणदास जी का जन्म संवत् १७६० माना है। इससे पता चलता है कि इनका जन्म चरणदास के बाद हुआ होगा। इनकी बानी कोमल मधुर और हृदय प्रसन्न करने वाली होती थी। वह कोरी कविता ही नहीं है किन्तु प्रेम रसमयी सुधा-धार है। इनकी बानी से सब से बड़ी बात यह प्रगट होती है कि यह गुरु को भगवान से भी ऊँचा मानती थीं। इनका यह सिद्धान्त था कि बिना सतगुरु की कृपा से जीव किसी प्रकार संसार से मुक्ति नहीं पा सकता। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'सहज-प्रकाश' वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वार। संतवानी पुस्तक-माला में प्रकाशित हुआ है। 'सहज-प्रकाश' की कविता भक्ति-पूर्ण है। यहाँ इनकी कुछ कवितायें नीचे लिखी जाती हैं :—

१

दोहा

लख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतन्त ।

जनम मरन छूटै नहीं, बिना सरन भगवन्त ॥

जज्ञ, दान, तीरथ करै, पूजा भौंति अनेक ।
मुक्ति न पावै सहजिया, बिना भक्ति हरि एक ॥
इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्म की आन ।
आगे तौ भो मरन है, महजो सकल बहाव ॥
राम-नाम ले सहजिया, दीजै सर्व अफोर ।
तीन लोक के राज लौं, अत जाहुगे छोर ॥
बिना भक्ति थाये सभी, जोग जह्न आचार ।
राम-नाम हिरै घरौ, सहजो यही विचार ॥
यह अवसर दुर्लभ मिलै, अचरज मनुपा देह ।
लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह ॥
एक घडी का मोल ना, दिन का कहा ममान ।
सहजो ताहि न छोड़ये, बिना भजन भगवान ॥
पारस नाम अमोच है, घनवन्ते घर होय ।
परस नहीं कगाल फूँ, सहजो डारै सोय ॥
सहजो जा घट नाम है, मो घट मगल रूप ।
राम बिना धिक्कार है, सुन्दर घनिया मूप ॥
सहजो नौका नाम है, चढि के उतरौ पार ।
राम सुमिरि जान्यो नहीं, ते हूवे मँमधार ॥
सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घन चोर ।
ता में नाम जहाज है, पार उतारै तोर ॥
पाबफ् नाम जलाइ है, पाप, ताप, दुख दुन्द ।

राम सुमिर सहजो कहै, जो विसरै सो अन्ध ॥
 कनक-दान गज-दान दे, उनन्चास भू-दान ।
 निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान ॥
 मेह सहै सहजो कहै, सहै सीत औ घाम ।
 पर्वत वैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम ॥
 चरनदास हरि-नाम की, महिमा कही अपार ।
 सो सहजो हिरदै धरी, अचल धारना धार ॥
 सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय ।
 होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥
 राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार ।
 सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥
 वैठे, लेटे, चालते, खान, पान. व्योहार ।
 जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार ॥
 जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय ।
 सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥
 आठ पहर सुमिरन करै, विसरै ना छिन एक ।
 अष्टादस औ चार मे, सहजो यही विशेष ॥
 सहजो सुमिरन सब करै, सुमिरन माहिं विवेक ।
 सुमिरन कोई जानि है, कोटो मध्ये एक ॥
 जन्म-मरन-बन्धन कटै, टूटै जम की फाँस ।
 राम-नाम ले सहजिया, होय नहीं जग हाँस ॥

चौरासी के दुख कट, छप्पन नरक तिरास ।
 राम-नाम ले सहजिया, जमपुर मिलै न घास ॥
 गर्भ-वास सकट मिटै, जठर अग्नि की आँच ।
 राम नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोली साँच ॥
 सील, डिमा, सतोष गहि, पाँचो इन्द्रो जीत ।
 राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रात ॥
 काम, क्रोध औ मोह मद, तजि भज हरि को नाम ।
 निस्चै सहजो मुक्ति है, लहै अमरपुर घाम ॥
 काम, क्रोध औ लोभ तन, लै सुमिरै हरि-नाम ।
 मुक्ति न पावै सहजिया, नहिं रामेंगे राम ॥
 कामा मति भिष्टन सदा, चलै चाल रिपरीत ।
 सील नहीं सहजो कहै, नैन माहि अनीत ॥
 सदा रहै चित भग ही, हिरदे धिरता नाहिं ।
 राम-नाम क फल जिते, काम लहर बहि जाहिं ॥
 सहजो क्रोधी अति घुरा, उलटी समझै बात ।
 सन हा सूँ ऐंठां रहै, करै बचन की घात ॥
 कृकर ज्यों भूकत फिरै, तामस मिलवों ताल ।
 घर बाहर दुख रूप है, बुधि रह डोंगाडोल ॥
 मन मैला तन छीन छै, हरि सूँ लगै न नेह ।
 दुखी रहै सहजो कहै मोह बसै जा दह ॥
 मोह मिरग काया घसै, वैसे उषरै रेत ।

जो बोवै सोई चर, लगै न हरि सूँ हेत ॥
नीच लोभ जा घट वसै, भूठ कपट सूँ काम ।
वौरायो चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारन दाम ॥
द्रव्य हेत हरि कूँ भजै, धन ही की परतीति ।
स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीति ॥
अभिमानी मुख धूर है, चहै बडाई आप ।
डिंभ लिये फूली फिरै, करतो डरै न पाप ॥
प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ।

२

धन छोटापन सुख महा, धिरग बडाईख्वार ।
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के वचन सम्हार ॥
सहजो तारे सब सुखी, गहँ चन्द औ सूर ।
साधू चाहै दीनता, चहै बडाई कूर ॥
अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड ।
सहजो नन्ही वाकरी, प्यार करै सन्मार ॥
सीस, कान, मुख, नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव ।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥
नन्ही चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेह ।
सहजो कुन्जर अति बड़ो, सिर पै डारे खेह ॥
सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय ।

नहे सँ दिन दिन बढै, अधिको चाँदन होय ॥
 बडा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन दख ॥
 कला सभी घट जायगी, कहुँ न रहसा रेग ॥
 सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय ॥
 नारी परदा ना करै, गोदहिँ गोद खेलाय ॥
 बडा न जाने पाइहै, साहब के दरवार ॥
 द्वारे ही सँ लागि है, सहजो मोटी मार ॥
 वारे दीवे चाँदना, बडा भये अधियार ॥
 सहजो तुन हलवा तिरै, हूवै फरार मार ॥
 भली गरीबी नबनता, सकै नहीं कोइ मार ॥
 सहजा रई कपास को, काटै ना तरवार ॥
 चरनदास सतगुरु कही, सहजो कूँ यह चाल ॥
 सखी तो छोटा हूजिये, छूटै सन जजाल ॥
 साहन कूँ तो भय घना, सहजो निरमय रक ॥
 कुजर के पग बेडियोँ, चींटी फिरै निमक ॥
 ऊँचे उजल भाग सँ, आय मिल गुरुद्व ॥
 प्रेम दिया नन्हा किया, पूरन पाया भेद ॥
 सहजा पूरन भाग सँ, पाय लिये सुप्रदान ॥
 नरसिंह आइ दीनता, भज बडाइ मान ॥
 सहजो पूरन भाग सँ, पाय लिये सुप्रदान ॥
 गये कुनच्छन रह सँ, मुलछन पायो चैन ॥

औगुन थे सो सब गये, राज कर उनतीस ।
प्रेम भिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस ॥

३

चरनदास सतगुरु दियो, प्रेम पिलाया पान ।
सहजो मतवारे भये, तुरिया तत गलतान ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर ।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, प्रीतम के रँग माहिं ।
सहजो सुधि-बुधि सब गई, तन की सोधी नाहिं ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई, कह रक कह भूप ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, कहैं वहकते वैन ।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कवहूँ टपकै नैन ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति वरन गइ छूट ।
सहजो जग वौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, धरम गयो सब खोय ।
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनन्द होय ॥
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डगमग देह ।
पाँव पड़ै कितकै कित्ती, हरि सम्हाल जब लेह ॥
कवहूँ हकधक हूँ रहै, उठै प्रेम हित गाय ।
सहजो आँख मुँदी रहै, कवहूँ सुधि हूँ जाय ॥

मन में तो आनंद रहै, तन दौरा सब अंग ।
 ना काहू के सग है, सहजो ना कोइ सग ॥
 प्रेम लटक दुरलभ महा, पावै गुरु के ध्यान ।
 अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान ॥

४

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं ।
 हरि तो गुरु बिन क्यों मिले, समझ दग्ग मन माहिं ॥
 परमेश्वर सँ गुरु बडे, गावत वेद पुरान ।
 सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥
 अष्टादस औ चार पट, पति पति अर्थ कराहिं ।
 भेद न पाव गुरु विना, सहजो सज भरमाहिं ॥
 सकल निकल सब छोडकर, गुरु चरनन चित लाय ।
 सहजो निहचै हरि जपो, बहुरि न ऐमो दाव ॥
 दीपक लै गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे माहिं ।
 काम, क्रोध, मद, मोह में सहजो उरभै नाहिं ॥
 सहजो गुरु परताप सँ, होय समुन्दर पार ।
 वेद अर्थ गूँगा कहै, वादी कितइक थार ॥
 सहजो सतगुरु क मिले, भये और सँ और ।
 काग पनट गति हम है, पाई भूली ठौर ॥
 सहजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग ।
 ती भई गुरु न दिया, सीन छिमा का बाग ॥

निस्वै यह मन डूबता, मोह, लोभ की धार ।
 चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उवार ॥
 ज्ञान-दीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-फोट ।
 साजन बसि दुर्जन भजे, निकस गई सत्र गोट ॥
 सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार ।
 तीन लोक दृष्टा भये, मिट्यौ भरम-अंधियार ॥
 सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अन्नन्त ।
 आदि अन्नन्त मध एक ही, सूक्ति परै भगवन्त ॥
 सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतम रूप ।
 तिमिर गयौ चादन भयौ, पायौ परघट भूप ॥
 सहजो गुरु परसन्न है, मेट्यौ मन सन्देह ।
 रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भौंज गई सत्र देह ॥
 सहजो गुरु परसन्न है, एक कछौ परसंग ।
 तन, मन तेँ पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग ॥
 सहजो गुरु परसन्न है, मुँद लिये दोउ नैन ।
 फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेइ यह सैन ॥
 सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल ।
 रोम रोम फूली भई, मुख नहि आवै बोल ॥
 चिँउटी जहाँ न बढ़ि सकै, सरसो ना ठहराय ।
 सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥
 सिप पौधा नौधा अभी, गुरु किरपा की बाड ।

सहजो तरवर फैल बड, सुफल फलै वह भाड ॥
 सहजो सिप ऐसी भली, जैसे माटी मोय ।
 आपा सोंपि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥
 सहजो सिप ऐसी भली, जैसे चक्ई डोर ।
 गुरु फेरै त्यों ही फिरै, त्यागै आपन खोर ॥
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, जैसे धोयी होय ।
 दै दै साजुन ज्ञान का, भलमल डारै धोय ॥
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, मेटै मन-सन्देह ।
 नीच ऊँच देखै नहीं, सब पर बरसै मेह ॥
 सहजा गुरु ऐसा मिलै, जैसे सूरज घूप ।
 सन जीवन कूँ चोँदना, कहा रक कह भूप ॥
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, समदृष्टी निरलोभ ।
 सिप कूँ प्रेम-समुद्र में, करदे मोवाग्नोव ॥
 सहजो गुरु बहुतक फिरै, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
 तार सकै नहि एक कूँ, गदैं बहुत की बाहिं ॥
 ऐसे गुरु ता बहुत हैं, धूत धूत घन लहिं ।
 सहजो सतगुरु जो मिलै, मुक्ति धाम फल देहिं ॥
 कुडुँव जाल जित तित रुप्यो, पसु पछी नर माहिं ।
 सहजो गुरुवर्ती बचै, निगुरे अरुभक्त जाहिं ॥
 बार बार नाते मिलै, लख चौरासी माहिं ।
 सहजो सतगुरु ना मिलै, पकड़ निकासै बाहिं ॥

उपजै गुरु की भक्ति दृढ, दुविधा दुरमति जाय ॥

५

सखीरी आज जनमे लीला धारी ।

तिमिर भजैगो भक्ति सिद्धैगी, पारायन नर नारी ॥
 दरसन करतै आनंद उपजै, नाम लिये अघ नासै ।
 चरघा में सदेह न रहसी, सुलि है प्रबल प्रगासै ॥
 बहुतक जाव ठिकानो पैहै, आवागवन न होई ।
 जम के दण्ड दहन पात्रक की, तिन कूँ मूल निहोई ॥
 होइ है जागो प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप है जाई ।
 चरनदाम परमारथ कारन, गावै सहजोनाई ॥

६

सखीरी आज जनम लियो सुखदाइ ।

दूसर कुल में प्रगट हुए हैं, वाजत आनंद बधाई ॥
 भादों तीज सुदी दिन मंगल, सात घड़ी दिन आयै ।
 सम्वत सत्रहसाठ हुतै तव, सुभ समयो सब पाय ॥
 जैजैकार भयो मधि गाऊँ, मात पिता मुख देखौ ।
 जानव नाहिन कौन पुरुष हैं, आय हैं नर भेखौ ॥
 सग बलावन अगम प व कूँ, सूरज भक्ति उदय को ।
 आप गुपाल साथ तन धार्यौ, निहचै मा मन ऐसो ॥
 गुरु सुकदेव नाँव धरि दीह्यौ, चरनदास उपकारी ।
 सहजोनाइ तन मन वारै, नमो नमो बलिहारी ॥

भीमा

भीमा गांगतू (बीकानेर राज्य) के बीठ नामक चारण की बहिन थी। यह बड़ी वाचाल और कवि थी। अब से कोई पाँच सौ वर्ष पहले की बात है कि यह नागरोड़ (फोटा राज्य) में माँगने-जाँचने गई। वहाँ से खीची राजा अचलदास के पूछने पर इसने अपने देश के राजा राव खीमसी जी की बेटी उमादे की बड़ी प्रशंसा की। राजा अचलदास ने प्रसन्न होकर भीमा को चार घोड़े दिये। भीमा ने राजा राव खीमसी की बेटी का विवाह राजा अचलदास जी से ठीक करवा दिया। विवाह हो गया। राजा अचलदास जी की पहली रानी का नाम लालादे था। जब अचलदास जी उमादे को लिया कर अपने घर गये तो भीमा भी उनके साथ गई। वह उमादे की पुरानी सखी थी। वह प्रत्येक समय उसका मंगोरंजन किया करती थी। लालादे अपने पति को अधिक प्रसन्न किए हुए थी। उमादे के ऐसे सकल के समय भीमा ही सहायक थी।

उमादे ने बहुत दिनों तक अपना समय दुःखमय बिताया। भीमा उसकी बाल्यकाल की सगिनी थी। वह कभी दोहे और कभी गीत कह और गा कर उसका जी बहलाया करती थी। एक दिन उमादे ने भीमा से कहा कि तुम इतना सुन्दर बीणा-बजाना और गाना जानती हो तब भी क्या तुम राजा को अपने सगीत से प्रसन्न नहीं कर सकतीं ? भीमा

ने कहा—हाँ सखा ! मैं कर क्यों नहीं सकती । किन्तु गेद है कि व
स मैं यहाँ आई हूँ तब स राजा साइब के दखन ही नहीं हुए । या
कभी ऐसा अस्तर मिले तो बहुत सभव है कि मेरी वीणा राजा सा
को सुग्ध करले ।

दूसरे दिन कामा ने यह प्रमिद्ध कर दिया कि उमादे के पास ए
बदा सुन्दर हार है । यह समाचार पा कर बालादे न उमादे स व
हार मँगा भेजा । उमादे ने कहा—यदि राव जी स्वय ही लेने आ
ता मैं हार दे दूँ । बालादे ने इसे स्वीकार कर लिया । जब राव
उमादे के महल में आने लगे तब बालादे ने राव जी से प्रतिज्ञा क
की कि वहा जाकर वे हथियार न खालें । अचलदास उमादे के मह
में गये तो अख शखबादे ही लेने गये । उमादे पैर दाने लगा
कामा ने वीणा लेकर असावरी राग में यह दोहे गये —

धिन^१ उमादे सौँदली, तै पिय लियो मुलाय ।

सात बरसरो बीड़्या, ता किम^२ रैन विहाय ॥

किरती^३ माथे ढल गई, हिरनी लूना^४ राय ।

हार सटे पिय आणियो , हँसे नसामो थाय^५ ॥

चनण काठरो टालिया^६, किस्तूरियो^७ अबास^८ ।

१ धन्य । २ भाव ले लिया ३ क्या ४ कृतिता ५ मृगशि
६ काने ७ बदने ८ लाया गया ९ स-मुख १० चन्दन ११ पल्ल
१२ करदूरी को १३ सुगन्धित स्थान ।

धण^१ जागे पिय पौढयो^२, वाळू^३ औघर^४ वाम ॥
 लालाँ लाल भेवाड़ियोँ, उमा तीज चल^५ भार ।
 अचल ऐराक्याँ^६ ना चढै, रोढाँ^७ रो असवार ॥
 काले अचल मोलात्रियोँ^८, गज घोडाँ रे मोल ।
 देखत ही पीतल हुआ, सो कडल्याँ^९ रे बोल ॥
 धिन्य दिहाडो^{१०} धिन घड़ी, में जाण्यां थो आज ।
 हार गयां पिव सो रह्यो, कोइ न सिरियो काज ॥
 निसि दिन गई पुकारताँ, कोइ न पूगी^{११} दाँव ।
 सदा बिलखती धण रही, तोहि न चेत्यो राव ॥
 ओढ़न^{१२} मीणा^{१३} अंबरा^{१४}, सूतो खूँटी ताण ।
 ना तो जाग्या वालमो, ना धन मूक्यो^{१५} माँण ॥
 तिलकन भागो^{१६} तरुणि को, मुखे न बोल्यो वैण ।
 माण कलड़ छूटी नहीं, आजैस^{१७} काजल नैण ॥
 खीची से चाँहे सखी, कोई खीची लेहु ।
 काल पचासाँ में लियो, आज पचीसाँ देहु ॥
 हार दियाँ छेदो^{१८} कियो, मूक्यो माण मरम्म ।

१. स्त्री २. लेटा हुआ ३. जलाना ४. यह ५. ज़बरदस्त ६. घोड़े
 ७. छोटा घोडा ८. मोल लिया ९. साकें १०. दिन ११. पहुँचा १२.
 ओढ़कर १३. महीन १४. कपड़े १५. छाँडा १६. नष्ट हुआ १७. अभी
 तक १८. आधीनता, खुशामद ।

ऊँमों पीवन चक्खियो, आडो लेख करम्म ॥

ऐसे सरस दोहे सुनकर भा राव अचलसिंह न अपना कमर न खोली । प्रातःकाल हाने ही जय लालादे का दासी राव जी का बुनाने आई तब उमादे ने कहा —

मॉग्या लाभे^१ जब चरण, मौजी लभे जुवार ।
मॉग्या साजन किमि मिल, गहली^२ मूढ गँवार ॥
पहो^३ फाटी पगडो हुआ, विछरण रो हे बार ।
ले सकि थारो बालमो, उरदे म्हारो हार ॥

भीमा यह सुनने ही बाणा फेंक झुँकला कर उठी और राव जी को जगाने लगी । राव जी ने कहा—तुमन हार सहे पिव आखियों^४ क्यों कहा ? इसका क्या अभिप्राय है ? तब चारिणी भीमा ने कहा—राव साहब ! आप को तो लालादे ने बँच दिया है और हमन एक हार के बदले तुम्हें मोल ले लिया है । यदि तुम भी चल जाओगे और हार भा हमारा बला जायगा तो फिर हमारा काम कैस होगा ? राव जी ने भीमा से मारा हाल पूछा । भीमा ने सब वृत्तान्त सुना कर यह दोहा पढ़ा —

लाला मेवाड़ी करे धौजो करे न काय ।
गायो भीमा चारिणी, ऊमा लियो गुलाय ॥

१ मित्रे २ पागल वावली ३ प्रातःकाल ४ दूसरा ५ माल

पगे वजाऊँ गूधरा, हाथ वजाऊँ तूँव^१
 उमा अचल मुलावियो, ज्यूँ सावन की लुँव^२ ॥
 आसावरी अलापियो, धिनु भीमा धण जाण ।
 धिण आजूणे^३ दीहने,^४ मनावणे^५ महिराण ॥

भीमा के उपर्युक्त दोहों और वार्तालाप को सुनकर राव राजा अचल-सिंह ने रोप पूर्वक कहा—अच्छा लालादे ने हमको बेंच दिया है ? उसने हार को हमसे अधिक मूल्यवान समझा ? अब मैं लालादे के पास न जाने की शपथ करता हूँ । उमादे तुरन्त बोल उठी—नहीं महाराज, आप लालादे को आने का वचन देकर आये है । आप वहाँ जाइये जिनसे कि आपका वचन भंग न हो । जब मैं आपको बुलाऊँगी तब यह कह कर चले आइयेगा कि तुमने तो हमें हार के बदले उमादे के हाथ बेंच दिया है ।

कई दिन बीत गये । एक दिन रात्रि को राव अचलसिंह जी लालादे के साथ चौपड खेल रहे थे । उन्ही समय उमादे की सखी भीमा राव साहब को बुलाने आई । एक बाजी भी पूरी न हो पाई थी कि राव साहब उमादे के पास चलने को तय्यार हो गये । लालादे ने कहा—यह क्या, कहाँ जाते हो ? राव साहब ने कहा—तुमने तो हमें एक हार के बदले उमादे के हाथो बेंच दिया है । इसलिए मैं उमादे का

१. घीणा २. बरसने वाली बदली ३. आज ४. दिन ५. राजा को मनाना ।

गुलाम हूँ। मैं यहाँ कदापि नहीं रुक सकता। ऐसा कह कर राव साहब मीमा के पास चले गये। लालादे मीमा और उमादे पर प्रति कुपित हुई। वह मामा से अत्यन्त नाराज़ हुई क्योंकि उस मान्म या कि यह करतूत इमी चारिणी की है।

इस प्रकार मीमा चारिणी ने अपनी यत्न चातुरी और समीप कविता से अपनी मखी उमाद का सारा सकठ दूर कर दिया। मीमा के समय का अभी कुछ निरचय नहीं हो सका। किन्तु काटा के राजा अचलसिंह को हुये आज लगभग २२२ वर्ष हुये होंगे। इसलिये मीमा चारिणी का समय भी २२२ वष पूर्व होना माना जा सकता है।

मीमा बड़ी वीर रमणी था। इसने कई लड़ाइयों में भी चारिणी का अत्या काम किया था। वीणा वजाने में तो यह अत्यन्त कुशल थी ही इमी कारण इमने एक बार लड़ाई में अपने विपक्षी राजा को भी फँसा लिया था। इसको कई लड़ायियों में विजय प्राप्त होने के कारण घाडे हाथी और हज़ारों रुपये इनाम में मिलते थे।

मारवाड़ में आज भी इस प्रसिद्ध चारिणी का गुण गान किया जाता है। इसके लुद भी मारवाड़ में गौरव की दृष्टि से पने और गाये जाते हैं। स्वर्गीय मुशी देवीप्रसाद के पुस्तकालय में भी इसके गीतों का कोई साय संग्रह नहीं है। हाँ मुशी जी का इसके सवध में अनेक कियदंतियाँ मालूम थीं। उमादे और मामा में अत्यन्त गाढ़ा मैत्री थी। कहते हैं कि उमाद और मामा का मृत्यु एक ही दिन के घतर से हुई थी।

सुन्दरकुँवरि चाई

सुन्दरकुँवरि चाई जी रूपनगर तथा हृण्णगढ़ के राठौर क्षत्रिय वशी
 महाराजा राजसिंह जी की बेटी थी। इनका जन्म कार्तिक सुदी
 ६ सम्वत् १७६१ में दिल्ली में हुआ था। इनकी माता का नाम महा-
 रानी बाँकावती था, जो एक प्रसिद्ध क्षत्रियित्री और भक्त थी। इनके
 सगे भाई का नाम वीरसिंह था।

महाराज राजसिंह का सम्वत् १८०५ में देहान्त हो जाने से इनके
 घराने में राज्य सम्बन्धी कई झगड़े खड़े हो गये। इससे उस समय
 सुन्दरकुँवरि जी का विवाह न हो सका। ये तरुणावस्था में भी अपने
 घर के झगड़ों में पड़ी रही और अनेक बाधाओं का सामना करती रही
 जिससे ३१ वर्ष की अवस्था तक ये कुँवारी रहें।

सम्वत् १८०० में इनके भतीजे महाराजा सरदारसिंह ने इनका
 विवाह रूपनगर में रावोगढ़ के खीची महाराजा बलभद्रसिंह के कुँवर
 बलवंतसिंह जी से कर दिया। विवाह हो जाने पर सुन्दरकुँवरि चाई
 जी रावोगढ़ गईं और वहाँ उन्होंने "रम-पुंज" नामक एक ग्रन्थ सम्वत्
 १८३४ में बनाया। विवाह के बाद भी चाई जी को अनेक दुःखों का
 सामना करना पड़ा। पीहर में ये भाइयों के विरोध और मरहटों के
 आक्रमण से घोर सकट में पड़ गई थी। जत्र कर लेने के लिए इनके
 पति से पहले होल्कर ने लड़ाई ठानी तब इन्होंने छुट्टा और गूपोर

परगना देकर सुलह कर ली। किन्तु और रायों का निगाह भी इतर लगी हुई थी। अतः में सेंधिया क सरदार ने बलवतसिंह जी को पकड़ कर ग्वालियर में कैद कर दिया और राधोगढ़ का कब्जा ले लिया।

अतः में बलवतसिंह जी ने जयपुर जोधपुर और अपने कुटुंबा स्त्रीची सरदार शेरसिंह की सहायता से फिर राधोगढ़ का प्राप्ति किया। बलवतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके कुँवर जयसिंह राधोगढ़ का राजा हुए किन्तु सेंधिया ने फिर राधोगढ़ ले लिया। जब सेंधिया से लड़ते लड़ते जयसिंह का भी मृत्यु हो गई तब जयसिंह की रानी ने अजीबसिंह को गाढ़ लिया। फिर अमीरजी ग नमो ने महाराज दौलतराव सेंधिया से कह कर राधोगढ़ कुँवर अजीबसिंह को दिला दिया।

सुन्दरकुँवरि बाई के सम्बन्ध में अधिक बातों का पता नहीं लगता। राज्य के मगडे के समय शायद वे सलेमानगर में रही होंगी। क्योंकि वहाँ इनके कुल का गुरद्वारा है। इनके मृत्यु के सम्बन्ध में ठीक पता नहीं चलता। मुशी देवीप्रसाद जी भा इनका पता नहीं लगा सके। उनका यहाँ कहना है कि— इनके अन्तिम प्रप का निर्माण-काल सम्बन् १८५३ ई पत्र कि उनका अरुणा ६३ वर्षका हो गई थी। इसके पीछे ही वे किया वष महाराजा प्रतापसिंह के समय में स्वर्ग धाम का प्राप्त हुई होंगी।”

बाई जी में बाल्यकाल ही से कविता के सुनने तथा पढ़ने का ध्यान था। जिस राजकुल में बाई जी का जन्म हुआ था वह सदा से अने

अच्छे कवियों का शाश्वत-दाता रहा था। इनके पिता राजसिंह स्वयं अच्छे कवि थे। इनके भाई नागरीदामजी तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध कवि थे। इनकी माता बांकावती उपनाम ब्रजदासी जी स्वयं भक्त और सुकवि थीं। इनकी भतीजी छत्रकुँवरि वाई जी पदों के बनाने में कुशल थी। यही नहीं बल्कि इनके घराने की दामियाँ तक कविता करने में कुशल थीं। भक्त नागरीदास जी की दासी बनीठनी जी (रसिकविहारी) भी भक्त कवि थीं। जिस कुल में इतनी कुशल और प्रवीण कवि और कवि-कान्ताएँ हो गई हैं, उसी कुल में सुन्दरकुँवरि वाई जी जन्म-ग्रहण कर क्यों न सुकवि और विद्वत्ता में प्रवीण होतीं। इन्होंने अत्यन्त भक्तिमयी ललित कविता की है।

इनके रचे हुए ११ ग्रन्थ पाये जाते हैं। पता नहीं इनके और भी कोई ग्रन्थ है या नहीं। मुंगी देवीप्रसाद जी का कहना है कि इनके ग्रन्थों का एक बड़ा संग्रह कृष्णगढ़ के महाराजा प्रतापसिंह जी की राजकुमारी के पास था। जब उनका विवाह बूंदी के महाराजा विष्णुसिंह जी के साथ हुआ तब वे इस संग्रह को अपने साथ बूंदी ले गईं। फिर उन्होंने उसे अपने पुत्र महाराज रामसिंह जी को दिया। उनके पीछे महाराज रघुवीरसिंह जी बहादुर जी० सी० एम० आई० की माँजी साहब को प्राप्त हुआ। बूंदी में चद्रकला वाई एक कविमित्री हो गई हैं। उन्होंने माँजी से प्रार्थना की कि वे सुन्दरकुँवरि वाई जी के ग्रन्थों को छपवा दें। चद्रकला वाई की प्रार्थना स्वीकार करके माँजी ने सुन्दरकुँवरि जी के सारे ग्रन्थों को प्रकाशित करवा के मुफ्त बँटवाया।

सुन्दरकुँवरि वाई की रचना बड़ा ही मधुर और भक्तिरस से पूर्ण है। इन्होंने अपनी पुस्तकों में कृष्ण-लीला भगवद्भक्ति का (निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार) बड़े प्रेम से बखान किया है। इनकी कविता बड़ी मधुर और आत्मा का शान्ति दिलाने वाली है। काव्य-गुणों की दृष्टि से इनका कविता बड़े ऊँचे दर्जे की है। उसमें प्रसाद-गुण प्रवाह की अधिकता है। हमारा राय में आड़े सुकवियों से इनकी कविता टक्कर ले सकता है। इनकी रचित पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं —

१ नेहनिधि-रचना (सम्बत् १८१७ भादों सुदी १३ रविवार रूपनगर में) २ वृन्दाना गोपा महाम (रचना सम्बत् १८२३) ३ सकेत सुगल ४ रस पुज ५ प्रेम सपुत्र ६ सार समह ७ रङ्गभर ८ गोपी महाम ९ भावना प्रकाश १० राम-रहस्य ११ पद तथा स्फुट कवित्त । हम इनकी पुस्तकों से यहाँ चुना हुई कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं—

१

आज्ञा लहि घनश्याम की चली सखी वहि कुज ।
जहाँ विराजत मानिनी श्री राधा मुख पुज ॥
श्री राधा मुख पुज कुज तिहि आई सहचरि ।
वह कन्या को सग लिये प्रेमातुर मद भरि ॥

अथ दूमरी देवी जी हैं जिन्होंने कुंडलिया छत्र में आदि वाले शब्द का अर्थ में उपयोग नहीं किया और इस प्रकार कुंडलिया में रूपान्तर उपस्थित किया ।

कहत भई करजोर निहोरन घात सयानिनि ।
तजहु मान अब मान मान मो रापहु मानिनि ॥

२

प्रिय के प्रान समान हो सीखी कहाँ सुभाय ।
चख-चकोर आतुर चतुर चंदानन दरसाय ॥
चंदानन दरसाय अरी हा ! हा ! है तोसो ।
बुधा मान यह छोड़ि कही पिय की सुनि मोसो ।
सूधै दृष्टि निहारि प्रिया सुनि प्रेम पहेली ।
जल विन भप अहि-मणि जु हीन इन गति उन पेली ।

३

कहत श्याम मेरे नहीं तुम विन कोऊ आन ।
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हौ मान ।
काहि करत हौ मान चलहु पिय संग विहारौ ।
राधा राधा मंत्र नाम वे रटत तिहारौ ॥
नायक नन्दकुमार सकल सुभ गुन के सागर ।
तिनसौं मान निवार बहुत विनवत सुनि नागर ॥

४

उतै अकेले कुंज में बैठे नन्दकिसोर ।
तेरे हित सज्जा रचत विविध कुसुम दल जोर ॥
विविध कुसुम दल-जोर तलप निज हाथ वनावत ।

करि करि तेरो ध्यान कठिन सों छिनन विहावत ॥
जाके सत्र आधीन सुतो आधीनौ तरे ।
जिहिं मुख लखि ब्रज चियत वहै तो मुख नख हेरे ॥

५

श्री ब्रजराज कुँवार वै सत्र ब्रज प्राण अघार ।
सो कह जानत घर बसी तरे चितहिं विचार ॥
तरे चितहिं विचार कहा कछु मानत नाहीं ।
वे रस बस आधीन दीन ज्यों रहत सदाहीं ॥
यह अमान है मान ताहि तजि प्राण पियारी ।
उठि चलि मिलि पिय सग दुचित है रहैं बिहारी ॥

६

लखि सनह तुम दुहुँन को मेरो जीवन होदिं ।
जन्म सफल मानहु तनै बिहरत दरहुं ताहिं ॥
बिहरत दरहुं ताहिं तनै मा नैन सिरारें ।
तुम दुहुँ बिछुरत छिनहिं प्राण मेरे अकुचारें ॥
तो सनह क प्रेम रसामृत छक्या पियारौ ।
बिरह बिकल है रहै नक चल दशा निहारौ ॥

७

सब सुभ गुननिधि हो प्रिया पारगना प्रवीन ।
नखसिख तँ माधुप्यता अद्भुत भरी नवीन ॥

अद्भुत भरी नवीन रूप गुण चातुरताई ।
 नहिं तोसी तिहुँलोक कहूँ प्यारी सुखदाई ॥
 तोहि बुलावत अति अधीर पिय आतुर मोहन ।
 बैठे हैं बहि कुंज लग्यो चित्त तेरे गोहन ॥

८

ऐसी पिय की प्रीति है तूही देख विचार ।
 तान मान यों ही वृथा काहे करत अवार ॥
 काहे करत अवार वेगि उठि चल चन्दानन ।
 अद्भुत सोभावन्त देखि कैसो वृन्दावन ॥
 बल्लभ प्राण समान पीय आतुर हित तेरी ।
 तू हठि बैठी कहा कहै यह रसना मेरी ॥

९

गति सौं मटक चलै छवि सौं लटक चालु,
 उर वनमाल है विशाल लहकारी जू ।
 करकी किरन कटि प्रीव की मुरनि दृग,
 उम्ककि दुरनि भोहैं भाव भरी भारी जू ॥
 नाचत सुलफ नटनागर रकिस छैल,
 लखि रिक्त्रारी सब जात वारी वारी जू ।
 चित्र की लिखी सौ राधे बिवस छकोसी रही,
 आँखिन की पाँखें बाँधी या खिन बिहारी जू ॥

१०

स्याम रूप सागर में नैर वार पारथ के,
 नचत तरग अग अग रगमगी है ।
 गाजन गहर घुनि वाजन मधुर वैन,
 नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है ॥
 भँवर त्रिभगताई पान पै लुनाई तामें,
 माती मणि जालन की जोति जगमगी है ।
 काम पौन प्रपल धुकाव लोपी पाज तातें,
 आज राधे लाज का जहाज डगमगी है ॥

११-

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उधरी हैं कोऊ,
 सुष त्रिसरी हैं ते लण हैं द्रुम छारि कै ।
 डगमग है कै मुजधारी गर द्वै के काहू,
 बैठि गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै ॥
 मैन-सर पागी कोऊ धूमन हैं लागी कोऊ,
 मोती मणि भूपन उतारें छारें धारि कै ।
 ऐसी गति हेरि इन्हें ग्यार कहीं टेरि टेरि,
 मदन दुहाइ जीति मदन मुगारि कै ॥

१२

मन रिक्त्वार ये तो पायल सुभाव तिन,
 सुभट करारे ब्यों सँभार को सँभारि कै ।

हँसदि, हँसावै सव मोद सरसावै, अति,
 चुटुल मचावै छवि छावै यदि बग लै ।
 रहस रचावै, पिया नवादि, नगनि तदा,
 मुकि मुँमलावै मुमकावै कहै रग लै ॥

१६

जित तित मूलै सव गोपिका समूह सुड,
 ममकि मकरोरन की सोभा सरमावहीं ।
 पटुरी की ढोरन हिलोरन द्रुमन मानौं,
 अटुरी दै घटा भौर ओट घन आवहीं ॥
 कोऊ चवपालन चलन सुर-रमनी ज्यों,
 रीमती जू रमन विमानन पै धावहीं ।
 फिरकी कै फेरे लो फिरत दग-सग मन,
 रूप जाल-चक्र परि फिरन न पावहीं ॥

१७

मोतिन का बेली सी मुराना सकुचान भरी,
 आनन फिरानी कर कानन घरत है ।
 चकित चितौन है अगान मुसुफान दावै,
 फावै भाव भरा भोईं चित में भरत है ॥
 मैन मधुवान सजे मुक्तन लता पै चद,
 धूँषट के कोट मानो मृगया करत है ।

सारंग सुजान स्याम धाय घट धूमै अंग,
महर उमंग मन मोहिनी परत है ॥

१८

लोने दृग कोने पलकानन छुवत चलि,
झीने पट देखि पिय दृग गति पंग है ।
पौन के परस होत हलचल घूँघट ज्यों,
त्योही द्यो त्रिवस छकि साँवरे को अंग है ॥
आन कान लागि मन जान कहै प्राणप्यारी,
कैसे ये कहाँ ते लरो अचरज दंग है ।
मुख के दुकूल भूल भूचन भुनानै उर,
सवहि न जानै नर एतहुँ फिरग हैं ॥

१९

मन-मोहन के दृग की गति तौ मन संग लै घूँघट की ठगइ ।
लखि सास लखात किशोरी लजात सु भौहैं कछु इतरान ठई ॥
इतरानहिं की ललचान इतै लागि छूटन नैनन आव पई ।
रहि कान का लाजहिं रीझि गई इनहुँ ते वहै रिझवारि भई ॥

२०

फचकच खण्ड है ब्रह्माण्ड कोटि कोटि तेरे,
मेरे रोम कूप ज्यो पै अघ उफनात है ।
तेरे लच्छ विरद अपार मेरे अपलच्छ,
तेरे सर्व सक्त मेरे अक्त तिलमात है ॥

औगुनहि एही जग मेरे स्वामी गुनप्राही,
 तेरे आसरे तें गनिकाहू गति पाव है ।
 गरीब नेवाज तैं गरीब में निवाजे क्यों न,
 लाख लाख बातन की सूधी एक बात है ॥

२१

त्राहि त्राहि वृषभानु नदिना तोकों मेरा लाज ।
 मन-मलाह के परी भरोसे घृन्त जन्म-जहाज ॥
 उदधि अथाह थाह नहिं पहुयत प्रवल परन की सोप ।
 काम, क्रोध, मद, लोभ भयानक लहरन का अति काप ॥
 प्रसन पसारि रहे सुख तामहिं कोटि प्राह से जेत ।
 बीच धार तहें नाव एरानी तामहिं धारे कते ॥
 जो लागि सुभ मग करै पार यहि सो कबट भति नीच ।
 वही बात अति ही बौरानी चहत डुमोवन वाच ॥
 याको कछु तपचार न लागत हिय हीनत है मेरो ।
 सु-दरकुँवरि बौह गहि स्वामिनि एक भरोसा तरो ॥

२२

तजौ चारी का धान अयान का ।

नदराय के लला लडोहै मुनलो बात सयान की ॥
 कीरति पठई दुलहा दरसन तिय आई बरसान की ।
 सु-दरकुँवरि मुलच्छन गुननिध व्याहोगे वृषभान की ॥
 आई है ते आय कहेगी बात रावरे धान की ।

सास कहेगी चोर कुँवर को जैहै वह प्रिय प्रान की ॥
 इक तो कारो चोर भयो फिर दइया छाप लजान की ।
 सुनि हँसिहैं चदाननि टुलहो जिहँ उपमा न समान की ॥

२३

मेरी प्रान-सजीवन राधा ।

कव तो वदन सुधाधर दरसै यो अँखियन हरै चाधा ॥
 ठमकि ठमकि लरिकौही चालत आव सामुहे मेरे ।
 रस के वचन पियूप पोप के कर गहि वैठहु मेरे ॥
 रहसि रंग की भरी उमंगनि ले चल संग लगाय ।
 निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख-दग्साय ॥
 रंगमहल सकैत सुगल कै टहलिन करतु सहेली ।
 आज्ञा लहौ रहौ तहँ तटपर बोलत प्रेम-पहेली ॥
 मन-मजरी जु कीन्हो किकरि अपनावहु किन बेग ।
 सुन्दरकुँवरि स्वामिनी राधा हिय की हरौ उडेग ॥

२४

चतुरंग चमू अति छवि विराज, मणि कनक साजि गजराज बाज ।
 पुनि दुरद पीठ राजै निसान, धुनि होत दुंदुभी घन लजान ॥
 केउ चलै गजन पर गुनी नाम, गावैं जु कीर्ति कीनी सुदाम ।
 पुनि चढ़े अश्व सोभित अपार, छत्रैत सुभट साजे सिंगार ॥
 पखरैत किते हय पै सवार, जिन जिरह टोप आपै अपार ।
 राजै अनंत साँवत सुढंग, कर गहै चाप कटि कसि निपंग ॥

सुंदर म्वर की शोभा अनूप, सुरगन विमान नहिं लगत जूप ।
 फसि कमर अमर से चल वीर, अति भई वाहिनी की जु मीर ।
 पैदल दल शोभा के समूह, लखि चकित रहत सुर विवध गूह ।
 है कितौ कटक नाहिन प्रमान, सोभा-समुद्र मनो उमड़ आन ॥

१२५

धानत नगारे अरु गाजत गयद भारे,
 मयमान अरी की नरान गही डरी हैं ।
 दल पारावार का अपार रव रह्यो छाया,
 मार्जे राज राव उर उठे घरधरी हैं ॥
 बौधत जे वान सुर ताक तेऊ यहराने,
 कऊ नजराने दै पुरी की रच्छा करी हैं ।
 अलका में अलकनि मेरु माहिं पलकन,
 सुर का वधू कै हू चमू का रज भरी हैं ॥

२६

घन की घटा सी चट्टी धूर सैन पायन की,
 दामिनि ऋमक छवि तामें बरछान कै ।
 पीठ गजराजहिं निसान फहरान पीठ,
 विवधे मणिन दण्ड इन्दु धनुवान कै ॥
 घाय रवि छादित अराम मग छाँड़ चलें,
 प्रेम के विनोदा रामरग सरसान कै ।

जानहु सुजान भान-कुल के बड़े के कान,
छायो मानो रज को वितान आसमान कै ॥

२७

चारु चमूँजु अपार लसैं गजराज की पीठ पै होत नगारो ।
नीकी अनीकिनि पीत निशान यो सोहत है छवि नैन निहारो ॥
साँवरे रंग अल्पम अंग अनंगहु तौ सम नाहिं विचारो ।
आयव हे सखि औध को रावसु पाहन पौव उड़ावन हारो ॥



चपादे

चं पाण्डू जैसलमेर के राज बहरराज की पुत्रा और बीकानेर के राजा राजसिंह के भाण्डू पृथ्वीराज की रानी थीं। स० १८१० के आम पास पृथ्वीराज का समय माना जाता है। ये एक सुप्रसिद्ध और निपुण कवि थीं। दिगल (राजस्थानी) और पिगल (प्रभाषा) दोनों ही भाषाओं पर इनका पूरा अधिकार था। दिगल भाषा में 'प्रमदापका' नामक पुस्तक थापको उच्च कोटि की रचना है।

महाराज पृथ्वीराज एक बड़े ही प्रतिभावान और रसज्ञ कवि थे। इनकी प्रथम स्त्री का नाम लीलादे था। जो इनके अनुचल ही सुन्दर रानी थी और प्रवीण स्त्री थी। लीलादे के समान स्त्री-रत्न पाकर महाराज पूले न समाने थे। किन्तु काल-चक्र की गति बड़ी ही विचित्र है। अतः में महाराज पृथ्वीराज पर भी वज्रपात हुआ। रानी लीलादे का युवावस्था में ही एक साधारण बामारी से ही देहान्त हो गया। इस व्याकस्मिक दुर्घटना के कारण महाराज का बड़ा दुःख हुआ। जब उन्होंने लीलादे का सुन्दर, सुकुमार शरीर आग में जलते हुए देखा तो अति व्याकुल होकर निम्नलिखित दोहा कहा —

तो रौंध्यो नहिं राव'स्योरे, वाम न निसड्ड' ।

मा दक्षत तू घालिया, लाल रह'ग हडड' ॥

अर्थात्—पे अग्नि ! तुम्हसे पका हुआ भोजन मैं आज से कदापि न करूँगा । क्योंकि तूने मेरे देखने देखने लीलादे को जला डाला । अब केवल हड्डियाँ ही गेप रह गईं ।

संतति के कारण इन्हें लोगों के घाम्रह मे बाध्य होकर णपना विवाह फिर करना पटा । उस वार इनका विवाह चपादे के साथ हुआ । चपादे रूप-भावण्य, गुण-शोचन में लीलादे से भी बढ़ कर निकली । इम्ने आते ती पृथ्वीराज की उदासीनता को दूर कर दिया । थोटे ही दिन से यह हाल हुआ कि चपादे को देखे बिना महाराज को पल भर भी कल नहीं पढ़ती थी । चपादे पर सुग्ध होकर पृथ्वीराज ने उसकी प्रगसा में कुछ दोहे बनाये थे । जिनमें से एक यह है :—

चाँपा तू हररा जसी, हँस कर वदन दिखाय ।

मो मन पातळ कुपात ज्यो, कवहूँ तृप्त न जाय ॥

पति की सगति से चपादे भी कवि हो गई । एक दिन महाराज पृथ्वीराज 'रुक्मिणी-वेष' में महाराज भीष्म के विलास-भरणों का वर्णन लिख रहे थे । एक स्थान पर—'चदन पाट'—शब्द से आगे का शब्द नहीं सूक्तता था । वे वार वार 'चदन-पाट' 'चदन-पाट' कह रहे थे । चंपादे पास ही बैठी हुई महाराज की इन शब्दावली

छपात-कुपात—उस चारण कवि को कहते हैं जो दान के धन से कभी तृप्त नहीं होता ।

चंपादे ने उनकी मानसिक ग्लानि मिटाने के लिए मधुर-मंद-दाम्प्य पूर्वक कहा—नहीं साहिब जी ! यों नहीं यों नमस्क्रिये :—

प्यारी कहे पीथल^१ सुनौ, धोलों दिस मत जोय ।

नरों नाहरों^२ डिगमरों,^३ पाकों^४ ही रस होय ॥

खेड़ज^५ पक्कों धोरियाँ,^६ पंथज^६ गउघाँ^७ पाव ।

नरों तुरंगों^६ बनफलाँ, पक्कों पक्कों साव ॥

हम नहीं कह सकते कि इन दोहों में महाराज पृथ्वीराज की मानसिक ग्लानि दूर हुई वा नहीं ।

चंपादे राजपूताने की वीर रमणी थी । यह किन्तनी ही लड़ाइयों में महाराज पृथ्वीराज के साथ भी गई थी । इसने लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी से काम किया था । महाराज पृथ्वीराज संवत् १८१० में मौजूद थे । इसलिये चंपादे का भी यही समय माना जा सकता है । चंपादे का जन्म-संघट्ट का ठीक ठीक पता नहीं चलता ।

यह वही इतिहास प्रसिद्ध चंपादे रानी है जो नौरोज के जल्लों में बादशाह अकबर के चंगुल में फँस गई थी और सतीश्वर-रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख कर फटार निकाल बादशाह की छाती पर चढ़ बैठी थी । रानी की वीरता ने लम्पट अकबर को हर तरह लाचार कर दिया ।

१. प्रीतम २. नर नाहर तथा दिगम्बर (जोगी आदि) के बहु वचन । ३. पक्का ४. खेती ५. बैल ६. रास्ता ७. कँट ।

उसने मज़दूर हाकर आयदा भले घरों का रहु-बेगियों को मीना बाज़ार में बुलाने की कसम खाई और माता कह रानी चंपदे से चमा प्रार्थना की, तब उसके प्राण बचे । इस वीर राना ने इस प्रकार अनेक रमणियों का सनातन जो भविष्य में अकाल द्वारा नष्ट होता अपनी अत्रौकिक वारता में बचाकर मातन-माता का सुखोद्भव किया ।



विरंजीकुँवरि

श्रीमती विरंजीकुँवरि जी जौनपुर के गढ़वाल नामक गाँव की रहने वाली थी। उनके पति का नाम साहित्यदीन था। साहित्य-दीन सिंह दुर्गवंशी ठाकुर अमरसिंह के पुत्र थे। विरंजीकुँवरि की बाल्यकाल से ही कविता करने की रुचि हो गई थी। अपनी कवितायें प्रायः वे अपने पति को सुनाया करती थीं। जौनपुर में पढ़-ताड़ करने पर हमें यह पता चला है कि अतः में ये मन्यामिन हो गई थी और स्थान-स्थान पर साधुओं की स गति में भी रहा करती थी।

इनकी मृत्यु कब हुई और जन्म कब हुआ, इस सम्बन्ध में अभी ठीक ठीक पता नहीं चल सका। उन्होंने सन् १९०५ में 'सती-विलास' नामका एक ग्रन्थ बनाया है। 'सती-विलास' में स्त्रियों के सम्बन्ध की बातें लिखी गई हैं। 'सती-विलास' से इन्होंने अपने कुटुम्ब का इस प्रकार परिचय दिया है.—

दोहा

सूर्यवंश मे रघु भये, रघुवंशी श्रीराम ।
तासु तनय लवकुश भये, द्वीखित पूरन काम ॥
द्वीखित वंश उदित भये, दुर्गवंश महाराज ।
तिलक जुक्त सुभ सोभिजे, सत्य धर्म कर साज ॥
आदि सलख ते अलिल भे, तेहि ते भे निरँकार ।

ताहि निरजन सुत भयो, तेहि ते ब्रह्म उदार ॥
 सहस्रसीस को विधि भये, तेहि ते भे सत मीस ।
 अष्ट सीस ताके भये, कमलनाभि प्रजनीस ॥
 जा बरनौ यहि भाति से, वाढे ग्रन्थ अपार ।
 ताही ते कछु म्वल्प करि, कहव वम बिस्तार ॥
 आदि अलख अरु सूर्य्य त, पुस्त इगारइ जान ।
 पुस्त अठावन फिर गये, भे रघु परम सुजान ॥
 आठ पुस्त रघुवस गे, तव जनमे दृगसेन ।
 रामचंद्र जू को छनति, द्वीखिन वशन सेन ॥
 प्रथम सेन पद द्वित गये, जुग सत पुस्त प्रमान ।
 पाढे साढे तीन से, पाल सो पदवी जान ॥
 साहि देव औ सिंह पद, पुस्त सहस गे बीत ।
 ताके पीढ़ समन नृप, निज पद पुर करि प्राति ॥
 समन हुत फिर वानवे, गई पुस्त यहि भाति ।
 गरिवसाहि राजा भये, दुर्गदास जेहि नात ॥
 दुर्गदास बल बुद्धि से, उसि ली छ मढ़वार ।
 महातज ताका जगे, शत्रु भये सहार ॥
 ताके तेरही पुस्त भे, प्रमरसिंह हरिभक्त ।
 तासु तनय मम कत है, जानत हैं तहि भक्त ॥
 जैसे बासन कोटि सों, बास सा लघु नर होय ।
 कितनो दिन जो बीतई, बास कहावे सोय ॥

त्योहीं विधि महाराज के, वंस-प्रसिद्ध उदार ।
ताते सत्र नर कहत हैं, श्री महाराज कुमार ॥
सोरठा

रामचंद्र कर दास, अमरमिंह मन वचन तैं ।
पुत्र होन की आस, सेयो हरि-पद-कमल दृढ़ ॥
दोहा

सेवत वंश गोपाल के, तेहिं सुत माहिवदीन ।
सो प्रभु तत्व विचारि के, रहत ब्रह्म में लीन ॥

यह परिचय इन्होंने अपनी समुरालयालों का दिया है। उक्त दोहों से प्रगट होता है कि इनके पति स्वयं भगवद्भक्त थे और ईश्वर की आराधना में लीन रहते थे। इन्होंने 'सती-विलास' में अपने नैहर का भी जिक्र किया है। वह इस प्रकार है :—

दोहा

अत्र भाखीं माइक अचल, काशी शुभ अस्थान ।
जाके दरसन हेत हित, देव करहिं प्रस्थान ॥
विमल वंश रघुवश के, वही घयार मरीह ।
ग्राम नेवादा में विदित, मम पितु मीतलसौह ॥

इन दोहों से प्रगट होता है कि इनका नैहर बनारस जिले के नेवादा ग्राम में था। इनके पिता का नाम मीतलसिंह था। 'मनी-विलास' ग्रन्थ इनका प्रकाशित हो गया है। हमारे पास यह पुस्तक है। इनकी कविता साधारण दर्जे की है। लेकिन तो भी स्त्री होने से ये कविता

साधारणतया अक्षी कर लेती थीं। 'सता विज्ञास' में पतिव्रत धम्म आदि खिपोचिन बातों पर प्रकाश डाला गया है। हम इनकी कुछ कवितायें नीचे उद्धृत हैं —

१

गिन जौनपुर में गडवारा । दुर्गवश तहँ बसहि उदारा ॥
 कोल्हा आम कुटी वन माला । तहँ बसि कन विनावत काला ॥
 तहौं ध्यान अनुभव तम पाये । सो करि प्रगट् प्रथ हम गाये ॥
 गान सून्य अरु अक मिलाई । तापर चढ ऋ पुनि भाई ॥ॐ
 शून्य सत्र मुनि इहु बखानौ । यथा अक माक पहचानौ ॥†
 सादन सित पूनव जब आई । तत्र मेरे मन हुलमत भाई ॥
 जोषेउ धम्म पतिव्रत केरा । जाने करूँ सब धम बसरा ॥
 का पतिव्रता का व्यवहारू । कवन धम्म तिय सुगति सिंगारू ॥
 कवन वर्त पति के पिय भाखौ । जेहि हित जीय दह में राखौ ॥
 अब पिय निरनय ऋ बताड । मैं गंवारि कहु जानि न पाई ॥
 घरौं सदा पति पद कर पूजा । जानौ देव अवर नहि दूजा ॥
 पदौं सुनौं पति सग पुराना । यूकौं वेद शास्त्र कर ज्ञाना ॥
 आत्म ज्ञान अरु तत्र विभेदा । ब्रह्म ज्ञान कहु भावित वेदा ॥
 सो सब सुनत रहौं दिन राती । एक लालसा मां मति मानी ॥
 जारि दुअो कर पति सन पूजा । यह ता धम्म तियन कर छुडा ॥

ॐ सवत् १८०४ । † सवत् १७७६ ।

कहौ धर्म पतिवर्त विचारा । जेहि सुनि नारि होहि भव-पारा ।
किमि कर रहे चरन मँह सेवी । जेहिते धर्म-नारि होइ देवी ॥

२

तीरथ सो कछु नेम नहीं,
अरु जानो नहीं कछु देव पुजारी ।
चाल कुचाल हमे नहिं मालुम,
याते कहैं सब लोग गँवारी ॥
ज्ञान विवेक कहा लहे नारि,
सदा जेहिं निर्धन संत विचारी ।
तातें 'विरजी' विचारि कहै,
मोहि देहु सियापति कत सो यारो ॥

३

होइ मलीन कुरूप भयावनि,
जाहि निहारि धिनात हैं लोंगू ।
सोऊ भजे पति के पद पंकज,
जाइ करे सति लोक में भोगू ॥
ताहि सगाहत हैं विधि शेष,
महेश बखानै विसारि के जोगू ।
यातें "विरजी" विचारि कहै,
पति के पद की तिय किंकरि होगू ॥

रत्नकुँवरि वीवी

वीवी रत्नकुँवरि का जन्म मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सठ के घराने में हुआ था। इनका जीवन बड़ा आनन्दमय था। इन्होंने बृद्धावस्था तक अपने पुत्र-पौत्रों के साथ अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत किया। ये बड़ी पढिता और विदुषी थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' इनके पौत्र थे। इनका स्वभाव सरल और आचरण प्रशंनीय था। ये बृद्धावस्था में योगियों की भाँति रहा करती थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने इनका परिचय इस प्रकार दिया है —

“वह सदा में बड़ी पढिता थीं इहाँ शास्त्र की वेत्ता फारसी भाषा भी इतनी जानती थीं कि मौजाना रुम की मयनवी और दीवान शम्स तबरेज़ जब कभी हमारे पिता पढ़कर सुनाते तो उसका सम्पूर्ण आशय समझ लेती थीं। गाने-बजाने में अत्यन्त निपुण थीं। बिक्रिस्ता यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार की जानती थीं। योगाभ्यास में परिपक्व थी। यम नियम और वृत्ति ऋषियों और मुनियों का सा थी। सत्तर वर्ष का अवस्था में भी बाल बाले थे तथा आँखों में उषाति बालकों की सा थी। वह हमारा दादा थीं। इससे हमका अर्थ उनकी अधिक प्रशंसा लिखने में लाज आता है। परन्तु जा साजुसत और पण्डित जग उस समय के उनके जानने वाले कारी में बतमान हैं वे उनके गुणों को अघावधि स्मरण करते हैं।

उपरोक्त कथानक से यह मालूम होता है कि वीवी रत्नकुँवरि वास्ता में वही योग्य और साधु रमणी थीं। शायद उन्होंने अपना अंतिम काल काशी में ही बिताया था।

इनका एक ग्रंथ 'प्रेम-रत्न' राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' ने सन् १९४५ में प्रकाशित कराया था। यह ग्रंथ हमारे पास मौजूद है। इस पुस्तक में "श्रीकृष्ण व्रजचंद आनंद-कंद की लीलाओं का उल्लेख कविता में परम प्रेम और प्रचुर प्रीति से किया गया है।" पुस्तक में कुल ७६ पृष्ठ हैं। सारा वर्णन दोहा और चौपाई छंदों में किया गया है। इस पुस्तक की भाषा और भाव को देख कर यह प्रकट होता है कि रत्नकुँवरि वीवी भाषा में भी काफी दखल रखती थीं। कविता इनकी अच्छी है। पता नहीं इन्होंने और कोई ग्रंथ बनाया है या नहीं। हमारे देखने में इनका और कोई अन्य ग्रंथ नहीं आया। 'प्रेम-रत्न' से कुछ छंद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं —

चौपाई

भक्ताधीन विरद प्रभु केरे। गावत वाणी वेद घनेरे।
सतत रहत भक्त के पासा। पुरवत हैं प्रभु तिनकी आसा॥
जे सप्रेम हरि सो मन लावैं। तिनको कबहूँ नहि विसरावैं॥
ग्राह-ग्रसित गजराज छुडाये। गरुड़ छाँड़ि तहँ आतुर धाये॥

*यह दूसरी देवी है जिन्होंने प्रबंध-काव्योचित दोहा-चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काव्य लिखा है।

पुनि प्रमु पाण्डव जरत बचायो । द्रुपद सुता को बसन षट्पायो ॥
 अजामील यम ते ररि लीन्हा । भजन प्रताप ध्रुवहिं वर दीहों ॥
 जन प्रह्लाद अभय करि थाप्या । ताही वार न वारहि व्याप्यो ॥
 जो जन मन ते ध्यावहिं जैसे । ताकहुँ प्रमु फल दते बैस ॥
 अग जग सकल विश्व के स्वामी । सर्वमयी सब अन्तरयामा ॥
 प्रेम युक्त ब्रज जन मन ध्यायो । तात प्रेम हृदय हरि छायो ॥
 प्रमु के मन यह रहत सदाहीं । ब्रज वासिन तें भेंग्यो नाहीं ॥
 एक दिन दिनकर ग्रहण भयो जन । बहु नर नारी जात चले तब ॥
 जानि परम कुरुखेतहि पावन । सकल चलेतहँ ग्रहण नहावन ॥
 यह सुनि यदुनदन मन मानी । एक पथ द्वे कारज ठाना ॥
 कछो यदुवपति यदुकुल केतू । हम सब चलो चले कुरुखेतू ॥
 जेते अरु पुरजन पुरवासी । तिनहुँ कहहु यह बात प्रकासी ॥
 ग्रहण नहाहु सकल तहँ जाई । सुनि आयसु सब शीश चढ़ाई ॥
 मुदित सकल आँद रस पागे । गवन साज साजन कहँ लागे ॥
 अधिकारिन सब काज सँवारे । नाना वाहन सुभग सिँगारे ॥
 सुनत परसपर सब नर नारी । घर घर निज निज सौँज सँवारी ॥
 द्वारावति के जिते निवासू । चले जात सब परम हुलासू ॥
 क ह्यो कटक अति परम विशाला । चले सग अगणित भूपाला ॥
 कारे करिवर गरजन लागे । सावन घन जनु लखि अनुरागे ॥
 अगणित तुरँग चने दिहिनावत । पक्षर बसह ऊँट अररावत ॥
 अपित भीर मग परत न पाया । धूरि धु घ नभ-मडल छायो ॥

मग में होत कोलाहल भारी । मुदित करत कौतुक नर-नारी ॥
 यों पहुँचे कुरुखेतहि जाई । परिगो कटक तहाँ छिति छाई ॥
 हाट बजार दुकानः सुहाई । तहँ सब वस्तु मिलत मन भाई ॥
 देश देश के यात्री आये । भये तहाँ मिलि अनँद वधाये ॥

दोहा

वरन वरन वर तंबुवन, दीन्हो तान वितान ।
 अति फूले फूले फिरत, डेरा परत न जान ॥
 जबते मथुरा तन चितै, तजि ब्रज-जन यदुनाथ ।
 विरह विथा वृज में बढी, तहँ सब भये अनाथ ॥
 प्रिय तीरथ कुरुखेत सब, आये ग्रहण नहान ।
 यदुपति राधा गोप गण, नन्दादिक वृषभान ॥
 गोप एक नट-भेष सजि, आयो बीच बजार ।
 तहँ खरभर लशकर पख्यो, सो अति रख्यो निहार ॥
 इक यादव हँसिके कह्यो, कहाँ तुम्हारो वास ।
 अति सुन्दर तन छवि वनी, नाम कहहु परकास ॥
 तव उनहू कहि तुम कहहु, काके संग कित ठाउँ ।
 द्वारावति-पति कटक यह, कह्यो यदुव निज नाउँ ॥
 सुनत द्वारका नाम तिहि, लियो विरह उर छाया ।
 हा नँद-नंदन कन्त कहि, गयो ग्वाल मुरभाय ॥

चौपाई

इक गोपाल संग मम जाई । वस्यो नृपति है सोइ पुर छाई ॥

हम कहें छौंदि मयो सो न्यारे । ताही विनु सब मये दुखारे ॥
 तुम लशकरिये मूप उदारा । कत पूडत हम जात गवारा ॥
 सुनि यादव कछु मन विहँसाना । तुम ब्रजवामी हौ हम जाना ॥
 जिनको तुम भापत गोपाला । उनहीं को यह कटक रिमाना ॥
 अब दुग्य भेटहु भेटहु तिनत । गयो ग्वाल हरि-कटकदि सुनते ॥
 तिनकहँ आगम सगुन न्नायो । कछु अनद है है मन आयो ॥
 ग्वालहि आवत रहे निहारा । गद्गद् कठ न सकत सँभारो ॥
 दूरहि ते बाल्यो गोपाला । मनमोहन आये नँदनाला ॥
 जिन विन सब ब्रज मये दुखारे । त आये इहँ प्रान-पियारे ॥
 सुनि गापिन नहिँ परत पत्यारो । कहँ ऐमो है पुण्य इमारो ॥
 सुनत नद-नैनन चल छाये । ऐसे भाग कहाँ हम पाये ॥
 लोग लोग सब पूडत मारे । कहँ उतर प्राणन के प्यारे ॥
 सुनतहिँ यगुमति ह गई बौरा । ता ग्वालहिँ पूडत बठि दौरा ॥
 आये श्याम सत्य कहु भैया । मोहिँ दिखावहु नेक कन्दैया ॥
 निन लालन को कठ लगाऊँ । दुसह विरह को ताप नमाऊँ ॥
 कह अब गहरु करत बेकानहि । भेटहु बेगि सकल ब्रजराजहि ॥
 तव ऐसे भाष्यो नँदराड । अब हरि शौहिँ न ब्रज का नाई ॥
 मरिण स्वचित बैठत मिहासन । चँबर छत्र कर गये स्वनामन ॥
 अतिदि भार नृप वास न पावें । द्वागहिँ त बहु फिरि फिरि जावें ॥
 छत्रपतिहिँ छरियन बिलगावत । तहँ हमसब की कौन चलावत ॥
 छपन कोटि यदु छाहिँ सगाते । क्यों मानै धायन के नात ॥

कोउ कह ऐसे कैसे जैहैं । हमकहु लखि हरिमनहिं लजैहैं ॥
 कोउ कह मणि आभूषण पहिरे । अवर वर विचित्र रँग गहिरे ॥
 कोउ कह हम तो ऐसहिं जाहीं । अब तो कछु वनिआवत नाहीं ॥
 हरि को देखि परम सुख पैहैं । ता अनुचर कर मारहु खैहैं ॥
 कोउ कह हम नीके भुज परिहैं । भे राजा तो का धौं करिहैं ॥
 करत मनोरथ कोउ मन माही । कोऊ खोज लेन उठि जाहीं ॥
 कहत परस्पर मुदित गुवाला । अब तो फिरि आये गोपाला ॥
 इक कह अब गोकुल लै जैहैं । हमते बहुरि जान कहँ पैहैं ॥
 कोउ नाचत है दै कर तारी । बहुविधि करत कुलाहल भारी ॥
 एक एकन ते देत वधाई । मानहुँ सयन गई निधि पाई ॥

दोहा

भये मगन सब प्रेम रस, भूलि गए निज देह ।
 लघु दीरघ वै नारिनर, सुमिरत शमाम-सनेह ॥
 कहत परस्पर युवति मिलि, लै लै कर अँकवार ।
 प्रीतम आये का सखी, तन साजहु शृंगार ॥
 इक आई आनँद उमंगि, प्यारिहिं देत वधाय ।
 प्राणनाथ सुखदैन इहँ, मोहन उतरे आय ॥
 तहँ राधा की कछु दशा, वर्णत आवे नाहि ।
 मलिन वेश भूषण रहित, विवस रहित तन भाहि ॥
 कबहुँ सुरावत विरह-वश, पीत वरण है जाय ।
 कबहुँ व्यापत अरुणता, प्रेम-मगन मुद छाय ॥

कान्द् कान्द् कबडूँ कहत, कबडूँ रटत निज नाम ।
मौन साधि रहि जात जब, श्रमित होत अति बाम ॥
चक्ष चितवत जित तित हरी, श्रवण मुरलि धुनि-लीन ।
श्याम बास बसि नाक मणि, रूप पयोनिधि मीन ॥
तन मघ धन गृह जनन की, नकहु सुधि तिहिं नाहिं ।
चितवत काहू नहिं दगन, लगन लगी उर भाहिं ॥



प्रतापवाला

श्री प्रतापवाला का जन्म गुजरात अन्तर्गत जामनगर राज्य में संवत् १८६१ में हुआ। इनके पिता का नाम रिडमल जी था। इनका विवाह सवत् १६०८ में जोधपुर के महाराजा तख्त सिंह के साथ हुआ। इनके विवाह में इनके भाई जाम बीभा जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे।

महाराज तख्तसिंह के बहुत सी रानियाँ थी किन्तु इनका विशेष आदर होता था। क्योंकि ये बहुत सुशीला और बुद्धिमती थीं। अपने राज्य-काज के कामों में भी ये दिलचस्पी लेती थीं। इनकी दान-शीलता भी अत्यन्त सराहनीय थी। एक बार मारवाड़ में सम्बत् १६२५ में अकाल पड़ा। सैकड़ों लोग भूखों मरने लगे। जामसुता श्री प्रतापवाला जी की उदारता उसी समय प्रगट हुई। इन्होंने अपनी प्रजा के लिए लाखों रुपये का अन्न वितरण करवाया। राजपूताने की रिपोर्ट में लिखा है—“मारवाड़ में जब सवत् १६२५ में अकाल पड़ा तब अधिक दान देने की उदारता श्री जामसुता रानी प्रतापवाला ने दिखाया। वे प्रति ७ मन पका हुआ भोजन गरीबों को बाँटती थीं। उच्च और भले घर के लोगों के यहाँ वे स्वयं कितना ही मामान उनके घर पहुँचा दिया करती थीं।” इससे प्रगट होता है कि ये दान देने में भी अद्वितीय थीं। ये

कवियों का भी अधिक आदर करती थीं। मारवाड़ के अकाल में जो सहायता इन्होंने शरीरों को दी उससे सरकार में भी इनकी काफ़ी ख्याति हो गई। “प्रतापकुँवरि-ख्वावला’ के अंत में लिखा है —
 “बिनायत स जो खलीता आया था उसमें लिखा था कि जिस समय में माता अपनी सतान का पालन कर सकी उसी समय में महारानी जी ने प्रजा का पालन करके उसे अकाल मृत्यु से बचाया।’

संवत् १६२६ में महाराजा तज्रतसिंह का देहान्त हो गया। ये विधवा हो गई। इनके प्रथम पुत्र श्री० बहादुरसिंह महाराज तज्रतसिंह के बाद सिंहासन के अधिकारी हुए। यही प्रतापबाबा जी के जीवनाधार थे। किन्तु महाराज बहादुरसिंह जी भी अधिक मद्य व्यसनी होने के कारण संवत् १६३६ में स्वर्ग धाम विधार गये। इनके द्वितीय पुत्र का भी संवत् १६५८ में स्वर्गवाप हो गया। महारानी प्रतापबाबा जी इस समय बहुत दुःखी हुई क्योंकि इनके पुत्रों का असमय में ही देहान्त हो गया।

पति और पुत्रों के मृत्यु के परचान् इनका हृदय परोपकार की ओर मुक्त गया। ईश्वर की भक्ति भी इनके हृदय में बहुत बढ़ गई। इन्होंने अनेक स्थानों पर कितने ही ताबाब और कुँबे खुदवाये। एक-दशी और पूर्णिमा को साधुओं और ब्राह्मणों के लिये सदावर्त बँटवाया। कितने ही देव-मन्दिर बनवाये। मारवाड़ में भासापुर देवा का मन्दिर ‘राम ’) आदि कितने ही पुण्य के स्थान परिचय देते हैं।

जामसुता श्री प्रतापवाला भगवान कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। श्री मद्भागवत का पाठ इन्हें अत्यन्त प्रिय था। 'सूर-भागर' पढ़ते पढ़ते इन्हें कविता करने का शौक उत्पन्न हो गया था। वे भगवान कृष्ण के ध्यान में मग्न होकर बहुत से पद और स्तुति बनाया करती थीं। इनके बहुत से पद "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक में छपे हैं।

"प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक अच्छी है। इसमें प्रताप-वाला जी के सिवा और भी कई कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं। जोधपुर निवासी छगनीराय व्यास और श्याम कवि (जामनगर निवासी) की कवितायें उक्त पुस्तक में अधिक संग्रहीत हैं। प्रताप-वाला की कविता अच्छी है। इनकी कविता में राजपूताने की बोली भी आ गई है। कृष्ण-भक्ति की छटा इसमें अच्छी तरह झलकती है। इनका कविता-काल सवत् १६४० के लगभग माना जा सकता है। "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" में हम यहाँ कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं.—

१

वारी थारा मुखडारी श्याम सुजान ।

मन्द मन्द मुख हास्य विराजै कोटिक काम लजान ।

अनियारी अँखियाँ रसभीनी वाँकी भौंह कमान ॥

दाढ़िम दसन अधर अरुणारे वचन सुधा सुख-खान ।

जामसुता प्रभु सों कर जोरे मेरे जीवन-पान ॥

२

लगन म्हाँरी लागी चतुरमुज राम ।
 श्याम सनेही जीवन ये ही औरन सों का काम ।
 नैननिहारूँ पलन विसारूँ सुमिरूँ निसि दिनश्याम ॥
 हरि सुमिरन त सब दुख जाये मन पाये बिसराम ।
 तन मन धन न्योछावर कीजै कहत दुलारी जाम ॥

३

चतुरमुज मूलत श्याम हिंदोरे ।
 कचन खभ लगे मणि मानिक रेसम की रँग होरें ।
 समडि घुमडि धन वरसत चहुँदिसि नदिया लेत हिलारें ॥
 हरि हरि भूमि-लता लपटाई बोलत कोकिल मोरें ।
 वाजत वीन पखावज वसी गान होत चहुँ ओर ॥
 जाममुता छवि निरख अनोखी वारूँ काम किरोरें ।

४

प्रीतम हमारो प्यारो श्याम गिरधारी है ।
 मोहन अनाथ नाथ, सतन के डोलें साथ,
 वेद गुण गावे गाथ, गाकुल विहारी है ।
 कमल विसाल नैन, निपट रसोले धैन,
 दीनन को सुख-दैन, चारमुजा धारी है ॥
 केशव कृपा निधान, बाही सो
 तन न, जीवन

सुमिरूँ मैं साँफ़ भोर, बारवार हाथ जोर,
कहत प्रताप कौर, जाम की दुलारी है ॥

५

प्रीतम प्यारो चतुरभुज वारो री ।
हिय तें होत न न्यारो मेरे जीवन नन्ददुलारो री ।
जामसुता को है सुखकारो, साँचो श्याम हमारो री ॥

६

भजु मन नन्द-नन्दन गिरधारी ।
सुख-सागर करुणा को आगर भक्त-व्रद्धल वनवारी ।
मीरा, करमा, कुवरी, मवरी, तारी गौतम-नारी ॥
वेद पुरानन मे जस गायो, ध्याये होवत प्यारी ।
जामसुता को श्याम चतुरभुज लेगा खबर हमारी ॥

७

सखिरी चतुर श्यामसुन्दर सों,
मोरी लगन लगी री ।
लाख कहो अब एक न मानूँ,
उनके प्रीति पगी री ॥
जा दिन दरस भयो ता दिन तें,
दुविधा दूर भगी री ।
जामसुता कहे उर विच उनकी,
आती आन जगी री ॥

८

मो मन परी है यह बान ।

चतुरमुत्र के चरण परिहरि ना चहूँ कठु आन ॥
कमल नैन विसाल सुन्दर मन्द मुख मुसुकान ।
सुभग मुकुट मुहावनो सिर, लसे कुण्डल कान ॥
प्रगट भाल विसाल गजत, भौंह मनहुँ कमान ।
अग अग अनग की छवि, पीत पट फहरान ॥
कृष्ण-रूप अनूप को मैं, घरू निसि दिन ध्यान ।
जामसुत परताप के भुजवार जीवन प्राण ॥❀



❀ देवी जी ने इस रचना में विशेष रूप से कृष्ण-काम्य की पद रचना-शैली का ही उपयोग किया है और मञ्जभाषा का वक्ष्जा रूप दिया है ।

बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि

श्रीमती बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि जी रीवां के विख्यात महाराजा रघुराज सिंह जी की सुपुत्री थी। महाराजा रघुराज सिंह हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, अनेकों कवियों के आश्रय-दाता और वेष्णव भक्त थे। आपका जन्म संवत् १६०३ में और विवाह संवत् १६२१ में जोधपुर के महाराजा श्री जसवतसिंह जी के छोटे भाई श्री किशोरसिंह जी से हुआ था। आप बड़ी भगवद्भक्त थीं। इनमें कविता करने की अच्छी प्रतिभा थी। ये अपना हस्ताक्षर 'दीनानाथ' के नाम से करती थीं। वैष्णवमतानुयायिनी थीं। इन्होंने दीनानाथ का एक मन्दिर जोधपुर में संवत् १६४७ वैशाख सुदी १० को बनवाया था। अकस्मात् सं० १६१५ में इनके पति श्री० किशोरसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। पति के परलोकवासी हो जाने पर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। उसी समय से ये कृष्ण-प्रेम के रँग में रंग गईं और कविता करने लगीं।

आपने दो ग्रंथों की रचना की है। १. श्रवध-विलास २. कृष्ण-विलास। तीसरा ग्रंथ भी इनका मिला है इसका नाम है राधा-रास-विलास। हमारे पास 'राधा-रास-विलास' और 'श्रवध-विलास' दोनों ग्रंथ मौजूद हैं। श्रवध-विलास दोहे और चौपैया छंदों में लिखा गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी का चरित्र-वर्णन किया गया है। 'राधा-

रास विखास' में शय-पद्य दोनों लिखा गया है। ग्रंथों को देखने से मालूम होता है कि इनकी कविता सुन्दर, भगवद्भक्ति से परिपूर्ण होती थी। कानपुर से प्रकाशित होने वाले पुराने पत्र 'रसिक-मित्र' में इनकी कवितायें प्रायः छपा करती थीं। हम इनके कुछ पद्य उद्धृत करते हैं —

१

आये प्रागराज में प्रभुवर, मुनिन कोन्ध परनामा ।
चित्रकूट में फेर विराजे, निरख अनेक सुनामा ॥
यन में वसे प्रभू लखिमन सँग, कैसा था वह देना ।
तहाँ सुपनया आई छलकूँ, सुन्दर निरख रमेसा ।
आई कही राम को ओरा, भूल गई मन मोरा ॥
रहूँ तुम्हारे घर में प्यारे, सुनो अबध चित्र चोरा ।
हूँसे प्रभू सीता को लप के, बोले बैन गँभीरा ।
हमारे नारी बड़ी सुन्दरी, जाओ लखिमन ओरा ॥
जाके नारि नहीं है वाके, जाय घरे तुम रहहू ।
कुँवर बड़ो है रसिक लाडिली, मुदित मना हो रहहू ॥
चली सुपनया लखिमन ओरा, कहे बचन मुसुकाई ।
रासो हमसो नारि ! सुन्दरा, हिल हिल रहा सदाई ॥

बालि प्रसंग—

घर तें सुकड़ि बालि तय आवा, नारि पकड़ समुझाई ।

मीच विवस नहिं सुनी वात वह, चला लड़न को धाई॥
 परा विकल महि सर के लागे, सर साधे रघुनाथा ।
 पुनि उठि वैठ देखि प्रभु आगे, गहे धनुष सर हाथा[†] ॥
 धर्म हेत अवतरेहु जगत मे, क्यो मोहि मारेउ नाथा ।
 समदरसी सब कहैं तुमहिं तौ, बड़ी तुम्हारी गाथा ॥
 प्रभु समुझाय गती दै ताको, कै सुग्रीव को राजा ।
 अगद को युवराज बनायो, विपिन बीच सुख-साजा ।
 आई वर्षा ऋतु वरनन कर, आगे कपिन समाजा ॥
 जामवंत नल-नील भालु वानर, सब साजे साजा ।
 दै वीरा हनुमान पठाये, सीता खोज कराई ॥
 चारो दिशि जाओ सब कोई, यूथ अनेक सजाई ।
 ह्यां रावन निसिचरो संग लै, त्रास दिखावहि जाई ।
 अति लघुरूप केसरी-नंदन, धरा कथा बतलाई ॥
 फेर मुद्रिका सिय को दीन्हों, वरनन गुन तव लागा ।

॥ परा विकल महि सर के लागे ।

पुनि उठि वैठि देखि प्रभु आगे ॥

—तुलसीदास

† तुलसी-कृत रामायण के इसी प्रसंग की चौपाइयों से मिलाइये और देखिये कि देवी जी ने अपने कान्य को उस पर कितना आधारित किया है ।

सुनतै मन में मोद समायो, सीता को दुःख भागा ॥
 राम-दूत में मातु जानकी, सत्य शपथ करुना की ।
 यह मुद्रिका दियो सहदानी, वरन अनूपम या की ॥
 सीता वर कूँ दियो भयो, गद्गद् भे हनुमत बोरा ।
 बड़ो सरार निदाय सिया को, खाये फल बन तीरा ॥
 रावन भेज्यो मेघनाद कूँ, कपिन बाँध लै आऊ ।
 गम काज हित आप वैधाये, दुःख पायो कपिराऊ ॥
 ('अवध विलाम' से)

२

निरमोही कैसे जिय तरसावै ।
 पहले मलक दिराय हमै कूँ अब क्यों वेग न आवै ॥
 कब सों तलफ्त में री सजनी वाको दरद न आवै ।
 निष्पुण्ड्रि दिल में आकर क णसा पीर मिटावै ॥ॐ

३

रूप परस्पर दोऊ लुभान ।
 नैन वैन सत्र म हिं रहे हैं सब हैं हाथ निकाने ।
 अधिक पिया प्यारा क छत्रि पर करत न कटु अनुमाने ॥

ॐ मालूम होता है कि आपन यह काव्य जोधपुरी हा मं लिखा था ।
 क्योंकि आपका बुढ़ा भाग में जोधपुरी भाग का भी कुछ प्रभाव
 प्रतीत होता है ।

प्रिया हलस प्रीतम-अंग लागे बहुत उचक ललचाने ।
विष्णुकुँवरि सखियों सत्र बोलीं मन मेरो उँमगाने ॥

४

नैन कू प्यारे करि राख्यो श्याम ।
प्यारी के वारने जाउ मैं नैन सों मेरो काम ।
प्रजसुन्दरी कहौ मेरी मानो प्राण ते प्यारी वाम ॥
छैल की प्यारी सुना राधेरानी तुम्हे देख नहिं काम ।
विष्णुकुँवरि रीझो पिय बोली छोड़ नैन कू नाम ॥

५

जमुना तट रग की कीच बही ।
प्यारे जी के प्रेम लुभानी आनंद रग सुरंग चही ॥
फूलन-द्वार गुथे सब सानी युगल मदन-आनन्द लही ।
तन मन सुन्दरि भरमति विहवल विष्णुकुँवरि है लेत सही ॥

६

श्याम सों होरी खेलन आई ।
रँग गुलाल की झोरि लिए सब नवला सज-सज आई ।
वाके नैन चपल चल रीझै प्रियतम पै टकटकी लगाई ॥
होडा-होड़ी देखा-देखी होरी की रँग छाई ।
उतै सखन सँग आय विराजे सुन्दर त्रिभुवनराई ॥
इतै सखिन सँग होरी खेलन राधे जू चलि आई ।
बारंबार अत्रीर उडावै डार कृष्ण-अँग धाई ॥

दाऊ जी पिचकारि चलावै सुदरि मारि हटाई ।
 मधुर मधुर मुसुकात जाय परुडे हलधर को भाई ॥
 राधे जू के नगल बदन से साड़ी दय हटाई ।
 निरगि अनूपम होरी खेलन सबहीं हँसे ठठाई ॥
 विष्णुकुँवरि सपियॉ सन छोडो हलधर भे सुपदाई ।

७

वृन्दावन पावस छाया ।

चहुँ दिसि कारे अन्तर छाये नील मणी प्रिय मुग छायो ॥
 कोमल कूक सुमन कोमल के कालिन्दी कल कूल सुहायो ।
 विष्णुकुँवरि जग श्याम रँग छयो श्यामहि सिंधु समायो ॥

८

क्यों वृथा दोष पिय को लगावत ।

तों हित चद्रमुखी चातक वन परसन कूँ नित चाहत ॥
 हैं बहु नारि रसीली ब्रज में वातो तुम कोइ चाहत ।
 तों हित वृन्दावन राधे सथ सपियन रास दिखावत ॥
 तेरो रूप हिये में भारत नित निरखत सुख पावत ।
 विष्णुकुँवरि तव राधे चरनन हाथ जोड सिर नावत ॥

९

अद्वै मत जाओ प्राणपियारे ।

तुम्हें देख मन भयो उमँग में मेरा चित्त चुरायो रे ॥

कहा कहुँ या छत्रि बलिहारी नैनन में ठहरायो रे ।
विष्णुकुँवारि पकड़ि चरनन कां बरवस हृदय लगायो रे ॥

१०

अन ही आये श्याम रे ।

मोह मन सब वाय प्यारो हो गईं दिन काम रे ।
बोल वंशी हरत मन है बार बार मुदाम रे ॥
बैठ अधरा पै गवीली लसत अनुपम वाम रे ।
श्याम के मुख सुभग सोभित विष्णु तन है छाम रे ॥

११

बाजैरी वँसुरिया मन-भावन की ।

तुम हो रसिक रसीली वंशी अति सुन्दर या मन की ।
या मुख ले वाको रस पीवे अँग अँग सुखमा तन की ॥
या मुख की मैं दासि चरन रज दोड सुख उपजावन की ।
शोभा निरखत सखी सवै मिलि विष्णुकुँवरि सुख पावन की ॥

१२

छोड़ि कुल कानि और आनि गुरु लोगन की ,
जीवन सु एक निज जाति हित मानी है ।
दरस उपासी प्रेम-रस की पियासी वाके,
पद की सुदासी दया-दीठि की बिकानी है ॥
श्रीमुख-मयंक की चकोरी ये सुखोरी बीच,
ब्रज की फिरत है है भोरी दुखसानी है ।

जिन्हें अतिमानी चण पूतरी सी जानी,
हम सों त रारि ठानी अब कूवरा मिठानी है ॥

१३

सुंदर सुरग अग अग पै अनग वारो,
जाके पद पकज में पकज दुखारो है । ❀
पीत पटवारो मुख मुरली सँवारो प्यारो,
कुण्डल मलक मुख मोर पख धारो है ॥
कोटिन सुधाकर की सुप्रभा सुहात जाके,
मुख मों लुभाती रमा रभा सी हजारो है ।
नद को दुलारो श्री यशोदा को पियारो,
जौन भक्त सुख साध सो हमारा रखवारो है ॥
('राधा रास विलास' से ।)

❀ सुन्दर सुरग रग आभित अनग-अग
अग अग फैलत तरग परिमल के ।

रत्नकुँवरि बाई

महारानी रत्नकुँवरि बाई जी जाखन के ठाकुर लक्ष्मणसिंह की सुपुत्री थी। इनका विवाह १५ वर्ष की अवस्था में ईडर (शेखावत) के महाराज प्रतापसिंह के साथ हुआ। इनका विवाह इनकी फूफी श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी ने किया था।

श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी कृष्ण-भक्त और ऊँचे दर्जे की कवियित्री हो गई है। उन्हें कविता से भी बड़ा प्रेम था। रत्नकुँवरि बाई जी भी उन्हीं की सगति से कविता करना सीख गई थीं। ये भी कृष्ण-भक्ति और भगवन्-वर्चा में ही अपना समय बिताने का उद्योग करती थी। इन्होंने कुछ कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी रचनायें भी रची हैं; जिनमें से कुछ नीचे लिखी जाती हैं.—

१

सियावर तेरी सूरत पै हूँ वारी रे।

सोस-मुकुट की लटक मनोहर मजु लगत है प्यारी रे ॥

वा छवि निरखन को मो नैना जोवत वाट तिहारी रे।

रत्नकुँवरि कहे मो ढिग आके झलक दिखा धनुधारो रे ॥

२

मेरो मन मोह्यो रँगीले राम।

उनकी छवि निरखत ही मेरो बिसर गया सब काम।

आठों पहर हृदय बिच मेरे आन कियो निज घाम ॥
रतनकुँवरि कहै वाके पनपन ध्यान धरूँ नित साम ॥

३

रघुवर म्हॉरा रे मैकुँ दरस दिग्या जा रे ।
तो देखन की चाह घनी है टुक इक कलक दिग्या जा रे ॥
लाग रही तेरी केते दिन की मीठी बैन सुना जा रे ।
रतनकुँवरि तोसों यह विनता एक बेर ढिग आजा रे ॥

४

रघुवर प्यारो रे ।

दसरथराज दुलारो रे ॥

सीस मुकुट पर छत्र विराजत कानन कुँडलवारो रे ।
वॉकी अदा दिग्याय रसीली मोह लियो मन म्हॉरी रे ॥
रतनकुँवरि कहै राम रँगिलो रूप गुनन आगारो रे ॥

५

यारी हूँ जी म्हॉरा प्यारा राम, कीजा म्हॉन्ू दिलदाड़ी बात ।
मिच विद्रुडण नहि कीनै माँवरा, राखा ची चरणारी साथ ॥
ध्यान धरूँ हृदय बिच तुमको याद करूँ दिन रात ।
रतनकुँवरि पर महर करो अच, निज कर पकरो हाथ ॥

चंद्रकला वाई

चंद्रकला वाई का जन्म वूँदी राज्य में हुआ था। कविराज गुलाबसिंह जी वूँदी के प्रसिद्ध कवि और दीवान थे। चंद्रकला वाई गुलाबसिंह जी की दासी की पुत्री थी। इनका जन्म सं० १९२३ के लगभग और मृत्यु सन् १९६० और १९६५ के बीच में हुई थी। हमने इनकी जीवनी के लिए वूँदी के वर्तमान कविराज राव रामनाथसिंह जी से पूछताड़ की थी। राव रामनाथसिंह जी ने जो पत्र हमारे पास भेजा था उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

“सेवा में निवेदन है कि गोलोक-निवासी कविराज राव जी साहिब श्री गुलाबसिंह जी मेरे पिता थे। कुँवर माधवसिंह मेरा सन्पुत्र था। सन् १९६७ में इक्कीस वर्ष की अवस्था में अतकाल हो गया। चंद्रकला हमारे घर की दानी थी। बाल्यावस्था में ही विद्याभ्यास कराने से कविता करने में निपुण हो गई थी। उसका भी अंतकाल हो गया। धनमिति कार्तिक सुदी ७ स० १९८२।”

राव रामनाथसिंह

कविराज गुलाबसिंह जी स्वयं एक अच्छे कवि थे। चंद्रकला वाई जी ने उन्हीं की सख्तगति से कविता बनाना सीखा था। अंत में कविता करने में ये अत्यन्त निपुण हो गई थी। ये भारत के प्रसिद्ध कविमार्जों की ओर से निकलने वाली समस्याओं की पूर्तियाँ किया करती थीं।

काशी-कविमण्डल रसिक-मित्र, काव्य मुधार कवि और विश्वकार आदि पत्रों में इसको पूर्णियाँ प्रायः छपा जाती थीं। इनको अनेक कवि-सभाओं से मान पत्र और उपायिया भी मिली थीं। ३० जून सन् १८३८ ई० में गाव बिसवाँ जिना सोनापुर (अवध) के कवि मण्डल से 'वसुधारा' रत्न की पदवी भी मिली थी।

बाई जी बड़ी सहृदय थीं। इनका उस समय के कई कवियों से पत्र-व्यवहार भा था। मिसवा-कवि मण्डल ने इनको बहुत प्रोत्साहित किया था। प्रतापगढ़ (अवध) के अधीश्वर राजा प्रतापबहादुर सिंह के राजकवि बख्शेनग जिना सोनापुर निवासी प० बलदेवप्रसाद भवस्पी उपनाम द्विज बलदेव जी से भा इनका पत्र-व्यवहार था। द्विज बलदेव जी भी उस समय अनेक पत्रों में समस्या पूर्णियाँ किया करते थे। इनकी रचना पर खदबना गईं जी मुग्ध हो गईं थीं। एक बार उन्होंने एक पत्र द्विज बलदेव जी के पास भेजा और उनमें बूझी जाने के लिए अनुरोध किया। बाई जी ने उस पत्र के साथ बलदेव जी के पास एक कविता भी भिज भेजी थी वह इस प्रकार है —

दीन-दयाल दया कै मिलो,
 दरमे धिनु धीतत हैं समय सोचन।
 सुद्ध सतोगुण ही के सने त,
 विशकित सूल सनेह सकोचन ॥
 तोरि दियो तरु धीर कगार के,
 है सरिता मनो वारि विमोचन।

चंद्रकला के घने बलदेव जी,

वावरे से महा लालची-लोचन ॥

बलदेव जी के कई मित्रों ने उन्हें बूढ़ी जाने के लिए कहा किन्तु वे नहीं गये। उक्त कविता पर मुग्ध होकर बलदेव जी ने "चंद्रकला" नामक एक सुन्दर काव्य-पुस्तक की रचना कर डाली। इस पुस्तक के प्रायः प्रत्येक छंद में चंद्रकला शब्द का प्रयोग किया गया है। यह पुस्तक संवत् १६५३ में बनी है। इसमें २० पृष्ठ हैं। इस पुस्तक की दो-एक कवितायें इस प्रकार हैं :—

खुर्द घटै बड़ै राहु गसै विरही हियरे घने घाय घला है।

सौ तौ कलंकित त्यो विषवंधु निसाचर वारिज वारि बला है ॥

प्रेम-समुद्र बड़ै बलदेव के चित्त चकोर को चोप चला है।

काव्य-सुधा घरसै निकलंक उड़ै जससी तुही चंद्रकला है ॥

❀

❀

❀

कहा हैहै कछू नहिं जानि परै सब अंग अनंग सों जोरि जरे।

उतै बीथिन मै बलदेव अचानक दीठि प्रकाशक प्रेम परे ॥

हँसि कै गे अयान दया न दर्ई है सयान सबै हियरे के हरे।

चले कौन ये जात लिए मन मो सिर मोर की चंद्रकला को धरे ॥

इस प्रकार श्वस्त्री जी ने चंद्रकला वाई की प्रशंसा में बहुत उत्तमोत्तम कवितायें लिखी हैं। वाई जी दो एक बार बिसयों-कवि-म डल में भी आई थीं। वहाँ उनका बड़ा सम्मान और आदर हुआ था।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर-निवासी पं० मगलदीन

उपाध्याय से भा इनका पत्र व्यवहार था। चंद्रकला बाई जी ने एक वार उन्हें एक पत्र में यह छंद लिखा था —

बरस पच—दश की बय मेरी।

कवि गुलाब को हूँ मैं चेरी।

बानहिं तैं कवि सगति पाई।

ताते तुक जोरन मोहिं आई ॥

उस समय हिन्दो स सार में बाई जी की काफी शोहरत थी। एक बार विसर्वा-कविमंडल से प्रकाशित होने वाले 'काव्य-सुधाघर पत्र में 'चंद्रकला नाम की समस्या दी गई। अनेकों कवियों ने इसका पूर्ति बड़ी बढ़िया का थी। सर्वमान प्रसिद्ध महाकवि प० नाथूराम शंकर शर्मा की पूर्ति सबसे श्रेष्ठ थी। मिश्रव्युषा के बंदाई प० भैरवप्रसाद याज्ञपेयी 'विशाल कवि बने मज्ञाकापद् कवि थे। उन्होंने भी 'चंद्रकला' समस्या की पूर्ति की। कविदत्त जी काव्यसुगर' के सम्पादक थे।

विशाल जी ने दत्त जी को संबोधित करके कविता में एक प्रश्न किया। और चंद्रकला समस्या पर विशाल जी की पूर्ति इस प्रकार की — एक वास करै नित शम्भु के शीश पै दूजी है अम्बर में विमला। पुनि तीजी बघम्बर बूँदी के बीच है जो बलदेव की प्रेम पला। अर हाल विशाल' कृपा करिक कवि दत्त जी माको बताओ भला। इनमें विसर्वा कवि मंडल में यह कौन सी राजति चंद्रकला ॥

चंद्रकला बाई जी बनी अड़ी कविता करता था। इन्होंने कई ग्रंथ बनाये हैं। जिनमें ऋणा शतक रामचरित्र पदवी प्रकाश और

महोत्सव प्रकाश मुरय हैं । इनकी कविताओं को यदि हम समालोचना की कपौटी पर कसते हैं तो उतनी खरी नहीं उतरती जितनी की होनी चाहिए । तो भी रचना रुचिर और अच्छी जान पड़ती है । इस फर विसवाँ की कवि-मंडली ने इन्हें उसाह और उदावा देकर इनके नाम का महत्व बढ़ा दिया था । हमारे पास इनके १००० छंद विद्यमान हैं जो बहुत ही उत्तम और भाषा-भाव से परिपूर्ण हैं । हमारा विचार है कि चंद्रकला वाई जी की जीवनी और इनकी कविताओं का एक संग्रह अलग पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित किया जाय । हम वाई जी की कुछ कवितायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

घन हैं न कारे कारे भारे गजराज हैं री,
 वगुला न स्यन्दन समूहन की राजी है ।
 जुगुनू न सायुध चमकदार वीर ये हैं,
 चातक न बोलिया जकीवन ने साजी है ॥
 'चंद्रकला' चपला न चमक अग्निन की है,
 गरज न रोष भरी सेना घोर गाजी है ।
 मानिनि के मामन विदारिबे के दौरत हैं,
 धुरवा नही ये प्यारी सैन भूप बाजी है ॥

२

ऐहौ ब्रजराज कत बैठे हौ निजुंज मॉहि,
 कीन्हौ तुम मान ताकी सुधि कछु पाई है ।

ताते ब्रह्मभानुजा सिंगार साजि नीकि भौंति,
सखिथौ सयानी सग लय सुखदाई है ॥
'चद्रकला' लाल अबलोको और मारग की,
भारी भय दायिनी अपार भोर छाई है ।
रावरो गुमान अति बल अति भट मानि,
जोवन का फौज लैके मारिवे को घाई है ॥

३

नकौ एक केश को न समता सुकेशी लहै,
नैनन क आगे लगै कमल कमालची ।
तिल सी तिलोत्तमाहू रति हू रती सी लगै,
सनमुख ठाढ रहै लाल हित लालची ॥
'चद्रकला' दान आगे दीन कल्पवृक्ष लागै,
वैभव के आगे लगै सुरप कुदालची ।
घ-य घ-य राधे बृहभानु का दुलारी तोहि,
जाके रूप आगे लगे चद्रमा मसालची ॥

४

बैठे हैं गुपाल लाल प्यारा घर बालन में,
करत कलाल महा माद मन भरिगे ।
ताही समय आती राधिरा को दूरही तें दखि,
सौतिन के सकल गुमान जुन जरिगे ॥

‘चंद्रकला’ सारस से तिरछी चितौनिवारे,
 नैन अनियारे नैकु पी की ओर ढरिगे ।
 नेह नहे नायक के ऊपर ततच्छन ही,
 तीच्छन मनोभव के पाँचो बान मरिगे ॥

५

नख तें सिख लौं सब साजि सिँगार,
 छटा छवि की कहि जात नहीं ।
 सँग लाय अली न लली—
 ललचाय चली पिय पास महा उमही ॥
 कहि ‘चंद्रकला’ मग आवत ही,
 लखि दौरि तिया पिय बांह गही ।
 नहिं बोल सकी सरमाय लली
 हरषाय हिये मुसकाय चली ॥

६

बाजत ताल मृदंग उमंग उमंग भरी सखियाँ रँग बोरी ।
 साथ लिए पिचको कर माँहि फिरें चहुँघा भरि केवर घोरी ॥
 ‘चंद्रकला’ छिरकैं रँग अंगन आपस माँहि करै चित चोरी ।
 श्री वृषभानु महीपति-मंदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी ॥

७

बाल त्रियोग परी मुरमाय हुती थित आलिन मे सिर नाय के ।
 मोहन के गुनगान अपार बखानत ही सखियाँ भल भाय के ॥

‘चन्द्रकला’ तब ही प्रिय आगम आय कह्यो सखि ने समझाय के ।
 आवत दूरहिं ते लखि दौरि रही पिय क दिय सों लपटाय के ॥

८

जो अति दुलम दबन को तनु मानुष सो निज पुण्यन पावै ।
 इन्द्रिण के सुख में लय होय जु ईश्वर ओर न नेकु लखावै ॥
 ‘चन्द्रकला’ धिक है तिहिं जीवन नारि सुतादिक में मन लावै ।
 है मतिहोन प्रवीन बन्यो वह काच के लालच लाल गमावै ॥

९

कुसुम समूह खिन विटप लतान मोहि,
 सोई ताहि लागि रही भट बलबन्ध की ।
 पल्लव नवीन लिप कर विन म्यान असि,
 कोकिल अवाज ध्वनि दु-दुभी अनत की ॥
 ‘चन्द्रकला’ चारों ओर भँवर नकोव फिरै
 आला देखि दत ये दुहाई रति-कत की ।
 विन धनरयाम मोहि कदन करनवारी,
 जम की सवारी पुलवारी है यसन्त की ॥

१०

पावस की मात्रस की निसि अँप्रियारी मोहि,
 धरसत धारि की पुनारै फहराति है ।
 गरजत घोर धन चारों ओर जोर भरे,
 दमकत दामिनी विरोध दरसाति है ॥

‘चंद्रकला’ ताही।समै पाछे लाय राधिका की,
 गमने गुपाल मग पूरी छपि छाति है ।
 चंद्रमा तें चारि गुनो राधे-मुख चंद्रमा की,
 प्यारे ब्रजचंद्र पै उड्यारी चली जाति है ॥

११

राति कहौ रमि कै प्रभात प्रान-प्यारी पास,
 आये घनश्याम स्याम सारी धारि आन की ।
 अधर अनूप माँहि काजर की रेख धारि,
 लाल लाल लोचन पै लाली पांक-पान की ॥
 ‘चंद्रकला’ द्विकल कलाधर अनेक धरे,
 लखि उर गाढ़ बोली बेटी वृषभान की ।
 इन्द्रजाल ढाली गल घाली कौन वाल आज,
 आउन रसाल लाल माल मुकतान की ॥

१२

विन अपराध मनमोहन को दोष धामि,
 काहे मनमान धारि प्यारी दुख पावै है ।
 चलि री निकुंज माहि मिलि री पिया सो वेगि,
 मन बच काय लाय तो ही धरि ध्यावै है ॥
 ‘चन्द्रकला’ तेरे ही सनेह सने एक पाय,
 ठाढ़े है जमुन तीन पीर सरसावै है ।

लै लै नाम तेरो हो बचानै तोहिं प्रान प्यारी,
मुनि री गुपाल लाल बोंसुरी बजायै है ॥

१३

नटवर वैप साजि मदन लजाने लाल,
मन हरि लीनो हाल नारिन के जाल को ।
अमित स्वरूप धारि नरसिय सोभा सनी,
राख्यो गहि हाथ हाथ भिन्न भिन्न बाल को ॥
'चंद्रकला' गाय गीत भ्रमत सनेह सने,
बरनत नारदादि जस जनपाल को ।
सुमन समूह बरसावत विमान चढे,
देखि देखि देव रास-मण्डल गोपाल को ॥

१४

सीतहि लेहि महाधन देय कहौ हित राम रमेरा हरी है ।
जो नहिं मानहुगे मति मोर तु आपति भोंति अथाह भरी है ॥
'चंद्रकला' तुमही न कहूँ उन गलि महाबल मृत्यु करी है ।
रावण नारि कहै पिय सों सिय है विष-वेलि प्रचढ परी है ॥

१५

कपिनाथ महाजन घालि न साथ कदा कपिराज सुकठ सुभाती ।
दल धानर भालुन को सग लेय गये निरखी अति लफ कपाती ॥
कहि 'चंद्रकला' हनि रावन को बुलवाय लइ सिय ही हरपाती ।
सुमुखावत बाल पिनोद भरी जबही जब राम लगावत छाती ॥

१६

ध्यान धरै तुम्हरो निसिवासर नाम तुम्हार रटै बिसरै ना ।
गावत है गुन प्रेम-पगी मन जोवत है छिन दीठि टरै ना ॥
'चंद्रकला' वृषभानु-सुता अति छीन भई तन देखि परै ना ।
वेगि चलो न बिलंब करो अति व्याकुल है वह धोर धरै ना ॥

पहेलियाँ

१७

आधो दरजी और बजाज, राखत हैं अपने हित काज ।
आधो आवै जाके हाथ, रहैं सकल जन ताके साथ ॥
सगरो जाके सदन रहाय, महा प्रतापी पुरुष कहाय ।
है कारो दृढ़ कहौ विचारि, चंद्रकला नतु मानो हारि ॥

गजराज

१८

कारो है पै काग न होय, भारो है पै वैल न सोय ।
करे नाक सौं कर का कार, अर्थ करो कै मानो हार ॥

गज



जुगलप्रिया

बुंदेलखण्ड में ओरछा राज्य सदा से प्रसिद्ध चला आता है। इस राज्य में एक से एक वीर नीतिज्ञ और भगवद्भक्त नरेश हुए हैं। परमभक्त महाराज मधुकरशाह और उनकी रानी श्रीमती गनेसकुँवरि यहाँ हुईं। वीरपुंगव वीरसिंह देव इसी भूमि के राज थे। प्रातः स्मरणीय कुंवर हरदौल इसी आँगन में खेले थे। इस राज्य की धाक सारे देश में जमी थी। वीर केसरी छत्रसाल भी इसी वंश में जनमे थे। काज चक्र में पढ़कर इस राज्य को अपनी राजधानी, ओरछा से हटाकर, टीकमगढ़ में स्थापित करनी पड़ा। यहाँ के वर्तमान नरेश श्रीमान् महेन्द्र महाराज प्रतापसिंह जू देव बहादुर हैं। यही श्रीमती कमल कुमारी देवी के पिता हैं। श्रीमती जी का माता रानी वृषभानु कुवरि देवी भक्त-ससार में काफ़ी प्रसिद्ध हैं। अयोध्या में सुविख्यात कनक-भवन आप ही का बनवाया हुआ है।

श्रीमतीजी का जन्म लगभग स. १३२८ में हुआ था। आप अपनी माता की पहली ही सतान थीं। माता-पिता का आप पर अगाध स्नेह था। आपके पिता तो आप को काल्पल्य-स्नेह-वश "भैया" कह कर पुकारा करते थे। जिस दिन आप का प्रादुर्भाव हुआ कहते हैं उसी दिन से टीकमगढ़ राज्य में दिन दूनी रात चौगुनी समृद्धि होने लगी। आपकी माता एक आदर्श भक्त थीं। उनका सम्बन्ध

वैष्णव संप्रदाय से था। श्रीसीताराम जी के नाम और ध्यान में वे आठ पहर दूबी रहती थीं। उन्होंने यही शिक्षा अपनी पुत्री को देने आरम्भ की। नित्य प्रातःकाल रामनाम की पाँच मात्राएँ जप लेने के बाद इन्हें कलेवा मिला करता था। एकादशी का व्रत भी आठ ही वर्ष की अवस्था से रखना शुरू कर दिया था। आपके पिता जी तो प्रायः अपनी धर्मपत्नी से ताना मार कर कहा करते थे कि 'क्या बेटी को भी अपनी ही तरह 'वैरागिन' बनाना चाहती हो?'

छतरपुर राज्र के वर्तमान नरेश श्रीमान् विश्वनाथसिंह जू देव के साथ आपका पाणिग्रहण कराया गया। विवाह हो जाने पर भगवद्भक्ति की ओर से आप की रुचि कम नहीं हुई, प्रत्युत और भी बढ़ने लगी।

पहले आप अयोध्या में श्रीवैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हुई थी, किन्तु पीछे वृन्दावन में श्रीकृष्ण-लीला की अनुगामिनी हो गईं। एक प्रकार से तो आप का सम्बन्ध चारों संप्रदाय से था। यही नहीं, वरन् शंकर-संप्रदाय से भी आप सहानुभूति रखती थीं। तात्पर्य यह कि आप के उदार हृदय में सभी संप्रदायों के लिये प्रेमपूर्ण स्थान था। प्रत्येक संप्रदाय के सिद्धान्तों का आप ने इतना सूक्ष्म अनुशीलन किया था कि वाद-विवाद में अच्छे-अच्छे पंडितों को दाँतो तले उँगली दबानी पड़ती थी। कई लोग तो इन्हें चार संप्रदाय का 'महंत' कहा करते थे।

नित्य प्रातःकाल चार बजे मंगलमूर्ति जनार्दन का ध्यान करती हुई आप उठा करती थीं। नित्य-कर्म के बाद संभ्यापूजा पर बैठ जाती

थीं। सात घंटे के लगभग आप भगवत्सेवा में संलग्न रहती थीं। भोजन बिल्कुल साधारण था। अंतिम सान वर्ष से फलाहार करती थीं। भोजनानन्तर धार्मिक पुस्तकों का अथलोकन अथवा किमी मत के साथ सत्संग हाता था। इसके बाद घंटा आध घंटा राज्य-सम्बन्धी व्यवहारिक बातचीत भी कर लेती थीं। सप्या स ११० बजे तक फिर वही भगवत्सेवा, हरिकीर्तन या सत्संग हुआ करता था। निद्रा अधिक से अधिक चार घंटे की थी। यही आप की दिनचर्या थी।

आपके जीवन के अधिकांश दिन प्रायः तीर्थांगन में ही बीते। कामदनाथ, गोवर्द्धन वेंकगढ़ि महाचल घाटि बीहड़ और कृष्णाकीर्ण पर्वतों की परिक्रमा आपने कई बार पैदल की थी। गरमी-ज्वरा, घूप वर्षा भूल प्यास आदि पर आप का पूरा अधिकार था। प्रत्येक एकादशी मत निर्जला ही करता थीं। स्वयं तो अत्यन्त साधारण भोजन करती थीं, पर दूसरों का बड़े प्रेम से नाना प्रकार की चीजें बना बना कर खिलाया करता थीं। बालकों के खिलाने समय ता आप का मातृस्नेह देखते ही बनता था।

हु संपूर्ण जीवन रहते हुए भी धार्मिक उत्सवों को आप बड़े ही आनन्द से मनाया करती थीं। प्राचीन महात्माओं की बानियाँ आप को कंगम थीं। किसी किमी पन् के बहते समय तो आप भाव में डूब जाती थीं और नेत्रों से प्रेमाम्बु धारा बहने लगती थी।

आपका स्वभाव बड़ा ही सरल प्रेममय और गभीर था। तितिक्षा की तो मूर्ति ही थीं। परनिन्दा और असत्य से बहुत बचती थीं।

सादगी इतनी थी कि देख कर आश्चर्य होता था। यद्यपि तपस्या के कारण शरीर एकदम कृश हो गया था, मानसिक वेदनाओं के मारे हृदय छिन्न-भिन्न सा रहता था और राजसी भी सदा के लिये ठुकरा दी थी, फिर भी मुखमण्डल पर एक अपूर्व ब्रह्मतेज झलकता था, भजन का प्रताप प्रत्यक्ष दिखाई देता था। दूसरों का दुख तो आप पल भर भी नहीं देख सकती थीं। परोपकार और भगवद्भजन आप के दो अपूर्व आदर्श थे। आजन्म परोपकार और भगवद्भजन करती हुईं सं० १९७८ वि० चैत्र शुक्ला ७ की रात्रि को, टीकमगढ़ में, आप गोलोक सिधार गयीं।

हिन्दी के मर्मज्ञ श्रीयुक्त वियोगीहरिजी आप के शिष्य हैं। श्रीमतीजी कभी कभी प्रेमावेश में जो पद लिखा करती थीं, उनका संग्रह श्री वियोगी हरि जी ने पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया है। श्रीमती जी अपने पदों में 'जुगलप्रिया' की छाप देती थीं। अतएव उस संग्रह का नाम 'जुगलप्रिया-पदावली' रखा गया है। हरी जी ने 'श्री गुरु पुष्पाञ्जलि' नामक एक पुस्तक भी आपके स्वर्गवास के अनंतर लिखी थी। आपके कुछ चुने पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

१

चरन चलौ श्रीवृन्दावन मग, जहँ मुनि अलि पिक कीर ।
 कर तुम करौ करम कृष्णार्पण, अहकार तजि धीर ॥
 मस्तक नवियौ हरि-भक्तन को, छाँड़ि कपट को चीर ।
 श्रवन सदा सुनियौ हरि जसरस, कथा भागवत हीर ॥

नैना तरसि तरसि जल ढरियो, पिय-भग जाय अघीर ।
 नासा तब लीं स्वाँसा मारियो, मुरति राखि पिय तीर ॥
 रसना चखियो महाप्रसादै, तजि विपया विप नीर ।
 सुधि बुधि बढे प्रेम चरनन, ज्यो वृष्णा बढे शरीर ॥
 चित्त चितेरे, लिखियो पियकी, मूरति हृदय-कुटीर ।
 इन्द्रिय मन तन भजौ श्याम कों, बढै निरह की पीर ।
 'जुगलप्रिया' आसा जिय धरियो, मिलि हैं श्री बलबीर ॥

२

नैन सलौने एजन भीन ।

बचल धारे अति अनियारे, मतवारे रमलीन ॥
 सेत स्याम रतनारे बाँके, कजरारे रँग भीन ।
 रेसम हारे ललित लज्जाले, ढीले प्रेम अधान ॥
 अलसोहैं तिरछोहैं भोहैं नागरि नारि नवीन ।
 'जुगलप्रिया' चितवनि में घायल होवै छिन छिन छीन ॥

३

साँवलिया की चेरी कहौ री ।

चाहे मारौ चहै जिवावौ जनम जनम नहिं टेक तजौ री ॥
 कर गहि लियो कहति हौं साची नहिं मानै तो तरी माँ री ।
 जो त्रिभुवन ऐश्वर्य्य लुभावै तिनको लौं हौं सो समुझौं री ॥
 'जुगलप्रिया' सुनि मेरी सजनी, प्रगट भई अब नाहिंन चोरी ।

४

दृग, तुम चपलता तजि देहु ।

गुञ्जरहु चरनारविन्दनि होय मधुप सनेहु ॥
 दसहुँ दिसि जित तित फिरहु किन सकल जग रस लेहु ।
 पै न मिलिहै अमित सुख कहूँ जो मिलै या गेहु ॥
 गहौ प्रीति प्रतीति दृढ़ ज्यो रटत चातक मेहु ।
 बनो चारु चकोर पिय मुख-बंद्र छवि रस एहु ॥

५

ब्रजमण्डल अमरत बरसैरी ।

जसुदा नंद गोप गोपिन को मुख सुहाग उँमगै सरसै री ॥
 बाढ़ी लहर अंग अंगन मे जमुना तीर नीर उछरै री ।
 बरसत कुसुम देव अंबर तें सुरतिय दरसन हित तरसै री ॥
 कदली वंदनवार बँधावें तोरन धुज सँथिया दरसै री ।
 हरद दूध दधि रोचन साजें मंगल-कलस देखि हरसै री ॥
 नाचें गाव रंग बढ़ावें जो जाके मन में भावै री ।
 सुभ सहनाई वजत रात दिन चहुँदिस आनँद घन छावै री ॥
 ठाढ़ी ढाढ़िन नाचि रिभावें जो चाहैगो सो पावै री ।
 पलना ललना भूल रही हैं जसुदा मंगल गुन गावै री ॥
 करै निछावर तन मन सरबस, जो नँद नंदन को जावै री ।
 'जुगलप्रिया' यह नंद महोत्सव दिन प्रति वा ब्रजमे होवै री ॥

६

राधाचरन की हूँ सरन ।

छत्र चक्र सुपद्म राजत सुफल मनसा करन ॥
 उर्ध्व रेखा जत्र घुजादुति सकल सोभा धरन ।
 वाम पद गद शक्ति कुडल मोन सुवरन वरन ॥
 अष्ट कोन सुवेदिका रथ प्रेम आनंद भरन ।
 कमल-पद के आसरे नित रहत राधा रमन ॥
 काम दुख सताप भजन विरह-सागर तरन ।
 कलित कोमल सुभग सीतल हरत जिय की जरन ॥
 जयति जय नन नागरी पद सकल भयभय हरन ।
 'जुगलप्यारी' नैन निरमल होत लख लख किरन ॥

७

जय श्री जमुने कल मल हारिनि ।

करु करुना प्रीतम की प्यारी भँवर तरग मनोहर धारिनि ॥
 पुलिन बेलि कुसुमित मोभित अति कचन चचरीक गुजारिनि ।
 विहरत जीव जतु पसु पक्षी स्याम रूप रस रग विहारिनि ॥
 जे जन मञ्जन करत विमल जल तिनको सब सुख मगल कारिनि ।
 'जुगलप्रिया' हूजै कृपालु अथ दीनै कृष्ण भक्ति अनपायिन ॥

८

नोर प्रिय लागै जमुना तेरो ।

जा दिन दरस परस ना पाऊँ विफल होय जिय मेरा ॥

नित्य नहाऊँ तब सुख पाऊँ होत अलिन सो मेरो ।
 'जुगलप्रिया' घट भरि कर लीन्हे रहै सदा चित्त चेतो ॥

९

भूलति हैं नागरि नागरनट ।

नव पावस सुख सरस सुहाई जमुना पुलिन सभा बंसीवट ।
 मुरली अति घनघोर सोर करि सप्त सुरन सो पूरि रही रट ॥
 प्यारी अंग सुरंग चूनरी सखि गन राजति धारि लाल पट ।
 प्यारे पीताम्बर तन धारैं सीस रहो पँचरँग पगिया डट ॥
 चितवत हँसत परस्पर दोऊ भूलत भुकत मोरि ग्रीवा चट ।
 भोका आवत कुंज दौर लौ भपकत चख लचकत केहरि कट ॥
 भूलत लूम बढ़ाय रसिक वर कुण्डल में उरभी स्यामल लट ।
 उरभे रहौ न सुरभौ कवहूँ 'जुगलप्रिय' बलि बोल उठी मट ॥

१०

वगुला-भक्तन सो डरिये री ।

इक पग ठाढ़े ध्यान धरत हैं दीन-मीन लो किमि बचिये री ।
 ऊपर तें उज्जल रँग दीखत हिए कपट हिंसक लखिये री ॥
 इनते दूरहि रहे भलाई निकट गये फदनि फँसिये री ।
 'जुगलप्रिया' मायावी पूरे भूलि न इन सँग पल बसिये री ॥

११

नाथ अनाथन की सब जानै ।

ठाढ़ी द्वार पुकार करति हौ सवन सुनत नहिं कहा रिसानै ॥

की बहु खोट जानि जिय मेरी की कहु स्वारथ हित अरगानै ॥
 दीनबधु मनमा क दाता गुन औगुन कैधौं मन आनै ।
 आप एक हम पतित अनेकन यही देखि का मन सकुचानै ॥
 मूँठी अपना नाम धराये समझ रहे हैं हमहिं सयानै ।
 तजा टेक मनमाहन मेरे 'जगलप्रिया' दीजै रस दानै ॥

१२

मन तुम मलिनता तजि देहु ।

सरन गहु गाविन्द की अब करत कासा नेहु ॥
 कौन अपने आप का के परे माथा सेहु ।
 आज दिन लौं कहा पायो कहा पैही खेहु ॥
 विपिन वृन्दा बास करु जो सब सुगनि को गेहु ।
 नाम मुख में ध्यान हिय में नैन दरसन लेहु ॥
 छाडि कपट कलक जग में सार सौंचो एहु ।
 'जुगलप्रिय' धन चित्त चातक स्याम स्योती येहु ॥

१३

नैन मोहन रूप छके री ।

सेत स्याम रतनारे प्यारे ललित सलोने रग रंगे री ॥
 बाँकी चितवनि चबल तारे मनो कज पै खज अरे री ।
 'जुगलप्रिया' जाके दर भाये अधिक बावरे सोइ भये री ॥

१४

'जुगल-ध्रुवि' कब नैनन में आवै ।

मोर मुकुट की लटक चन्द्रिका सटकारी लट भावै ॥
 गर गुंजा गजरा फूलन के फूल से वैन सुनावै ।
 नील दुकूल पीत पट भूषण मनभावन दरसावै ॥
 कटि किंकिनि कंकन कर कमलनि कनित मधुर धुन छावै ।
 'जुगलप्रिया' पद-पदुम परसि कै अनत नहीं सच पावै ॥

१५

माई मोको जुगल नाम निधि भाई ।
 सुख संपदा जगत की भूठी आई सग न जाई ॥
 लोभी को धन काम न आवै अंत काल दुखदाई ।
 जो जोरे धन अधम करम तें सर्वस चलै नसाई ॥
 कुल के धरम कहा लै कीजै भक्ति न मन मे आई ।
 'जुगलप्रिया' सब तजौ भजौ हरि चरन कमल मन लाई ॥

१६

सखी मेरी नैननि नींद दुरी ।
 पिय सों नहिं मेरो बस कछु री ॥
 तलफि तलफि यो ही निसि वीतति नीर बिना मछुरी ॥
 उड़ि उड़ि जात प्रान-पछी तहँ बजत जहाँ वसुरी ।
 'जुगलप्रिय' पिया कैसे पाऊँ प्रगट सुप्रीति जुरी ॥

१७

वृन्दावन-रस काहि न भावै ।
 विटप बल्लारी हरी हरी न्यो गिरिवर जमुना क्यों न सुहावै ॥

खग मृग पुज-कुज कुजनि में श्रीराधा वल्लभ गुन गावै ।
 पै हिंसक वचक रचक यह सुर सपने में लेस न पावै ॥
 धनि ब्रजरज धनि वृन्दावन धनि रमिक अनन्य जुगल बपु ध्यावै ।
 'जुगलप्रिया' जीवन ब्रज साँचों नतरु वादि मृगजल को धावै ॥

१८

जय गगे जय तारन-तरनी ।

भवर तरंग उमगनि लहरी मजुल रेनु विमल बुधि करनी ॥
 पुलिन पुनीत मद मारुत बह निर्मल धार धवल छवि धरनी ।
 जेते जतु जीव जल थल नभ सवकी तीन ताप तम हरनी ॥
 हरि घरनार विन्द तें प्रगटा ब्रह्म कमण्डल सिर आ भरनी ।
 शकर सीम सौत गिरिजा की भागोरथ रथ की अनुचरनी ॥
 गिरिवर नगर प्राम बन वैधित प्रथल वेग वारिध वर धरनी ।
 दरस परस मञ्जन सुपान तें दूर होय दुख दारिद दरनी ॥
 मुलभ त्रिवर्ग स्वर्ग अपवर्गहु कामधेनु सुख सफल त्रिवरना ।
 जय श्री सुरसरि हरि रति दीजै 'जुगलप्रिया' की असरन सरनी ॥

१९

प्रीतम रूप दिखाय लुभावै ।

यातें जियरा अति अकुलावै ॥

जो कीजत सा सौ भल कीजत अथ काहै तरसावै ।
 सोखी कहौं निठुरता एती दीपक पीर न लावै ॥
 गिरि क भरत पतग जोति है ऐसेहु खेल सुहावै ।

सुन लीजै बे-दरद मोहना जिनि अब मोहिं सतावै ॥
 हमरी हाय बुरी या जग मे जिन विरहाग जरावै ।
 'जुगलप्रिया' मिलिबो अनमिलिबो एकहि भौंति लखावै ॥

२०

जय श्री तुलसी हरि की प्यारी ।
 पिय सिर सोहै अति छवि वारी ॥
 कोमल पत्र मंजुरी मजुल कमला प्रिया पुन्य व्रत धारी ।
 पूजत वदत दुख सब भाजै जहँ तहँ प्रगट प्रभा उजियारी ॥
 महिमा अमित तुम्हारी स्वामिनि नहिं जानै सनकादि पुरारी ।
 'जुगलप्रिया' को बन विहार मे देहु मिलाय श्याम गिरिधारी ॥

२१

यह तन इकदिन होय जु छारा ।
 नाम निशान न रहिहै रंचहु भूलि जायगो सब ससारा ।
 कालघरी पूजी जब हे है लगै न छिन छाँड़त भ्रम जारा ॥
 या साया-नटिनी के बस मे भूलि गयौ सुख-सिधु अपारा ।
 'जुगलप्रिया' अजहँ किन चेतत मिलिहँ प्रीतम प्यारा ॥

२२

जयति रसिकिनी राधिका जयति रसिक नँद-नद ।
 जयति चारु चंद्रावली जय वृन्दावन-चंद ॥
 जय ब्रज-रज जय जमुन-जल जय गिरिवर नँद-भ्राम ।
 बरसानो वृन्दाविपिन नित्य केलि के धाम ॥

जयति माध्व मत माधुरी जयति कृष्ण चैतन्य ।
 जयति सदा हरि वस हित व्यास सुरमिकानन्य ॥
 करो कृपा सव रसिक जन मों अनाथ पै आय ।
 दीजै मोहि मिलाय श्री राधावर जदुराय ॥
 नहिं घन की नहिं मान की नहिं विद्या की चाह ।
 'जुगलप्रिया' चाहै सदा जुगल स्वरूप अयाह ॥

२३

धीर धवीर न डारौ ।

अँखिया रूप रग रस छार्की इनकी ओर निहारौ ॥
 अतर होत जो अबलोकन कों हित की बात विचारौ ।
 'जुगलप्रिया' मन जीवन जी को जापट ओट उचारौ ॥

२४

बाँकी तरी बाल मुधितवनि बाँकी ।

जउहीं आवत जिहिं मारग हौ मुमक मुमक मुकि मोंकी ॥
 छिप छिप जात न आवत सन्मुख लखि लीनी छवि छाकी ।
 'जुगलप्रिया' तेरे छल बल तें हों सव हा विधि थाकी ॥

२५

मगल आरति प्रिय प्रीतम की ।
 मगल प्रीति रीति दोउन की ॥
 मगल कान्ति हँसनि दमनन की ।
 मगल मुरली धीना धुन की ॥

मङ्गल वनिक त्रिभगी हरि की ।
 मङ्गल सेवा सब सहचरि की ॥
 मङ्गल सिर चंद्रिका मुकुट की ।
 मङ्गल छवि नैननि मे अटकी ॥
 मङ्गल छटा फत्री अँग अँग की ।
 मङ्गल गौर श्याम रस रँग की ॥
 मङ्गल अति कटि पियरे पट की ।
 मङ्गल चितवनि नागर नट की ॥
 मङ्गल शोभा कमल नैन की ।
 मङ्गल माधुरि मृदुल वैन की ॥
 मङ्गल वृन्दावन मग अटकी ।
 मङ्गल क्रीडन जमुना तट की ॥
 मङ्गल चरन अरुन तरुवन की ।
 मङ्गल करनि भक्ति हरि जन की ॥
 मङ्गल 'जुगलप्रिया' भावन की ।
 मङ्गल श्री राधा जीवन की ॥



रामप्रिया

श्रीमती महारानी रघुराजकुँवरि उपनाम 'रामप्रिया' का जन्म लगभग स० १६४० में हुआ था। आप अरुण प्रदेश के अन्तगत स्थित जिब्बा प्रतापगढ़ के राजा सर प्रतापबहादुर सिंह सी० आई० ई० की रानी थीं। एक बार ये प्रतापगढ़ाघाश के साथ सप्तम एडवर्ड के तिलकापत्र के अग्रसर पर इंग्लैण्ड गई थीं। वहाँ आपने महारानी तथा मन्नाट से भेंट का थी। आप बड़ी विदुषी और खी शिक्षा की प्रेमिका थीं। आप छिपों की जहाँ कहीं सभा-सोसाइटी होती थी, उसमें आप भाग लेती थीं और उनकी सहायता भी करती थीं। आप राम-कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। आपने भक्तिरस की बड़ी सुन्दर सुन्दर कवितायें लिखी हैं। आपकी रचनाओं का एक संग्रह 'रामप्रिया विलास' के नाम से प्रकाशित हुआ है। अग्र पदने से यह पता चलता है कि आप बड़ी ही शांतिप्रिय और सुयोग्या थीं। तिथि त्योहारों में आप विशेष रूप से दान-पुण्य किया करती थीं। प्रतापगढ़ के लोग आज भी आप के पुराने गुणों का स्मरण किया करते हैं। आपका कविता सुन्दर मधुर और आनन्दप्रद हुई है। आपका स्वगवास संवत् १६७१ वैशाख मास में हुआ। आपका कविता के कुछ भ्रमूने नीचे दिये जाते हैं :—



स्वर्गाय रानी साहबा रामप्रिया (प्रतापगढ़)

१

सुख-चंद्र अभाव मे चंद्र लखें, अरविन्दन तें सुख नैन रही री ।
 द्विति देखि दिवाकर ध्यान धरूँ, छवि सीय बनो दृढ़ चित चही री ॥
 मुसुकाय के बंक विलोकत वै, हिय 'रामप्रिया' मे समाय रही री ।
 विधना दिन-रैन विचाख्यो करूँ, सुनु वे वतियाँ सपनेहु नही री ॥

२

गज एकहिं बार पुकार कख्यो, तव जाय पिया तेहि ग्राह गही री ।
 द्रुपदी के अकास निहारत ही, दुरजोधन की ममता न रही री ॥
 प्रह्लाद अजामिल गृद्ध लौं क्या, जहाँ दीन पुकाख्यो गयो तितहीं री।
 अब 'रामप्रिया' के पुकारिवे में, प्रभु वे वतियाँ सपनेहु नहीं री ॥

३

कहि 'रामप्रिया' गुण गावै जो राम के, छंद रचे जो हुलासन सों ।
 सुअलंकृत छंद विचाख्यो करै, नित बैठ्यो रहै दृढ़ आसन सों ॥
 फल चारिहु पावै विना श्रम के, भय ताहि कहा यम-पाशन सो ।
 फिर अंतहु स्वर्ग-पथान करें, कवि बैठ्यो विमान हुताशन सो ॥

४

जय जयति जय रघुवंश-भूषण, राम राजिवलोचनम् ।
 प्रैताप-खंडन जगत-मंडन, ध्यान गम्य अगोचरम् ॥
 अद्वैत अविनाशी अनदित, मोक्षदा अरि-गंजनम् ।
 तव शरण भव-निधि पार-दात्री, अन्य जगत विहम्बनम् ॥

दुःख दीन-दारिद्र्य के विदारक दयासिंधु कृपाकरम् ।
 त्व 'रामप्रिय' के राम जीवन-भूरि मंगल-मंगलम् ॥

५

जय जयति जय मिथिलेश-नदिनि, जयति जय जय दामिनी ।
 श्रवणी गगन्मण्डितकरि, जगदीश्वरी जल शायिनी ॥
 नित्या, निराधारी, निरूपा, निर्गुणा, नारायणी ।
 दुःख-नाशिनी, दीप्ता दया, सुख-सौख्य निर्मल दायिनी ॥
 माया, महालक्ष्मी, महाकाली, सुमुनि-भन श्यायिनी ।
 पुरुषा, परायण, पतिव्रत, प्रिय, पुरुष त्रास परायिनी ॥
 त्व 'रामप्रिय' राम प्रिया की, परम पद-की दायिनी ॥

६

जयति जय जयति श्री हनुमान ।

मुजदह चण्ड प्रचण्ड वारे स्वामि शैल समान ।
 नख वज्र अरुण प्रदीप्त तन बल बुद्धि भक्ति-निधान ॥
 नव उदधि मन खडन निशाचर दहन तरन गुमान ।
 'राम प्रिया' तव चरण चित्तधरि करत गुण-गान गान ॥

७

जोई जल व्यापक जहान को जननहार,
 जाको ध्यान केते जग-जाल सों निवटिगो ।
 जोई हत्यो दानव दिरताया नरसिंह-रूप,
 चदित दिगन्त सों दुहाइ देत हटिगो ॥

‘रामप्रिया’ सोई औध-महल को चित्र देखि,
 धाय घबराय मणि-खंभ सो लपटिगो ।
 जू जू कहिबो को तुतराय आय दू दू कहि,
 अतिहि सकाय माय अंक सो छपटिगो ॥

८

कहैं कोऊ दिनमणि दिवानिसि तेजवारो,
 नृप सुत जाये याते अति हरखाती है ।
 कोऊ कहैं मुदते दिवाकर न जैहैं कहूँ,
 हैहैं न विछोह याते हिय न सकाती है ॥
 ‘रामप्रिया’ भेरे जान जानत जरूर हैं ये,
 हेमराज गिरि ना रहेगे सुख पाती है ।
 दानी अवधेश दान देहैं द्विजराजन को,
 याही चक्रवाकी उड़ि उड़ि रहि जाती है ॥

९

नंगा अरधंगा शीश-नगा चंद्रभाल वारो,
 बैल पै सवार विष-भोजन कखो करै ।
 व्याल-मुंड-भाल प्रेम-डमरू त्रिशूल-धारी,
 महा विकराल चिता-भसम धखो करै ॥
 योग-रंग-रंगा चारु चाखत धतूर अंगा,
 अद्भुत कुटंगा देखि बालक डखो करै ।

‘रामप्रिया’ अजब तमासे चहु देखु देखु,
ऐसो एक योगी राम-पायन पखो करै ॥

१०

रघुकुल चद आज अनन्द ।
लखि वाटिका मन लेन वारी ,
मुदित माधव-मान-हारी,
ललित लतन लवग सयुत,
भ्रमत भ्रमर सुदग ॥ रघुकुल० ॥
लखि युगल राजकिशोर निरखत,
बहुरि सिय-तन देखि हरखत,
चलत चचल चचला सम,
सुभग वसन सुरग ॥ रघुकुल० ॥
लखि ‘रामप्रिय’ जोरी मनोहर,
मुदित मन हिय सों मनावै,
धनुष-खडन यज्ञ-भटन,
होहि दसरथनन्द ॥ रघुकुल० ॥

११

जब किर्किनि घुनि कान परी री ।
लख ललचाय लखन सों लालन हँसि यह बात कही री ।
मानहु मान महान महादल कै दुन्दुभि की सान चली री ॥

विश्व-विजय अब कीन्हो चाहत मम दृढ़ता लखि भाजि भली री ।
‘रामप्रिया’ के रामलला को आजु लली मन छीनि चली री ॥

१२

मृग-मन हारे मीन खंजन निहारि वारे,
प्यारे रत्नारे कजरारे अनियारे हैं ।
पैन सर धारे कारी भृकुटि धनुष-वारे,
सुठि सुकुमारे शोभा सुभग सुढारे हैं ॥
कैधों हैं जलज कारे कैधो ये त्रिगुण युक्त,
चंद्रमा पै चंचला के चपल सितारे हैं ।
‘रामप्रिया’ राम मन रमन अगारे कैधौ,
जनक-किशोरी बाँके लोचन तिहारे हैं ॥

१३

हरषित अंग भरे हृदय उमंग भरे,
रघुवर आयौ मुद चारो दिसि न्वै गयो ।
सुन्दर सलोने सुभ्र सुखद सिँहासन पै,
जनक सप्रेम जाय आसन जबै दयो ॥
‘रामप्रिया’ जानकी को देखत अनूप मुख,
पंकज कुमुद सम दूजे नृप द्वै गयो ।
मानो मणि-मंडित शिखर पै मयंक तापै,
मजु दिनकर प्रात प्राची सो उदय भयो ॥

१४

किसुक गुलाब कचनार औ अनारन के,
 विकसे प्रसून न मलिन्द छवि धावै रीछ ।
 बेला याग दीधिन बसत की बहारैं देखि,
 'रामप्रिया' सिया-राम सुख उपजावै री ॥
 जनक-किशोरी युग करतें गुलाल रोरी,
 कौन्हें बरजोरी प्यारे सुख पै लगावै री ।
 मानों रूप-सर ते निकसि अरविन्द युग,
 निकसि भयक मकरद घरि लावै री ॥

१५

जामा जेबदार ये बसन्ती कैधों श्रुतु सब,
 मजुकर कान्ति कैधों पकज सनाल की ।
 गावत धमार ताल कैधों कोकिला की कूक,
 प्यारी छवि चपकी वै दशरथ-लाल की ॥

❀ हिन्दी साहित्य में कवियों ने राधिका और कृष्ण की होली बहुत खिलवाई है किन्तु राम और साता का हाली नहीं खिलवाई गई । रानी साहबा ने राम और माना की भी हाली खिलवाई है । शायद यह राधा कृष्ण की होली का अनुकरण है । शैली नई है किन्तु राममठ वैष्णव सिद्धान्तानुसार ठीक नहीं है ।

‘रामप्रिया’ हिय हुलसावै कै लगावै रंग,
 प्रेम-मदमाती कै कै गई लाज बाल की ।
 कैधो पंचवाण निज पञ्चवाण माखो ताकि,
 कैधो पिचकारी मारी भरि के गुलाल की ॥

१६

तू न नवत सब तोहिं तजेंगे ।
 जा हित जग-जंजाल उठावत तोही छाँड़िं भजेंगे ॥
 जा कहँ करत पियार प्राण-सम जो तोहिं प्राण कहेंगे ।
 सोऊ तोकहँ जात देखि के देखे देह 'डरेंगे ॥
 देह मेह अरु नेह नाह तें नातो नहि निवहेगे ।
 जा बस है निज जन्म गँवावत कोऊ सँग न रहेंगे ॥
 कोऊ सुख जम-दुख-विहीन नहि नहिं कोउ संग करेंगे ।
 ‘रामप्रिया’ विनु रामलाल के भव-भय कोउ न हरेगे ॥

१७

मानु मानु मन मानु रे अब जनि करसि गुमान ।
 ‘रामप्रिया’ सब काम तजि रामचरित्र-बखान ॥
 ‘रामप्रिया’ रट राम को रहै रैन दिन लागि ।
 रातिहु दिन के रगर तें वृत्त तें उपजै आगि ॥
 ‘रामप्रिया’ की इस्तिजा सुनिये करुणासिधु ।
 माफ करो करतार प्रभु मेरे दीनावंधु ॥

१८

सिय मुग्धचद त्याग दूजो चद मद कह्यो,
कौन गुण जानि समता में अवलोक्यो मैं ।
मुख अकलकी सकलसी तू प्रसिद्ध जग,
काहि समझाऊँ कैसे वाको जाय रोको मैं ॥
दिवा द्यति हीन घन समय मलीन-खीन,
'रामप्रिया' जानै तोहि जन सब लोकों में ।
लली-भुष लालिमा गुलाल सा लखात जैसे,
तैसी दरसावो तो सराह्यो तव तोका मैं ॥

रणछोर कुँवरि

बाघेली श्री रणछोर कुँवरि जी का जन्म रीवा में लगभग संवत् १६४६ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमान् बलभद्रसिंह था। श्रीमान् बलभद्रसिंह जी रीवाँ के स्वर्गीय महाराजा श्रीमान् विश्वनाथसिंह जी के भाई थे। जब ये छोटी थीं, तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनके चचेरे भाई महाराजा रघुराजसिंह जी ने इनका विवाह संवत् १६६१ में जोधपुर के महाराजा श्रीमान् तखतसिंह जी के साथ कर दिया था। इनके पिता जी राधाकृष्ण के बड़े भक्त थे। इनके पास पिता की प्यारी एक पीतल की मूर्ति थी जिसे श्रीमती जी ने जोधपुर में एक मंदिर बनवा कर स्थापित करा दिया है। कहते हैं कि एक बार कृष्ण जी ने इन्हें स्वप्न दिखाया कि हमारी एक सुन्दर मूर्ति जयपुर से अमुक सुनार के मकान में है, तुम उसे मँगवा लो। इन्होंने उस मूर्ति को जयपुर से मँगवाई। ये अत तक बड़े प्रेम से उस मूर्ति की पूजा करती रहीं। आप बड़ी धर्मात्मा और स्वावलम्बिनी थीं। आपको भागवत से बड़ा प्रेम था। आप कृष्ण-प्रेम में रँग कर कविता भी लिखती थीं। इनकी कविता सरस और भक्तिपूर्ण होती थी। कुछ चुने हुए पदों के नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

१

गोविन्द तुम हमारे, दुग् राशि से उबारे ।
मैं सरन हूँ तिहारे, तुम काट-कटक टारे ॥

२

तुम प्रीतम हो प्यारे, सिर क्रीट मुकुट वारे ।
छोनी छटा पसारे, मोरी सुरत बिसारे ॥

३

कोटिन पतित उधारे, सब लग गए किनारे ।
मैं हूँ सरन तिहारे, विगड़ी दसा सुधारे ॥

४

गोविन्द के पास आओ मन में विचार लाओ,

पाप कट जाय जाय दरसन दाये ते ।

ध्यान लाओ मन में श्रवण में उसे रमाओ,

मन मिल जाय वाहि गुन गुन गाये ते ॥

गुरु के भजन प्यारे गोविन्द सुभाव ही से,

दिलहू में प्रेम बदे बाकी छवि छाये ते ।

चरन में सीस नाओ भगती में रम जाओ,

कलिहू के पार जाओ भक्ति उपनाये त ॥



गिरिराज कुँवरि

श्रीमती महारानी गिरिराज कुँवरि जी भरतपुर की राजमाता थीं ।

आपका जन्म लगभग संवत् १९२० और देहांत संवत् १९८० में हुआ । जहाँ आप समाज और राजनीति की ओर ध्यान देती थीं वहाँ आप में साहित्य-प्रेम भी अटूट था । श्रीमती जी ने सं० १९६१ में “श्री व्रजराज-विलास” के नाम का कविता-ग्रन्थ लिखा जो बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में छपा है । हिन्दी को भरतपुर राज्य में अच्छा पद मिलना श्रीमती जी की कृपा का ही फल है । आपने आयुर्वेद का प्रचार राज्य में किया है । स्त्री-शिक्षा की बड़ी सहायता करती थीं । समाज-सुधार को बहुत पसंद करती थीं । विवाह आदि अवसरो पर जो निर्लज्जता पूर्ण गारी आदि गाई जाती है, उनके स्थान पर सुन्दर-शिक्षा पूर्ण गाने गाया जाना आप अच्छा समझती थीं । “श्री व्रजराज-विलास” में श्रीमती जी ने ऐसे ही गीतों का संग्रह किया है । उक्त ग्रंथ की भूमिका में आप लिखती हैं —

“मैं इन पुस्तक में कविता नहीं दिखलाती, न मैं कविता जानती ही हूँ । दो बातों ने मुझको इन भजनों के लिखने की प्रेरणा की है । प्रथम श्री गोपाल जी की कृपा और दूसरे मैं देखती हूँ कि बहुधा यहाँ की स्त्रियों में लज्जित गान करने की रिवाज बढ़ती जाती है । बड़े शोक की बात है कि जिन बातों को अच्छे स्त्री-पुरुष सुनने से शरमाते हैं उन्हीं को

स्त्रियाँ— चिनका जज्ञा ही उत्तम भूषण है—पुकार पुकार और गा गा कर कहें । स्त्रियाँ पुरुषों के नाम ले ले कर थहाद पूवक ऐसे गात गाती है कि चिनका दृष्टान्त-रूप से भी हम यहाँ लिख नहीं सकतीं । समय श्रुतु के अनुसार अथवा उल्लवादिक् में मनोहर, पवित्र, उत्तम विषय-युक्त और मांगलिक गान करना स्त्रियों का धर्म है । इसाखिये गान विद्या भा खा का चौंसठ कन्ता में मुख्य मानी गई है । खा का सासारिक देव पति और पारमार्थिक धा गोपाल जा महाराज है । इहीं दो का प्रमन्न करन में इस विद्या में भा निपुण हाना चाहिये ।”

इसके आग श्रीमती जा लिखनी हैं —

‘आशा है कि हमारे देश का स्त्रियाँ निर्वज गीतों को त्याग उनकी जगह इन पदा को काम म लावेंगा । पुरुषों का भा उचित है कि सदा स्त्रियों को घुरी बान और घुरे गाने से रोकते रहें क्योंकि स्त्री कैसी भी होशियार और सम्य ह्य तो भी विना निगाह में रखने और उचित उपदेश किये अज्ञायमान हो जाती है ।”

श्रीमता जा स्त्रियों में विद्या प्रचार क साथ साथ उनमें गृह शिक्षा के प्रचार को अनिवार्य आर आवश्यक समझती थीं और इसीखिये आमती जी ने ‘पाक प्रकाश’ नामक पुस्तक भा लिखा थी जो एप चुकी है । यदि यह हम लोक में अक्ष तक होती ता इनका विचार स्त्रियों के उपयोगी प्रत्येक विषय पर पुस्तकें लिखने का था । कविता भा आप अक्षदा लिखनी थीं । आपके विचार परिमार्जित और सुन्दर है । हम आपके कुछ रचनायें नीचे उद्घृत करते हैं :—

१

हो प्यारी लागौ श्याम सुँदरिया ।

कर नवनीत नैन कजरारे, उँगरिन सोहै सुँदरिया ॥
 दो दो दशन अधर अरुणारे, बोलत बैन तुतरिया ।
 सोहै अंग चन्दनी कुरता, सिर पै केश विखरिया ॥
 गोल कपोल डिठोना माथे, भाल तिलक मन-हरिया ।
 घुटुअन चलत नवल तन मंडित, मुख मे मेलै उँगरिया ॥
 यह छवि देखि मगन सहतारी, लग नहिं जात नजरिया ।
 भूख लगी जब ठिनकन लागे, गहि मैया की चुँदरिया ॥
 जाको भेद वेद नहिं पावत, वाको खिलावै गुजरिया ।
 धन यशुमति धनि धनि ब्रजनायक, धनि धनि गोप नगरिया ॥

२

बंसी बज रही तनक तनक में, नथ मेरी टूट गई अगरे में ।
 मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, रोक लई डगरे में ॥
 दधि मेरो खाय मटुकिया फोरी, अरी वाके खपरा परे नरे में ।
 दुलरी तोर चुँदरी अटकी, अरी वाने डारी घाँह गरे में ॥
 अब ब्रजपति हँसि वात बनावै, डारत नोन जरे में ॥

३

जहाँ न आदर भाव न पइये, मनुआ वा घर कबहुँ न जइये ।
 टुकड़ा मलो मान को सूखो उलटो खीर न खइये ॥

मुण्डा आगे आदर करते, पीछे खाक उड़इये ।
 मुँह देखे पर भीठे भोले, पीछे ऐब लगइये ॥
 अपने मतलब हित दरसावै, काम परे इतरइये ।
 ऐसे मित्र कबहुँ नहिं कीजै, जासों जी पछवइये ॥
 गिरिराऊ धारन हैं स्वामी, जग में मोहिं बचइये ॥

४

मोर मुकट शिर पेच कलगी सजत मूमका कानन में ।
 नैन विशाल कुटिल भृङ्गुटी छवि छाव रही अति आनन में ॥
 तेज लसै मुख ऊपर जितनो इतनो नहिं शव भानन में ॥

५

अद्भुत रचाय दियो खेल, देखो अलवेली की बतियाँ ।
 कहुँ जल कहुँ थल गिरि कहुँ कहुँ धृत्त कहुँ वेल ॥
 कहुँ नाश दिखराय परत है कहुँ राय कहुँ मेल ।
 सब के भीतर सब के बाहर सब में करत कुलेल ॥
 अब क घट में आप विराजौ ज्या तिन भीतर तल ।
 श्री ब्रजराज तुही अलवेली सब में रेलापेल ॥

६

दरशन की लगे आस अब में कहों जाऊँ ॥
 महल तिवारे मोय न चाहिये, टूटी मुपरिया बास ।
 शाल-दुराला माय न चाहिये, फाटी कमरिया कास ॥

कुटुम-कवीले मोय न चाहिये, श्यामसुँदर सँग रास ।
कृष्णचन्द्र अब से मोय मिलिहैं, ये मन मैं है भास ॥

७

मन मिले की प्रीत महाराजा ।

यदुकुल के महाराज कहावत, करते नित अनीत महाराजा ॥
कुवजा नारि कंस का चेरी, वाते करो परतीत महाराजा ।
सोला सहस गोपिका त्यागी, छोड़ दयी कुल रीत महाराजा ॥
हमने हूँ हरि अब पहिचाने, हमहूँ रहेंगी सभीत महाराजा ।
लंकापति भगिनी मद-विह्वल, आई मिलन विनीत महाराजा ॥
कर अपमान कुरूपा कीनी, ज्यो खेती कूँ शीत महाराजा ।
कपटी कुटिल चतुर ब्रजनायक, तुमहूँ उनके मीत महाराजा ॥

८

कछु दीखत नहिं महाराज, अँधेरी तिहारे महलन में ॥
ऐजी ऊँचो सो महल सुहावनो, जाको शोभा कही न जाय ।
तूने इन महलन मे बैठ कै, सब बुध दी विसराय ॥
ऐजी नौ दरवाजे महल के, औ दशमी खिड़की बंद ।
ऐजी घोर अँधेरो है रह्यो, औ अस्त भये रवि-चंद ॥
हूँदत डोलै महल मैं रे, कहूँ न पायो पार ।
सतगुरु ने तारी दर्ई रे, खुल गये कपट-किवार ॥
कोटि भानु परकाश है रे, जगमग जा
बाहर भीतर एक सी रे, कृष्ण नाम फ

९

मो तन कौन अधम जग भाई ॥
सगरी उमर विषयन में रोई, हरि की सुधि बिसराई ।
मन भायो सोई त कीनो, जग में भई हँसाई ॥
कुल की कान वेद मर्यादा, यह सब धोय बहाई ।
सब ही जानू सब मुख भापूँ, चलतो नॉव चलाई ॥
जिनके सँग ते करै बिसासी, सॉप होय डस जाई ।
सब की बैठ के करूँ निन्दरा, अपनी लेत छिपाई ॥
काम-क्रोध मद लोभ मोह के, घेरे हुए सिपाई ।
इतने मोहि छुड़ाओ स्वामी, 'गिरिराज' है शरणाई ॥



श्रीमती हेमन्तकुमारो चौधरानो

हेमंतकुमारी चौधरानी

श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरानी का जन्म आश्विन संवत् १९२५ में लाहौर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम पंडित नवीनचंद्रराय था। बाबू नवीनचंद्रराय पंजाब-विश्व-विद्यालय के संस्थापक, सचालक, अनेक भाषाओं के पंडित, देशभक्त, और हिन्दी भाषा के पुराने सेवक थे। आप बंगाली होकर भी हिन्दी के चढ़े हितैषी थे। ६० वर्ष पूर्व जब पंजाब में उच्च शिक्षा का नाम निशान नहीं था, पंजाबी लोग उर्दू को ही अपनी मातृभाषा समझते थे, उस समय बाबू नवीनचंद्रराय जी शिक्षा-विस्तार करने के लिए पहले कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हुए। हिन्दी भाषा को पंजाब-विश्व-विद्यालय में पढ़ाये जाने के लिये उन्हें कितनी ही बार उर्दू-प्रेमी पंजाबी हिन्दुओं और मुसलमानों से घोर तर्क-वितर्क-युद्ध करना पड़ा। पंजाब में हिन्दी प्रचार का पहिला श्रेय पं० नवीनचंद्रराय जी को ही है। उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए पंजाब में एक कन्या विद्यालय की स्थापना की। कितनी ही हिन्दी-संस्कृत की पुस्तकें बालक-बालिकाओं के लिए प्रकाशित की। “ज्ञान-प्रदायिनी” नामक पत्रिका भी उन्होंने उस समय निकाली जो पंजाब में हिन्दी-प्रचार में सहायक हुई। उन्होंने ‘लक्ष्मी-सरस्वती-सवाद’ नामक पुस्तक रच कर अपनी गृहिणी और जेष्ठ पुत्री श्रीमती हेमंतकुमारी जी के हृदय में भी हिन्दी भाषा का अनुराग उत्पन्न किया।

श्रीमता हेम तजुमारी जी की शिक्षा के लिए उनके पिता ने घर पर ही शिक्षक नियुक्त किये। उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत की अंग्रेजी शिक्षा दी गई। वाक्यकाल से ही ये हिन्दी की ओर विशेष रुचि रखती थीं। ये अपने पिता के आदर्शों पर चलकर ज्ञान भी हिन्दी की सेवा में समर्पण हैं।

सन् १९४० में आसाम प्रान्त के सिलहट निवासी सुशिक्षित बाबू राजचन्द्र चौधरी के साथ इनका विवाह हुआ। पहले चौधरी जी सरकारी पद पर नियुक्त थे। इन्होंने सिलहट में कई विद्यालयों का स्थापना की है और स्वयं जब तक वहाँ रहे उनकी अत्यंतनिक सेवा करते रहे। श्रीमता हेम तजुमारा जी अपने पिता के साथ रह कर ता अनेक स्थानों में घूमती थीं किन्तु पति के साथ रह कर भी इन्हें बहुत से स्थानों में घूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक स्थानों के भ्रमण से इन्हें कितनी ही बातों का अनुभव प्राप्त हुआ।

आज से ४० वर्ष पहले जब ये अपने पिता और पति के साथ रत्नगाम राज्य में रहती थीं तब इन्होंने उम्र समय "सुगृहिणी" नाम की मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का इन्होंने ४, ५ वर्ष तक योग्यता पूर्वक सम्पादन किया। पत्रिका का उद्देश्य स्त्री शिक्षा और हिन्दी भाषा का प्रचार करना था। किन्तु जब इनके पति आसाम चले गये तो इन्हें भी वहाँ जाना पड़ा। इससे इस पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। इसके बाद जब ये श्रीहानगर में थीं तब इन्होंने वग भाषा में 'अत-पुर' नामक स्त्री शिक्षा सम्बन्धी पत्र का सम्पादन किया।

पिता और पति के साथ ये जहाँ जाती वहाँ ही स्त्रियों तथा हिन्दी की उन्नति के कामों में विशेष रूप से भाग लेती रहीं। जब ये शिलांग में थी तब वहाँ इन्होंने, महिला-समिति, महिला-पुस्तकालय और बालक-पालिकाओं के लिए विद्यालयों की स्थापना की थी जो आज तक चल रहे हैं। इन्होंने श्रीहट्टनगर में गवर्नमेंट की सहायता से एक उच्च कन्या-विद्यालय खुलवाया और कई वर्ष तक वहाँ स्वयं अवैतनिक रूप से सेवा करती रहीं। वहाँ इन्होंने एक महिला-सभा की भी स्थापना की जो आज भी वर्तमान है।

एक बार ये इतनी बीमार हुईं की दचने की भी आशा नहीं थी; किन्तु धारोग्य हो गईं। जिन दिनों ये बीमार थीं उन्ही दिनों में पटियाला राज्य में स्वर्वावासिनी विक्टोरिया की पवित्र स्मृति-रक्षार्थ एक उच्च कन्या-विद्यालय के स्थापना का उद्योग किया गया। इसी विद्यालय के संगठन करने के लिए हेमन्तकुमारी जी भी बुलाई गईं। किन्तु बीमारी के कारण उस समय वहाँ ये न जा सकी। २१ वर्ष बाद संवत् १९६३ में हेमन्तकुमारी जी पटियाला गईं और कन्या विद्यालय के संचालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। इस विद्यालय में लगभग ४०० लड़कियाँ पढ़ती हैं। यहाँ ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाती है। आज भी आप इसी विद्यालय की सेवा में लगी हैं। पंजाब में आकर हेमन्तकुमारी जी का हिन्दी-प्रेम फिर जागृत हुआ। इन्होंने यहाँ कई हिन्दी के स्कूल खुलवाये। पंजाब के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने आप को, हिन्दी-योग्यता से प्रसन्न

होकर 'पञ्जाब विश्व विद्यालय की 'प्रवेशिका' परीक्षा का हिन्दी परीषद नियुक्त किया।

चौधरानी जी ने हिन्दी भाषा में बहुत सी पुस्तकों की रचना की है। "आदर्श माता" "माता और कन्या" और "नारी पुष्पावली" आदि पुस्तकें बहुत उत्तम और ज्ञान प्रद हैं। इनकी भाषा विशुद्ध, सरल और मधुर है। बंगाल की स्त्रियों को हिन्दी-साहित्य से परिचित कराने के लिए उन्होंने— 'हिन्दी-बंगला-प्रथम शिष्या' नामक पुस्तक की रचना की है। अभी हाल ही में स्त्रियों के शिल्प ज्ञान सम्बन्ध एक सुन्दर "सचित्र नवीन शिल्प-माला" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक बड़ी उपादेय है। इसमें सैकड़ों चित्र हैं। चित्र विज्ञापन स मँगवा कर लगवाये गये हैं। स्त्रियों के बड़े काम की यह पुस्तक है।

श्रीमती हेम तकुमारी चौधरानी के ११ सन्ताने हैं। पाँच पुत्र और छ कन्या। सभी पुत्र धार कन्यायें उच्च शिक्षा प्राप्त और उँचे पद पर प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थी की देख-भाल, पुत्रों-कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध भी स्वयं करती हैं।

चौधरानी जी बग भाषा की अच्छी पढ़िता हैं। हिन्दी-कविता भी आप करती हैं। प्रायः हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के अधिवेशनों में भी सम्मिलित होती हैं। आपका हिन्दी भाषण जोरदार और विशुद्ध होता है। सोलहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर वृन्दावन में जो अखिल भारतीय अध्यापक-संघ संगठित हुआ था उसकी आप सभानेत्री बनाई गई थीं। आप बड़ी योग्य महिला हैं।

स्वभाव आपका सरल और नम्र है। आप हिन्दी में कविता भी करती हैं। यद्यपि आपने कान्य-सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी रचनायें अच्छी होती हैं। हम इनकी दो-एक रचनायें नीचे देते हैं :—

१

स्मरण

जिसके यश से सब पूरण है,
 यह विश्व चराचर व्याप्त अभी।
 जिसकी महिमा, प्रतिभा, गुरुता,
 लखते रहते हम लोग सभी ॥
 जल, पावक, चंद्र, रवी वर वायु,
 विमोहक हैं टलते न कभी।
 उससे वस प्रीति करो नर-नारि,
 सुजीवन-लाभ करोगे तभी ॥

२

स्तोत्रम्

जय जगदीश्वर देव दयाकर,
 सर्व गुणाकर विश्वविधे।
 प्रेम सुधाकर करुणा-सागर,
 मुवन मनोहर शान्ति निधे ॥
 जय भव-भंजन भक्त-सुरंजन,
 नित्य निरंजन विश्वपते।

पातकि-वारण्य पाप-निवारण्य,
 यम भय-वारण्य जीव गते ॥
 सत्य सनातन, पुरुष पुरातन,
 मुक्ति निकेतन, देव हरे ।
 जय नारायण, परम परायण,
 भीमभवाण्यव पार तरे ॥
 निश्छल, निर्मल, मूर्ति मनोहर,
 सकल सुमंगल देव करो ।
 जय जम शकर, शिव करुणाकर,
 विश्वम्भर दुख पाप हारो ॥

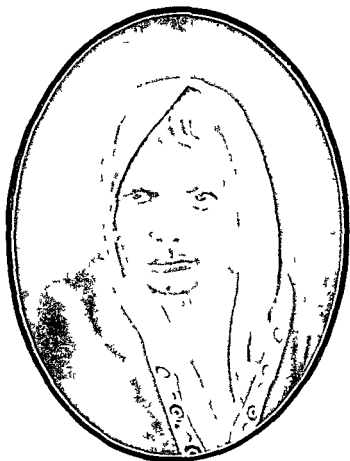
३

सगीत

भव तारण हे, तव नाम लिए ।
 नहिं दुःख रहे, मम प्राणपते ॥
 करुणाकर हे, निस्तार किये ।
 बहु पापि गने, अगतर-गत ॥
 जग-कारण हे, जगदीश हरे ।
 दिन रात मेरे, सत्र जात चल ॥
 हित नाहिं किये, निज के पर के ।
 तुव हाथ घरे, मम दुःख टरे ॥



स्त्री-कवि-कौमुदी



श्रीमती रानी रघुवंशकुमारी

रघुवंशकुमारी

राजमाता दियरा (अवध-युक्तप्रांत) रानी रघुवंशकुमारी का जन्म सम्वत् १६२५ ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार के दिन हुआ था । आपके पिता का नाम राजा सूर्यभानुसिंह था । जो भगवानपुर राज्य के राजा थे । पाँच वर्ष की अवस्था से आपको विद्यारंभ कराया गया । आपके पिता बड़े भगवतभक्त और हिन्दी-कविता के प्रेमी थे । इसलिये पिता का असर आप पर अधिक पडा । आपका बचपन का नाम 'गुणवती' है । आठ वर्ष की अवस्था में आप रामायण भली भाँति पढ़ने लगी थीं । तेरह वर्ष की अवस्था में आपने सीने-पिरोने, पढ़ने-लिखने तथा कला-कुशलता आदि में विशेष निपुणता प्राप्त कर ली थी ।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह दियरा राज्य सुलतानपुर (अवध) के राजा रुद्रप्रताप साहि से हुआ । वे बड़े दानी और प्रतिष्ठित राजा थे । रानी साहबा का जीवन अत्यन्त आनंद के साथ व्यतीत हुआ । विवाह होने के कई वर्षों तक रानी साहिबा के कोई संतान न हुई । इससे कुछ लोग राजा साहब को दूसरे विवाह की सम्मति देने लगे । पर राजा साहब रानी साहिबा से इतना अधिक स्नेह करते थे कि उन्होने दूसरे विवाह की बात पर ध्यान ही नहीं दिया । अंत में सं० १६४६ ई० में भाद्र-कृष्ण १३ शनिवार के दिन इनके प्रथम पुत्र राजा अवधेन्द्र प्रताप साहि का जन्म हुआ । राजा रुद्रप्रताप साहि का

देहान्त स० १९७१ में २४ वर्ष की अवस्था में हो गया। पति के देहान्त के बाद आप अपना जीवन साधुओं की भाँति बिताने लगीं हैं।

आपके तीन पुत्र हैं। अबधेन्द्र प्रताप साहि, कोशलेन्द्र प्रताप साहि और सुरेन्द्र प्रताप साहि। इस समय श्रीमान कोशलेन्द्र प्रताप साहि कोर्ट आव चार्जिस की भाँसे राँप के स्पेशल मैनेजर हैं। क्योंकि रानी साहबा के बड़े पुत्र राजा अबधेन्द्र प्रताप साहि का मस्तिष्क ठीक न रहने के कारण राज्य कोर्ट आव चार्जिस के अदर आ गया है। साँस और पति की मृत्यु के बाद रानी साहबा 'राजमाता दिवरा' के नाम से पुकारी जाती हैं।

राजमाता दिवरा बड़ी धार्मिक हैं। आप अनेक तीर्थों की यात्रा कर चुकी हैं। आपके सामाजिक विचार हिन्दू जाति के लिए बड़े लाभदायक हैं। आप स्त्री शिक्षा की बड़ी ही पक्षपातिनी हैं। आपकी रहन-सहन बहुत ही सादा है। स्वभाव अत्यन्त सरल और कोमल है।

चित्रकला का भी आपका शौक है। शिल्पकला में आपने दूर दूर तक प्रगति पाई है। लखनऊ की प्रदर्शनी सन् १९६० में आपको झरदाजी के काम के लिए सोने का पदक मिला था। स० १९६७ ई० की प्रयाग की प्रदर्शनी में चिक्कन के काम के लिए और स० १९६९ ई० में मुजबानपुर की प्रदर्शनी में भी आपका पदक मिले थे। गानविद्या में आप निपुण हैं। इस समय आपकी अवस्था ६२ वर्ष की है।

आप काव्य के मर्म को भाँ खूब समझती हैं और स्वयं प्रशसनीय कविता करती हैं। आपने हिन्दी के माय' सभ सुप्रसिद्ध कवियों के

ग्रन्थ भी पढ़े हैं। राजमाता दियरा ने अपने आवश्यक कामों से अवकाश निकाल कर गद्य और पद्य-साहित्य द्वारा स्त्री जाति तथा हिन्दी की बड़ी अच्छी सेवा की है। आपकी लिखी हुई तीन पुस्तकें अभी प्रकाशित हुई हैं।

१—भामिनी विलास—यह पुस्तक सन् १९६६ में लिखी गई है। घर-गृहस्थी के सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सब विषयों पर रानी साहवा ने इसमें अपने विचारों का वर्णन किया है। इसमें ५७ पृष्ठ हैं।

२—बनिता-बुद्धि-विलास—यह पुस्तक सं० १९७२ ई० में प्रकाशित हुई है। यह स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी ऊँचे दर्जे की पुस्तक है। भाषा उत्तम और सरल है। इसमें १८३ पृष्ठ हैं।

३—सूप-शास्त्र—इस पुस्तक में भोजन बनाने की अनेकों विधियाँ लिखी गई हैं।

इस समय आप एक बड़ी पुस्तक, जिसमें अनेकों भजनों तथा कविताओं का संग्रह किया गया है, लिख रही हैं। आपका एक जीवन-चरित्र “रानी रघुवंश कुमारी” नाम का प० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित किया है। आप कविता भी अच्छी करती हैं। यहाँ हम आपके कुछ सुने हुए पद्य उद्धृत करते हैं:—

१

फिरै चारिहु धाम करै व्रत कोटि कहा बहु तीरथ तोय पिये तैं।
जप होम करै अनगंत कछु न सरै नित गंग नहान किये तैं ॥
कहा धेनु को दान सहस्रन वार तुला गज हेम करोर दिये तैं।

‘रघुवश कुमारी’ श्रुया सब है जब लौं पति सेवे न नारि हियेतें ॥

२

पिय के पदफजन राती ।

विष्णु विरचि सनु सम पति में छिन छिन प्रेम लगाती ।

तन मन बचन छाडि छल भामिनिपति सेवति बहु भाती ॥

कबहुँ नहिं प्रीति मुनाती ।

पिय क० ॥

दासी सम सेवति जननी सम पान पान सब लाती ।

सखि सम केलि करति निसिवासर भगिनीं सम समझाती ॥

बधु सम सग सँगाती ।

पिय के० ॥

प्रिय पति विरह अमरपुरहू में रहति सदा अकुनाती ।

पति सँग सधन विपिन का रहिया सेवत रस मदमाती ॥

हृदय मानहि बहु भाती ।

पिय क० ॥

नाहिंन द्वार रहति नहिं परघर एकाकिन कहिं जाती ।

मूँदति नैन ध्यान उर आनति, ‘गुनपति’ पति गुन गाती ॥

नहिं मन मोद समाती ।

पिय के० ॥

३

पहिल पै ठगोरी ठगो हमको फिर लाज क बधन छोरि दियो ।

बलबुद्धि हृद्यो निज वातन तें अबला अति जान सताइ लियो ॥
 निज सीधे चितैवे की साध रही विरहानल दाढ़ लगाय दियो ।
 सब वातन मे पिय बीर बनो एक प्रीति में दाँव चली न हियो ॥

४

छायेगी जो ज्ञान-घटा हिय मे विचार सत्य,
 मारुत बहाय स्वच्छ वूँदे भरि लायगी ।
 जायगी मलीन मति आपनो परायो सब,
 रहैगी न देह यह नीके दरसायगी ॥
 करैगी कलेस जो पै लहैगी अमोल मणि,
 जीव ब्रह्म बीच कछु भेद नहीं जायगी ।
 खिलैगी सनेह कली धरैगी जो ध्यान अली,
 वाकी भांकी इसके खुले ही रहि जायगी ॥

५

जेहि के बल संकर सुद्ध हिये धरि ध्यान सदाहि जपै गुन गाम ।
 जेहि के बल गीध अजामिल हूँ सेवरी अति नीच गई सुरधाम ॥
 जेहि के बल देह न गेह कछु वसुधा वस कीनो सबै सुर-काम !
 धनु वान लिये तुम आठहु जाम अहो श्रीराम वसौ उर-धाम ॥

६

सीतल मंद सुगंध समीर लगे जपि सज्जन की प्रिय वानी ।
 फूलि रहे वन-वाग-समूह लहै जिमि कीर्ति गुणाकर ज्ञानी ॥

नीक नवीन सुपद्म सोह बढै जिमि प्रीति के स्वारथ जानी ।
गान करै कल कीर चकोर बढै जिमि बिप्र सुमगल धानी ॥

७

पिय चलती बेरिया,

कछु न कहे समभाय ।

तन दुख मन दुख, नैन दुख हिय भे दुख की खान ।
मानो कषहूँ ना रही, वह सुख से पहचान ॥
मन में बालम अस रही, जनम न छोड़ति पाय ।
बिछुड़न लिखा लिलार में, तासों काह बसाय ॥
बालम बिछुड़न कठिन है, करक करेजे हाय ।
तीर लगे निकसे नहीं, जब लौं प्रान न जाय ॥
जगन्नाथ के सिंधु में, डोंगो की गति जोय ।
तस मति पिय के बिरह में, हाय हमारी होय ॥

८

कहत पुकार कोइलिया हे ऋतुराज ।

न्याय दृष्टि से देखहु विपिन समाज ।

सोना सम्पति काज त्यागि सब साज ।

भये वदासी बिरिया बिसरी लाज ।

ध्यान करहु इत अब सुध कस नहि लेत ।

तोछन बहत ब्यारिया करत अचेत ॥

९

खस के बितान पै गुलाब जल फुइयाँ फुइयाँ,
 बीजुली के पंखे निसि वासर फिरै करें ।
 चंदन कपूर चोवा चम्पा औ चमेली जुही,
 आम बौरि मोगरा के इतर भरै परैं ॥
 रंग भरे संगतरे कावुली अनार मीठे,
 पौढ़े जल केवडा के डब्बे मे भरै तरैं ।
 जेठ को प्रभाव तेज तेहू पै सताये आप;
 स्वेतन की बूढ़े मुख मोती सी लरैं परैं ॥

१०

पग दावे ते जीवन मुक्ति लही ।

विष्णुपदी सम पति पदपंकज छुवत परम पद होवे सही ।
 निरखि निरखि मुख अति सुख पावति प्रेम समुद के धार बही ।
 रिद्धी सिद्धि सकल सुख देव सो लक्ष्मी पद हरि के गही ।
 जहँ पति-प्रीति तहाँ सुख सरबस यही बात सुति साँच कही ॥

११

नीलकंठ गोरे अंग सोहत विधु घाल भाल हर हर गंगा ।
 तीन नैन अरुन कमल विहँसत रद विद्रुम हर हर गंगा ॥
 लिपटे अहि उर विसाल मुंड माल धारी हर हर गंगा ।
 पहने कटि नाग छाल ओढ़े भृगु चर्म हर हर गंगा ॥
 जोगी बर ज्ञान तान बैठे कमलासन हर हर गंगा ।

वाम भाग पारवती दाहिने वर वदन हर हर गगा ॥
 गोदी गज बदन लाल किलकै हँसि हेरि हर हर गगा ।
 रिद्धि सिद्धि पुत्र महित बाढे सुख सम्पति हर हर गगा ॥
 विनती कर जोरि नाम दीजै मोहिं भक्ति मुक्ति हर हर गगा ।

१२

चैत चॉदनि में इतै मुरली वजाई मद मद ।
 तान से बनितान क गल बाँधि के किये वद वद ॥
 ता समय वृषभानु लाडलि ह्यौ गई करि फद फद ।
 देखि मोहनऊ गये अबलोक के मुख चद चद ॥
 वहे त्रिविधि वयरिया, त्रिविधि वयरिया ॥
 चैदनिया छिटकि रही ।

चम्पा जुही चमेली, चम्पा जुही चमेली ॥
 मालति फूलि रही ॥

अबलोकि दुलहिन बेलि के तन फूल-माल विराज ही ।
 सुरसाल दूलह सीस सुन्दर मोर कै छवि छाज ही ॥
 शत्रुराज के गृह-स्याज आज षड्दाह परम पुनीत है ।
 चक्रवा सुकोमल कीर-भामिनि गावती रस गीत हैं ॥
 बोलै मोर पविहरा, बोलै मोर पविहरा ।
 कोकिल गान करै ।

बिछी लाल पलँगिया, बिछी लाल पलँगिया ।
 रेशम की डोर टिची ॥

१३

है ह्वै संभु प्रत्यच्छहिं जो तो अवाहन काहे को सामुहे पूजिये ।
 अर्थ पदारथ आचमनी कर-कंज दोऊ वृषभांजलि दीजिये ॥
 ढांपि दुकूल से चंदन लाइ चमेली के हार से शोभित कीजिये ।
 भाव व प्रीति से कामद मानि के पूजि मनोरथ प्यारी सो कीजिये ॥

१४

विमल किरतिया तोहरी कृश्न जी,
 फिरी थी उघारी कि वाह वा ।
 चन्दिनि होइ गगन मे पहुँची,
 सुरपति कीन बड़ाई कि वाह वा ॥
 भक्ति होइ संतन में पहुँची,
 संतो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।
 शुद्धि होइ पंडितन में पहुँची,
 पंडितो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥
 कविता होइ कवियन मे पहुँची,
 कवियो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।
 दया होइ परजन मे पहुँची,
 परजो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥
 यकमति होइ भाइन में पहुँची,
 भाइयो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।

सुमा होइ ब्राह्मण में पहुँची,
ब्राह्मणों ने कौन बडाई कि वाह वा ॥
सत्य सुगन्ध समीर ले पहुँची,
सब जग होइ बडाई कि वाह वा ।

१५

सिंधु-तीर इस टिटिहरी, तेहि को पहुँची पीर ।
सो प्रन ठानी अगम अति, विचलत ना मतिपीर ॥
तहि प्रन राखन के लिये, आइ गये मुनि वीर ।
परमपिता को सुमिरि कै, सोखेष्ट जलधि गँभीर ॥



ॐ यह छंद रानी साहबा ने ११ & १६२२ को धामती कस्तूरीबाई
गांधी को पत्र लिखते समय लिखा था ।

राजरानी देवी

श्रीमती राजरानी देवी का जन्म नरसिंहपुर (मध्य-प्रदेश) जिले के अन्तर्गत पिपरिया ग्राम में अगस्त सं० १९२७ में हुआ था । आपके पितामह श्रीयुत लक्ष्मणप्रसाद जी कायस्थ उक्त ग्राम में आदर्शनीय ज़मींदार थे । वे ईश्वर के अनन्य भक्त तथा अपनी समाज में प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते थे । उनके ४ पुत्र थे और उनमें से द्वितीय पुत्र का नाम रामरत्नलाल जी था जिनके एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थी । इन्हीं रामरत्नलाल जी की कनिष्ठ पुत्री श्रीमती राजरानी देवी जी हैं । बाल्यकाल से ही आपका स्वभाव सरल, नम्र तथा धैर्यवान् रहा है । हृदय में दयालुता ने विशेष स्थान पाया है ।

पूर्व प्रथानुसार आपका विवाह १३ वर्ष की अवस्था में नरसिंहपुर-निवासी श्रीयुत शोभाराम जी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी से साथ सं० १९४० में हुआ था । आपके ससुराल-गृह में धाने के समय श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी अंग्रेजी विद्याध्ययन करते थे । संवत् १९८० में एकस्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर के पद से पेन्शन प्राप्त कर वे अब शान्ति पूर्वक जीवन-यापन करते हैं । सरकार सदैव ही इनकी कार्य-शैली की प्रशंसा करती रही है । उस प्रशंसा का अधिक भ्रय इनकी

श्रीमता राजरानी देवी जा को है जो समय समय पर अपने पति को उचित सलाह देती रहा हैं ।

छा-समाज का दुदशा पर आपको सदैव ही अधिक ध्यान रहा है । समय समय पर अनेक स्थानों पर जहाँ आपको रहने का अवसर मिला है, हिन्दू समाज की स्त्रियों को आप सदैव ही, उचित सलाह देती रहीं हैं । यद्यपि आपके पति के उच्चपदाधिकारी होने के कारण आपके स्वभाव में अधिक परिवर्तन होने की सम्भावना थी किन्तु आप सदैव ही सरल स्वभावा रही हैं तथा अपने से हीन से हीन स्त्रियों से भी मिलने बात करने तथा समथानुसार उचित सलाह देने में सङ्कोच नहीं किया । इसी कारण अन्य लोगों में इनके स्वभाव और बर्ताव का सदैव प्रशंसा रही है । स्थान स्थान पर आप कई नारी-अस्थाओं का समानेत्री रही हैं ।

आपके ६ पुत्र तथा ४ कन्याएँ हैं जिनका लालन-पालन आपने बड़ी धाम्यता तथा मुशिक्षा से किया है । हिन्दी के प्रतिष्ठित नरयुवक कवि श्री० रामकुमार वर्मा कुमार आपके छठे पुत्र हैं । आपको अगाध तथा हिन्दी से अधिक अनुराग था । मासिक पत्र-पत्रिकाओं में आप कभी कभी कविताएँ भी लिखा करती थीं । आपकी मृत्यु स० १९८२ में हो गयी । आपने 'भ्रमदा प्रमोद और सता-सयुक्ता' नामक पद्य की पुस्तकें भी लिखी हैं । आपने वियागिनी नाम से भी कई पत्रिकाओं में स्तुत रचनाएँ प्रकाशित कराई थीं । हम आपकी एक स्तुत और 'सती-स युक्ता' नामक पुस्तक से कुछ रचनाएँ नीचे देने हैं :—

१

उन्मादिनी

विषम प्रभञ्जन के प्रकोप से, बिखरेंगे जब केश-कलाप ।
 ज्योत्स्नानल के प्रखर ताप से, मन मे जब होगा सन्ताप ॥
 मधुर अरुणिमा रहित वनेंगे, शुष्क कपोल आप ही आप ।
 जब धरणी की ओर देख कर, रह जाऊँगी मैं चुपचाप ॥
 तब क्या बनमाली आकर दुख-नद से मुझे उबारेंगे ।
 अपने कोमल हाथों से मृदु, अलकावली सुधारेंगे ॥
 मुरली की मृदु तान छेड़ कर, शान्ति-सुधा बरसावेंगे ।
 शुष्क कण्ठ से कण्ठ मिला कर, कोमल-ध्वनि से गावेंगे ॥

+

+

+

भ्रम है मुझे, ललित लतिका को, समझ न जाऊँ मैं बनमाल ।
 कृष्ण समझ कर बड़े प्रेम से, चूम न लूँ मैं कही तमाल ॥

२

देवियो ! क्या पतन अपना देख कर,
 नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं ?
 भाग्यहीना क्या स्वयं को लेख कर,
 पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं ?
 क्या तुम्हारी वदन-श्री सब खो गई,
 उच्च—गौरव का नहीं कुछ ध्यान है ?

क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई ?

क्या सहायक भी नहीं भगवान है ?

हो रहे क्यों भीष्म—अत्याचार हैं,

इस तुम्हारे फूल से मृदु गात पर ?

मच रहे क्यों आज हाहाकार हैं,

अब नृशशों के महा उत्पात पर ?

क्या न अब कुछ देश का अभिमान है ?

छो गई सुप्तमय सभी स्वाधीनता।

हो रहा कितना अधिक अपमान है,

स—मुद इसको कौन सकता है बता ?

नव-हरिद्रा रग-रजित अग में,

सर्वदा सुप्त में तुम्हीं लवलीन हो।

प्रन्थि-बन्धन के अनूप प्रसंग में,

दूसरे हा के सदा आधीन हो ॥

वस, तुम्हारे हेतु इस ससार में,

पथ—प्रदर्शक अब न होना चाहिये।

सोच लो, ससार के कान्तार में,

बढ़ होकर यदि जिये तो क्या जिये ?

कम के स्वच्छन्द सुप्तमय क्षेत्र में,

किङ्किणी के साथ भी तलवार हो।

शौर्य हो चञ्चल तुम्हारे नेत्र में,
 सरलता का अंग पर मृदु भार हो ।
 सुखद पतिव्रत-धर्म-रथ पर तुम चढ़ो,
 बुद्धि ही चञ्चल अनूप तुरंग हो ।
 दिव्य जीवन के समर मे तुम लड़ो,
 शत्रु के प्रण शीघ्र ही सब भंग हो ।
 हार पहिनो तो विजय का हार हो,
 दुन्दुभी यश की दिगन्तो मे बजे ।
 हार हो तो बस यही व्यवहार हो,
 तन चिता पर नाश होने को सजे ॥
 मुक्त फणियों के सदृश कच—जाल हो,
 कामियों को शीघ्र डसने के लिये ।
 अरुणिमायुत हाथ उनके काल हो,
 सत्य का अस्तित्व रखने के लिये ॥

वंश-परिचय

भव्य भारत-भूमि की स्वाधीनता,
 जब यवन से पद दलित थी हो चुकी ।
 दीखती सर्वत्र थी अति दीनता,
 फूट की विप-वेलि भी थी वो चुकी ॥
 पूर्व अश की क्षीण स्मृति ही शेष थी,
 वीरता केवल कहानी ही रही ।

वधुओं में वधुता निरशेष थी,
दमन की परिपूर्ण धारा थी वही ॥
शत्रुओं को दण्ड देने के लिये,
आर्य्य शोणित में न इतनी शक्ति थी ।
वीरता का नाम लेने के लिये,
भ्यान के सौन्दर्य पर ही भक्ति थी ॥
ललित ललनाए यनी सुकुमार थीं,
अङ्ग पर आभूषणों का भार था ।
रत्न-हारों पर समुद्र बलिहार थीं,
सेज ही ससार का सब सार था ॥
नेत्र लड़ना ही सुप्रद रण-रङ्ग था,
चारु चितवन ही अनोप्य तीर था ।
क्यों न हों ? जब प्रियतमों का सङ्ग था,
प्रियतमाओं-युक्त हिन्दू वीर था ॥
नेत्र-भोपन कर चिबुक चुम्बन जहाँ,
प्रेम की विधि का अनूप विधान है ।
मारु भू के त्राण की गाथा बहाँ,
पापियों के पुण्य-गान समान है ॥
किङ्किणी की नाद अस्ति मङ्गल है,
अन्वपनता है ललित फौशल जहाँ ।

वीर रस होता जहाँ शृंगार है,
 देश-गौरव की शिथिलता है वहाँ ॥
 शुद्ध केसरिया बसन को छोड़कर,
 राजसी वैभव जहाँ पर आ गया ।
 जान लेना वीर पुरुषों में उधर,
 शोक का आतङ्क निश्चय छा गया ॥
 बाल रवि के क्षीण अरुण प्रकाश में,
 तारको की मालिका जिस भाँति हो ।
 यवन-रवि-युत हिन्द के आकाश में,
 ठीक वैसी आर्य नृप की पाँति हो ।
 किन्तु ऊषा की अरुणिमा में कभी,
 एक दो तारे चमकते हैं कही—
 इस तरह जब तेज-हत थे नृप सभी,
 तब बली थे एक दो नरपति कहीं ॥
 एक श्री राठौर नृप जयचन्द थे,
 राजधानी थी बनी कन्नौज में ।
 सत्य-व्रत में यद्यपि वे अति मन्द थे,
 किन्तु रक्षित थे समर के ओज में ॥
 दूसरे चौहान पृथ्वीराज थे,
 वे स-मुद दिल्ली निवासी थे बने ।

वीर-तारों में वही द्विजराज थे,
आर्य वीरोचित मुखों में ये मने ॥
वीर पृथ्वीराज अति गभीर थे,
शान्ति से नृप-कार्य करते थे सदा ।
किन्तु श्री राठौर (यद्यपि वीर थे) ।
किन्तु जलते थे हृदय में सर्वदा ॥
वे सदा ऐश्वर्य के अभिमान में,
नीच ठहराते चतुर चौहान को ।
वे स्वयं अपने गुणों के गान में,
तुच्छ गिनते दूसरों के मान को ॥
मित्रता-बन्धन उधारे तोड़कर
शत्रुता की नींव निश्चय डाल दी ।
ऐक्य से मुरझा सर्वदा को मोड़कर,
मातृ भू परतन्त्रता में डाल दी ॥
इस तरह भय भूरि दोनों वश में,
हा । दिनोंदिन शीघ्र ही बढ़ने लगा ।
गगन महल-मध्य ऊँचे अश में,
यवन दिनकर शीघ्र ही चढ़ने लगा ॥
आर्य-दल का शौर्य ठहा पड़ गया,
यवन दल में बढ़ चली कुछ वीरता ।

हास से यह देश हाय ! पिछड़ गया,
 आज भी इतिहास देता है पता ॥
 हाय ! कैसे फूट थी इस देश में,
 हो गया कैसे महा अपकर्ष है ।
 दीनता दिखती हमारे वेष में,
 यह इसीका क्रान्तिमय निष्कर्ष है ।
 हे विधाता ! आर्य का वर-वंश क्या,
 जयति के पद से पतित हो जायगा ।
 हाय ! वह हो जायगा विध्वंस क्या ?
 क्या महागौरव सभी खो जायगा ?
 दैव ! भारत का पतन जैसे हुआ,
 पतित वैसा हो न अरि का देश भी ।
 भाग्य परिवर्तन महा ऐसा हुआ,
 नाम दिखता आज है विश्वेश भी ॥

कुमारी संयुक्ता
 हो रहा कन्नौज मे आनंद है,
 हर्ष की धारा नगर में है बही ।
 वैर और विरोध विलकुल बन्द हैं,
 सर्व जनता आज हर्षित हो रही ॥
 भीड़ भारी हो रही प्रासाद मे,
 खुल गया है द्वार सारे कोष का ।

नर तथा नारी हुए उन्माद में,
 गूँज उठता शब्द ऊँचे घोष का ॥
 नारियों सब चली पर्वी शृंगार कर,
 राज्य-गृह की ओर अनुपम हर्ष से ।
 मधुरिमा-मय मुखद जय जयकार कर,
 हृदय के आनन्द के उत्कर्ष से ॥
 थालियों में फूल मालाए सर्जों,
 गीत गा गा कर चलीं सुकमारियों ।
 हाव भावों में स्वयम् रति को लजा,
 मन सहित कच बोंध सुन्दर नारियों ॥
 मुग्ध मुग्धाएँ चलीं धीढा सहित,
 शीघ्र सकुचा कर पुरुष की दृष्टि से ।
 मदगति से वे चलीं क्रीड़ा सहित,
 नेत्र चञ्चल कर सुमन की वृष्टि से ॥
 या बड़े आनन्द का कारण वही,
 एक पुत्री थी हुई जयचन्द के ।
 हर्ष से थी उमँगती सारी मही,
 आ गये थ दिन अधिक आनन्द के ॥
 दल उसकी छवि अनूप सुधामयी,
 ये चकित सब व्यक्ति नगरा के महा ।

सोचते थे हृदय में पुरजन कई,
 रूप ऐसा मानवों में है कहाँ ?
 चन्द्रमा का सार मानो भर दिया,
 बालिका की नवल सुंदर देह में ।
 स्वयं श्री ने वास मानो कर लिया,
 सरल उसके कान्तिमय मुख-गेह में ॥
 नेत्र मानो दो रुचिर राजीव थे,
 जो रखे हो चन्द्रमा के अंक में ।
 अङ्क मानो सुमन-पुञ्ज सजीव थे,
 जो सजे हो छवि सहित पर्यंक में ॥
 जिस किसीकी आंख उस पर पड़ गई,
 देखते ही देखते दिन बीतता ।
 वस, उसी के हृदय पर थी चढ़ गई,
 बालिका के रूप की लोनी लता ॥
 चारु चुम्बन से सदन था गूँजता,
 स-मुद राका रुचिर हास्य-विलास था ।
 कौन उनके हर्ष को सकता बता,
 जननि का उपमा-रहित उल्लास था ॥
 रुचिर मणिमय पालने की सेज पर,
 बालिका कर-कञ्ज मञ्जु उछालती ।

तव जननि लखती उसे थी श्रॉप भर,
 वार वार दुलार कर पुचकारती ॥
 बालिका को गोद माँ लेती कभी,
 प्रेम से उसका हृदय था फूलता ।
 छवि मनोहर देख पड़ती थी तभी,
 हेम-लतिका में सुमन ज्यों मूलता ॥
 इस तरह सुख में दिवस थे जा रहे,
 शान्ति रस मानों सदन में था चुआ ।
 हृदय में सुख-स्रोत थे अविरल बहे,
 वह सदन बस स्वर्ग का उपवन हुआ ॥
 पुरजनों को जान पड़ता था यही,
 बालिका से चन्द्र-मुख काला हुआ ।
 उस सुता मुख-दीप से सर्वत्र ही,
 ज्योतिमय सुख-पूर्ण बनियाला हुआ ॥
 हृदय सुख के गीत गाता ही रहे,
 टूट जावें सब दुखों के जाल भी ।
 शान्ति का धारा बहाता ही रहे,
 स्नेहमय प्रत्येक मा का लाल भी ॥
 ('कुमारी सयुक्ता' से)

सरस्वती देवी

श्रीमती सरस्वती देवी का जन्म पौष-ऋण २ सं० १९३३ ग्राम कोइरियापार जिला आज़मगढ़ में हुआ था। आप के पिता पं० रामचरित त्रिपाठी स्वयं एक अच्छे कवि थे। आप महाराज राधाप्रसाद सिंह के. सी. एस. आई. दुमराँव के राजकवि थे। त्रिपाठी जी की मृत्यु अकस्मात् ४६ वर्ष की अवस्था में संवत् १९२० में वैशाख में हो गई। श्रीमतीजी की शिक्षा का प्रबन्ध इनके पिता ने स्वयं घर पर ही किया था। इनको पूरी शिक्षा और कविता करने की अभिरुचि इनके पिता के ही द्वारा प्राप्त हुई। आप अपने पिता की एक मात्र सतति होने के कारण पैतृक सपति की अधिकारिणी हैं। पहले आपने व्याकरण, कविता सम्बन्धी अनेक बातें और फिर गणित की शिक्षा प्राप्त की। इसके अनंतर बंगला, अंग्रेज़ी और संस्कृत इन्होंने अपने पिता जी से सीखी।

आपका विवाह नगवा जिला आज़मगढ़ निवासी पं० महावीरप्रसाद जी के साथ हुआ। पंडित जी वहाँ के प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं। सरस्वती देवी जी को पति की ज़मींदारी से २) की और पैतृक ज़मींदारी से १) प्रतिदिन की आय है। इसी के द्वारा आप प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करती हैं। आपके पाँच संताने हुईं। जिसमें से एक पुत्र और एक कन्या जीवित हैं। कन्या का नाम श्रीमती विद्यावती

है। काव्य रचना अच्छी करती हैं। 'गृहलक्ष्मी' में इनके समय-समय पर लेख भी छपते हैं। श्रीमती सरस्वती देवी जी की रचनायें 'रसिक-मित्र' आदि पुराने पत्रों में छपा करती थीं।

श्रीमती सरस्वती देवी जी पुराने ढंग की स्त्री हैं। आप छिरों की वत्तमान उच्छृंखलता और स्वतंत्रता पसन्द नहीं करतीं। आप कविता में अपना नाम "शारदा" रखती हैं। आपका "बोक्ति, व्याकरण पर भी अधिकार है। आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें 'सुन्दरी-सुपथ 'नीति निचाड़ शारदा-शतक' छप चुकी हैं। 'वनिता-वधु' प्रेस में ही लुप्त हो गई। 'मन-मौज' अथ प्रकाशित होने वाली है। 'सन्माग प्रदर्शनी' नामक पुस्तक इनसे किसी ने लेकर लुप्त कर डाला। यात्र कल आप मॅम्बौली राधाधरवरी का जीवन चरित्र लिख रही हैं। मॅम्बौली का रानी साहवा इन पर मातृवत् प्रेम रखता है। कारण यह है कि इनके पिता प० रामचरित्र त्रिपानी और मॅम्बौली नरेश में बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। आपने अपना 'सुन्दरी-सुपथ' नामक पुस्तक में अपना थाका सा परिचय इस प्रकार दिया है —

जिला जु आञ्जमगढ अहै तामहँ एक विचित्र ।
 प्राम कोइरियापार के कवि द्विज रामचरित्र ॥
 ताकी कन्या एक मैं मूर्ति मूलता करि ।
 कुलवतिन-पद घूरि अस गुणवतिन की चेरि ॥
 मम शिञ्जुक कोठ और नहिं निज ही पिता मुजान ।
 कठिन परिश्रम करि दियो विद्या-दान महान ॥

प्रथम पढ़ायो व्याकरण मुनि कुछ काव्य विचार ।
 दत्तनंतर सिखयो गणित बहुरि सुरीति प्रकार ॥
 तव कुछ उर्दू फारसी बंगला वर्ण सिखाय ।
 कुछ अँगरेजी अक्षरन पितु मोहि दीन्ह दिखाय ॥
 जब लग मैं मैके रही लिखत पढ़त रहि नित्त ।
 अब घर पर परवस परी रहि नहिं सकति सुचित्त ॥
 गृहकारज व्यवहार बहु परै सँभारन मोहिं ।
 लिखन पढ़न इक संग ही यह सब कैसे होहि ॥
 समाचार के पत्र जे आवत हैं मम पास ।
 तिनके देखन के लिए मिलत न मोहिं सुपास ॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीमती सरस्वती देवी के सम्बन्ध में अपने ता० ६-१-२६ के पत्र में इस प्रकार लिखते हैं :—“श्रीमती सरस्वती देवी कविता में अपना नाम ‘शारदा’ रखती है। इनके पिता पंडित रामचरित्र तिवारी हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित कवि थे। सरस्वती देवी जी सहृदया हैं और सरस रचनायें करती हैं। इनकी रचना अत्यन्त मधुर और हृदय ग्राहिणी है। ये प्राचीन आर्दश की महिला हैं और यथावकाश हिन्दी-सेवा में संलग्न रहती हैं। नागरिक जीवन न होने के कारण यद्यपि ये जैसी चाहिए वैसी ख्याति नहीं लाभ कर सकीं तो भी उनमें कविता-सवन्धी जो गुण हैं, वे आदरणीय हैं। इनके पति श्रीमान् पंडित महावीरप्रसाद हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं और

कष्टमय होने पर भी अपने जीवन को आनन्द के साथ यतीत कर रहे हैं।”

श्रीमता सरस्वती देवा की रचनायें अथवा और मजुर होती हैं। गृहस्थी के मन्त्रों में पड़ी रहने के कारण ये आज कल कविता नहीं लिखती हैं। हम इनकी कुछ रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं —

१

धन्य नरल विधवन समाज सतन दल मण्डल ।
 धन्य विधवपन ब्रह्मचर्य्य धनि दण्ड कमण्डल ॥
 धन्य धरम उपदेस मातु कति बचन सुनैशो ।
 धन्य दिप्लावन हाथ सती बनि मौत मनैशो ॥
 धनि जगन्नाथ मथुरागमन, बालू बालक डॉपनो ।
 धनि तीरथ तोय चढाइ के, 'शारद' शिव शिव जापनो ॥
 देखेउँ सुनउँ अनेक पथ साधू वैरागी ।
 जानि जोगिया सिद्ध लालसा दर्शन लागी ॥
 पै न लगत अदाज कौन शुभ काज कियो है ।
 कासन भयउ विराग कौन मुख त्याग दियो है ॥
 धन धाम तयो किहि कारने घर घर मॉगत खात क्योँ ।
 'शारद' गृह को गारत कियो, पर हिय लख ललचात क्योँ ॥
 दासहिं भरत प्रबोध दृष्टि दासी मुप्र ओरा ।
 धौंइहु दपति सोच तपोबल देखहु मोर ॥

काह भयो तुव वृद्ध भये घरनी तरुनी है ।
 तुमहुँ सहज सतभाव विदित इनकी करनी है ॥
 हम सन्तन चरन-प्रसाद सो अद्भुत बालक पाइहौं ।
 यहि मम उपदेश इकन्त को 'शारद' बिसरि न जाइहौं ॥
 प्रात समय अनमोल वीतिगो वनन ठनन में ।
 जुगल याम लै लीन्ह चेलियाँ भोग-लगन मे ॥
 पिता, पुत्र, पति अभय देव-दर्शन के भरे ।
 पहुँचत मन्दिर-द्वार उड़न लागे गुलछर्रे ॥
 सेवक दरबारी ह्वै खड़े दर्शक जान न पावही ।
 'शारद' यहि भौँति महंतजू नित नव ध्यान लगावहीं ॥
 जगत सृष्टि करता ललाट आड़े सिर जायो ।
 भसम त्रिपुरण्ड वताय रेख आड़ी निरमायो ॥
 ताहि दुरावत ठानि पतित पण्डित बनि न्यारे ।
 लीक बड़न की तजत लाज नहि लजत गँवारे ॥
 'शारद' अरीति अनरीति में जे नहिं पशु पहिचानते ।
 तिनके हित सींग बनावही उर्ध्व मुण्ड मनमानते ॥
 निपटि गयो तकसीम आचरज लोगन केरो ।
 आतम दास कुम्हार लियो पछताव घनेरो ॥
 सीख अधर परयंत ठाँव उबख्यो नहि बीचे ।
 होत बड़ो परिहास बढ़ै उतरै यदि नीचे ॥
 हम अगल-वगल रँग वह भरै नम्बर उदय न अस्त को ।

कोठ बढ़रि न चेत चदाइ है 'शारद' बन्दोवस्त को ॥
(अप्राप्य 'सन्मार्ग-प्रदर्शिनो' से)

२

नैन कजरारे कोर वारे धनु भौंह तान,
मारत निसक वान नेकु न डरत हैं ।
बेसर विसेख बेसकीमत जडाऊ देखि,
हारन समेत तारापति इहरत हैं ॥
अधर कपोल दत नासिका बखानों कहा,
केश की सुवेश लखि शेष कहरन हैं ।
श्रीफल कठोर चक्रवाक से निहार तेरे,
उरज अमोल गोल घायल करत हैं ॥

३

ऐसी नहीं हम खेलनहार विना रस-रीति करें बरजोरी ।
चाहै तजौं तजि मान कहौ फिरि जाहि घरे वृषभानु किशोरी ॥
चूक भई हमसे तो दया करि नेकु लाखो सखियान की ओरी ।
ठाढ़ी अहैं मन मारि सबैं विन तोहिं वनै नहिं खेनव होरी ॥

४

ऊधव जाइ कहौ उनसों पठई पतिया जिन युक्ति भरी है ।
ज्ञानी बही जग-जाहिर हैं जिनसों नहिं गाइन हूँ उधरी हैं ॥
साधन जोग स्वतत्र समाधि विरक्त अली जग सों कुचरी है ।
ये ब्रजबाळ विहाल महान वियोग की माठ प्रचढ परी है ॥

५

स्त्री-शिक्षा

सज्जन सम्बन्धी जे सुपति के तिहारे होहिं,
 तिन्हें अपनाओ चतुराई लिये हाथ में ।
 नम्रता बड़न मॉहि मित्रता सुनारिन सो,
 शत्रु-भाव राखिये कुनारिन के साथ में ॥
 भाखिये सुवैन दास-दासिन सो प्रेम-संग,
 धारिये सुध्यान सदा शुभ गुण-गाथ में ।
 सारिये सकल गृह-काज सुघराई साथ,
 वारिये पवित्र प्रीति पति प्राणनाथ मे ॥

६

राखहिं कुटिल स्वभाव सो, वैर भाव जो कोय ।
 तुम उन पर मत ध्यान दो, आपुहि लजिहें सोय ॥
 बिन विसात अनुसार ही, फार करहु करि गौर ।
 लहौ जात सुख भोग बहु, बनहु यशी सब ठौर ॥
 प्रथम कारयारम्भ में, सब की सम्मति लेहु ।
 निज विचार पति आदि पर, तुरत प्रगट करि देहु ॥
 जे तिय बाहर चित्त के, करहिं कार हठ-ठानि ।
 ऋण के भार दवाहि ते, अन्त होति है हानि ॥
 नहिं निर्विघ्न समाप्त हो, यिन बाहर के काज ।
 पुनि अनन्त दुख होत है, अन्त लागत है व्याज ॥

जो रुपया पैसा तुम्हें, मिलै सुखर्चन अर्थ ।
 राखहु ताहि सँभारि कै, फेकहु नाहि अनर्थ ॥
 लघु व्यय जहँ लग हो सकै, करि सुधराई साथ ।
 रखहु ध्यान यहि बात पर, बढ होहि नहि हाथ ॥
 मोर मनोरथ यह नहीं, निपट कृपण होइ जाहु ।
 बनहु सूम घर की सुता, निंदनीय कहलाहु ॥
 घरहु इकट्टहि पास में, सौदा-सुलुह भँगाय ।
 खर्चहु अपने हाथ सों, जिहि बिन बिगरो जाय ॥
 करहु नियम यहि बात को, घरहु द्रव्य कछु पास ।
 जासों खर्चन के समय, परहु न निपट निरास ॥
 जो खर्चहु निज हाथ सों, लिखौ सुव्यारेवार ।
 जब हिसाब कोउ लेन चढ, दत्त न लागै बार ॥
 महत काज साधन चहौ, योरे व्यय के द्वार ।
 तासु यतन श्रुदु बचन है, करहु स्ववश सत्तार ॥



दुर्लभ समय अमोघ व्यर्थ मत खोवहु प्यारी ।
 इर्षा द्वेष कलह कुकर्म तजि होहु सुप्यारी ॥
 हस्त क्रिया महँ निपुण होहु करिके श्रम भारी ।
 सूचीकारी आदि जानि अति ही हितकारी ॥
 थहु हुनर सीपि सुसपानि है, सुयश सहित सुख पावहु ।
 जासा असमय महँ काहु सों निज दुख नाहि सुनावहु ॥

भूषण दुचार एक बार एक ठौर पैन्ह,

पैन्हहु सुजानि यामै हानि अति भारी है ।❀

धुँधुरू औ माँझ आदि वजनो विशेष छड़े,

छमा छम शब्द जासो सब गुन जारी है ॥

ध्यान हू न होय जाको तव प्रति ताकी दीठि,

फेरिवे की पूरी अधिकारी मन्तकारी है ।

करहु कदापि अंगीकार ये सिंगार नाहि,

पतिव्रत धारी सुनौ विनय हमारी है ॥

❀

❀

❀

नारी धर्म अनेक हैं, कहौ कहौं लगि सोय ।

करहु सुबुद्धि विचारते, तजहु जु अनुचित होय ॥

हानि लाभ निज सांचि कै, काजहिं होहु प्रवृत्त ।

- सुख पायहु तिहुँ लोक मे, यश वादै नित नित ॥



❀ श्रीमती जी की यह शिक्षा पुरानी है । आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इस तरह के उपदेश सुनने को तैयार नहीं हैं ।

बुन्देलावाला

श्रीमती बुन्देलावाला का जन्म कायस्थकुल में सम्वत् १११०

विक्रमीय में गाज़ीपुर के शादियाबाद नामक कस्बे में हुआ था। आप के पिता श्रीयुक्त परमेश्वरदयाल जी गोरखपुर के मुहम्मद ज़की नामक ज़मादार के यहाँ मुन्सिफ़ थे। आप बचत तक उक्त ज़मीदार महाराय के यहाँ ही काम करते रहे। आपने बुन्देलावाला जी को छठकपन में ही हिन्दी और उर्दू की शिक्षा दी थी। पैतृक गुण के अनुसार बुन्देलावाला हिन्दी की अपेक्षा उर्दू में ही अधिक याग्यता रखती थीं। इनके चार भाई और एक बहिन थी जो अभी तक जीवित हैं। आपका असली नाम गुजराती भाई था।

आप का विवाह स० ११६० विक्रमीय में बीस वर्ष की अवस्था में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी के साथ हुआ था। उस समय 'दीन जी छतरपुर में रहते थे। इनकी दूर व्याह होने का कारण यह है कि जब इनके पिता को कई वर्षों तक ढूँढने पर भी कोई योग्य पति नहीं मिला तब उन्होंने बुन्देलावाला जी के मामू महाराय के पास छतरपुर में एक घर ढूँढने के लिये पत्र लिखा। उनके मामू महाराय खेम उपनाम से कविता किया करते थे। दीन जी से उनकी जान-पहिचान थी। उस समय दीन जी की प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। उन्होंने दीन जी से बुन्देलावाला

में भी आप बड़ी दृष्ट थीं। सम्यक् १९६६ में छठवीस वर्ष की अवस्था में आप के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र-उत्पन्न होने के पूर्व आप पिता के घर चली आई थीं। वहाँ पर आप को अतिसार हो गया और अपने आठ नौ मास के बालक को छोड़ कर स्वर्ग सिंघार गईं। वह बालक भी कुछ दिनों के बाद चल बसा।

बुन्देलावाला जी की मृत्यु बहुत थोड़ी ही उम्र में हो गई। वे 'विधवा-विलाप' नामक कविता लिखने के बाद बहुत प्रसिद्ध हो गई थीं। आप की कविताओं को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। यदि आप अब तक जीती होती तो आपने हिन्दी का बहुत कुछ उपकार किया होता। अपने पति के साहित्यिक कामों में भी अच्छा हाथ बँटाया होता। आपकी कुछ रचनाएँ हम नीचे उद्धृत करते हैं.—

१

चाहिये ऐसे बालक !

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक ।
 गौतम शङ्कर-सरिस धर्म सत् के सञ्चालक ॥
 उत्साही दृढ़ अङ्ग प्रतिज्ञा के प्रतिपालक ।
 शरीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक ॥
 काज करें मन लाय, वनै शत्रु न उर शालक ।
 अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक ॥
 दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी ।
 "अरे बाप ! यह काज हमें सूक्त अति भारी" ॥

सर्वकाज करने के पहले पूँछो अपने दिल से आप ।
 "इसका करना इस दुनिया में, पुण्य मानते हैं या पाप" ॥
 जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भाँति ।
 काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुःखो की पाँति ॥
 कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच में आज ।
 देना पढ़ै कलह ही तुमको रत्नमाल सम निजकुल-लाज ॥
 युवा समय के गर्म रक्त में मत बोओ तुम ऐसा बीज ।
 वृद्ध समय के शीत रक्त में, फूलै चिन्ता फलै कुखीज ॥
 पश्चाताप कुरस नित टपकै वदनामी-गुठली दृढ़ होय ।
 उँगली उठै बाट में लचते, मुँह भर बात न बूमै कोय ॥
 यौवन मत्तु वसन्त में प्यारे कुसुम समूह देखि मत भूल ।
 दबा र कर युक्ति सहित रख निज उमंग के सुन्दर फूल ॥
 सावधान ! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पड़तावेगा ।
 वृद्ध वयस सम्मान सुगन्धित फिर कैसे महकावेगा ॥
 परमेश्वर के न्याय-तुला की डाँड़ी जग में जाहिर है ।
 उसको ऊँच नीच कछु करना मानव-बल से बाहर है ॥
 अहंकार सर्वदा जगत में मुँह की खाता आया है ।
 नय नम्रता मान पाते हैं सवने यही बताया है ॥
 है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक ।
 विषय रूप मिष्टान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट श्लेक ॥

जो तुम हौ सौँची सखी, इतनो यश लै लेहु ।
 मन-मतंग मानत नहँ, पीतम सों कहि देहु ॥
 हे धनपति निज छेम हित, तुम्हें चाहिये एहु ।
 साधु अकिंचन को सदा, भोजन हित कछु देहु ॥
 दुहूँ लोक की छेम हित, मुख्य अहँ द्वै काज ।
 मित्रन पर नित नेह नव, रिपु पै दया-दराज ॥
 निर्धनता में धीर धरि, राखै मन सानद ।
 जीवन को पारस यही, करै कुबेर अमंद ॥
 जाको जीवन प्रेममय, सो निश्चय अमरेश ।
 कीरति वाको अमिट है, जागै जगत हमेश ॥
 सीय विरह की सकल सुधि, तुव सुत रामहिँ दोन ।
 मम कारज हित पवन वर, तुमहुँ भये बल हीन ॥
 पिय सुधि-सागर मगन है, आंसु मोति छिरकाव ।
 पिय मन-हंसा चुनन हित, संभव कबहुँक आव ॥
 नयनामृत इन चखन हित, तुव द्वारे की धूर ।
 तेहि तजि, कहिये आपही, कहाँ जाउँ पिय दूर ॥
 प्रेम और कुलकानि में भेद लीजिये जानि ।
 फागराग सो प्रेम है, सामगान कुलकानि ॥
 को सुरभायो बुद्धि बल, या जग को जंजाल ।
 प्रेम-पंथ चरचा करौ, छँडौ जग को ख्याल ॥

जे नर प्रेमी जनन की, हँसी करत मुसुकाय ।
 डरपौं, उनको धर्म कहूँ, जग सरि नहिं बहि जाय ॥
 बँचन हित मद प्रेम को, जो पिय धरै दुकान ।
 तो मैं निज नयनन करूँ, वा दर को दरवान ॥
 जा तन की अंतिम दशा, है द्वै मूँठी राख ।
 ता हित नाहक रचत जन, ऊँचे अटा भराख ॥
 मतषरो, चोरी करो, करौ अधम सब काज ।
 पै क्लृकर्म कीजै न प्रिय, धर्मनीति के काज ॥
 सजन सलोने श्याम तें, कौन कहै यह बात ।
 रूप-शाह है उचित नहि, प्रेमिन पै गृह-घात ॥
 शील फांस-बश होत हैं, समझदार रिझवार ।
 और भांति नहिँ फँसत हैं, कोटिन करिये वार ॥
 बड़ो आचरज जगत में, कहिये काहि सुनाय ।
 वाही भलो दिखात है, जो चित लेय चुराय ॥
 धीर-सहित आपत्ति सहि, किये जाव निज काज ।
 आखिर निश्चय पाइ हौ, सर्व सुखन को साज ॥
 तुमहिं बतारवत ठीक मैं, प्रेमिन की पहिचान ।
 दृगन-नीर वरसै तऊ, मुखड़ा रहा मुरान ॥
 कैसी दशा वियोग की, तुमहिं कहौं समुझाय ।
 दमयन्ती, सीता, सती, जान्यो कछौ न हाय ॥

माता—

बेटा यह पञ्जाब देश है पुराय-भूमि सुख-शान्ति-निवास ।
 सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आरियो ने निज वास ॥
 कहीं गान-ध्वनि कहीं वेद-ध्वनि कहीं महामन्त्रों का नाद ।
 यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पञ्जाब सहित आह्लाद ॥
 इसी देश मे वस के 'पोरस' ने रखा है भारत-मान ।
 जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान ॥
 इससे नीचे देख पुत्र यह देश दृष्टि जो आता है ।
 सकल बालुकामय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है ॥
 इसके प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर ।
 देश मान हित करते आये आत्म-विसर्जन क्षत्री वीर ॥
 कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ अमर चिन्हों के रूप ।
 वीर कहानी राजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप ॥
 क्षत्री-कुल-अवतंस वीर वर है 'प्रताप' जी का यह देश ।
 रानी 'पद्मावती' सती ने यहीं किया है नाम विशेष ॥
 क्षत्रीवंश-जात को चाहिये करना इसको नित्य प्रणाम ।
 क्षत्री दल का जग में इससे सदा रहेगा रोशन नाम ॥

हिन्दी की प्रतिष्ठित तथा पुरानी पत्रिकाओं में से थी। स्त्री-समाज में इस पत्रिका का बड़ा आदर था।

श्रीमती गोपाल देवी जी के मामा श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी० ए० एल० एल० बी० बड़े अच्छे और प्रतिष्ठित वैद्य हैं। गोपाल देवी जी बचपन में अकसर अपने मामा के यहाँ रहा करती थी। अनेक रोगियों की चिकित्सा इनके मामा के यहाँ हुआ करती थी। इससे इनकी भी चिकित्सा की ओर अभिरुचि हुई। इन्हें चिकित्सा-सम्बन्धी विषय से बड़ा प्रेम था, इससे बड़ी जल्दी इन्होंने अनेक वैद्यक-सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन कर डाला। यद्यपि उस समय इन्हें स्वप्न में भी इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि किसी समय इन्हें भी चिकित्सा द्वारा अपनी बहिनो की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। ये पहले प्रायः अपने पास-पड़ोस के रहने वाले बच्चों की दवा करती थीं। यह अभ्यास विद्या-न्यसन के रूप में ही होता रहा। अंत में जब ये वैद्यक में खूब निपुण हो गईं तब इन्होंने प्रयाग में 'नवजीवन औपधालय' नामक एक औपधालय की स्थापना की जिसमें दवा कराने के लिए कितने ही रोगी-रोगिणी आती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ये बड़ी ही अनुभवी और योग्य वैद्या है। वैद्यक में इनकी पटुता का समाचार सुन कर श्रीमती महारानी साहया वूँदी ने भी इन्हें अपने राज्य में चिकित्सा के लिए बुलाया। उन्होंने आपको सं० १९८३ ई० में 'राजवैद्या' की उपाधि से विभूषित किया।

श्रीमती गोपाल देवी जी हिन्दीकी बड़ी पुरानी लेखिका हैं। आप

हम स्वयं मृत्यु को वश में अपने लावें ।

सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें ॥

हो रोग शान्ति-मय कभी न हमे निरासा ।

देखें न करुणमय कलि का क्रूर तमाशा ॥

हो स्वास्थ्य-पूर्ण तब बंधे समुन्नति-आशा ।

है यही 'राजवैद्या' की शुभ अभिलाषा ॥

हम एक एक का बहिनो हाथ बटावें ।

सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें ॥

२

लुक छिप धीरे धीरे देह मे दखल कियो,

यासो अंगरेजी में 'लुकोरिया' कहायो है ।

पाँव टेकि पायो नाना रूप दिखलायो तब,

रक्त, पीत आदि भाँति २ रंग लायो है ॥

मन को मलीन कियो, तन अति छीन कियो,

सन्तति-विहीन कियो, खूब ही सतायो है ।

महिला-समाज बीच स्वास्थ्य-धन लूटवे को,

मौका तकि प्रदर ने गदर मचायो है ॥

३

हुआ सवेरा जागो भैया, खड़ी पुकारे प्यारी भैया ।

सब अपने धन्धे मे लगे, पर तुम आलस ही में पगे ॥

विद्या बल धन धर्म कमाओ, भारत माँ का यश फैलावो ॥

४

आओ जी भाई आज प्रतिज्ञा करें।

मात पिता जो आशा देवें, उसको सिर माथे पर लेव ।
 निसि दिन में करें, आओ जी भाई आज० ॥ १ ॥
 पढने लिखने में चित लावे, जिससे कभी न हमादुख पावे ।
 अच्छे गुण अनुहरे, आओ जी भाई आज० ॥ २ ॥
 भाई बहिन सभी मिल बैठे, दख किसी को कभी न ऐठें ।
 नहीं किसी से लरें, आओ जी भाई आज० ॥ ३ ॥
 बुरे वालकों में नहिं खेले, भले वालकों में नित मेलें ।
 अच्छों को अनुसरे, आओ जी भाई आज० ॥ ४ ॥
 मिले दरिद्री दुखी कोई जो, चाहे ऊँच नीच जैसा हो,
 उसके दुख को हरे, आओ जी भाई आज० ॥ ५ ॥
 औरों के दुख में दुख माने, औरों के सुख में सुख जानें ।
 ऐसा घृत आचरें, आओ जी भाई आज० ॥ ६ ॥

५

चमगीदड़

एक धार पशु और पक्षियों में ठन गयी लड़ाई घोर ।
 चमगीदड़ न सोचा 'हूँगा तो जातेगा उसकी ओर' ॥
 कई दिनों के बाद लख पड़ी उमे जीत जब पशु-दल की ।
 आय मिला पशुओं में फौरन करने लगा घात छल की ॥

“भाई! मैं भी तुम में से हूँ पशु के मुझ में सब लक्षण ।
 पशुओं से मिलते हैं मेरे रहन सहन भोजन भक्षण ॥
 दाँत हमारे पशुओं के से मादा व्याती बच्चों को ।
 सब पशुओं के ही समान वह दूध पिलाती बच्चों को ॥
 सुन उसकी बातें पशुओं ने अपने दल में मिला लिया ।
 अगले दिन पत्नी-दल ने पशुओं पर भारी विजय किया ॥
 उसी समय पत्नी-सेना ने चमगीदड़ को पकड़ लिया ।
 घबड़ा कर चमगीदड़ ने पत्नी-नायक से विनय किया ॥
 “आप हमारे राजा हैं, हम भी पत्नी कहलाते हैं ।
 फिर क्यों हम अपने ही दल से वृथा सताये जाते हैं ॥
 देखो पंख हमारे, हम उड़ते हैं, पेड़ों पर रहते ।
 हाय आज मूठी शंका-चश अपने दल में दुख सहते ॥”
 सुन चमगीदड़ की बातें पत्नी-नायक ने छोड़ दिया ।
 जान बची चमगीदड़ की तब उसने जय-जय-कार किया ॥
 हुई लड़ाई अन्त, अन्त में सुलह हुई दोनों दल में ।
 भेद खुला चमगीदड़ का सारा सब लोगो में पल में ॥
 तब से वह ऐसा शर्माया दिन में नहीं निकलता है ।
 अन्धेरे में छिप कर चरता नहीं किसी के मिलता है ॥
 समय पड़े जो दोनों दल की करते हैं ‘हॉ जी, हॉ जी’ ।
 वे चमगीदड़ के समान दोनों की सहते नाराजी ॥

६

भेड़ और भेड़िया

नदी किनारे भेड़ खड़ी एक सुख से पीती थी पानी ।
 एक भेड़िये ने लख उसको मन में पाप-बुद्ध ठानी ॥
 बिना किसी अपराध भला मैं इसका कैसे करूँ इनन ।
 उसे मारने को वह जी में लगा सोचने नया यत्न ॥
 कर विचार आकर समीप यों बोला कपट भरी बानी ।
 “अरो भेड़ तू बड़ी दुष्ट है क्यों करती गँदला पानी ॥”
 क्रोध भरी लए आँसु विचारी भेड़ रही दुःख वहाँ सहम ।
 बोली, “क्यों अपराध लगात हो चित-लात नहीं रहम ॥
 मैं तो पीता हूँ पानी तुम से नीचे की ओर ।
 भला कहीं होती भा होगी जल की उलटी दौर” ॥१॥
 सुन कर उसक वचन भेड़िया फिर बोला उससे ऐसे—
 “पारसाल उस पेड़ तने तून दी थी गाली कैसे ?”
 डर कर भेड़ विनय से वाली मन में उसको शालिम जान ।
 “मैं ता आठ महीने को भी नहीं छुड़ हूँ, वृषानिधान ॥” ॥
 “कहाँ तलक तेरे अपराधों को दुष्टा मैं कहा करूँ ।
 तू करती है बहस वृथा मैं भूँस कहाँ तक सहा करूँ ॥
 तू न सही तरी मों होगा,” यों कह कर वह मरुट पड़ा ।
 भेड़ विचारी निरपराध को तुरत खा गया खड़ा खड़ा ॥

जो जालिम होता है उससे बस नहीं चला सक्त ।
करने को वह जुल्म बहाने लेता दूँद अनेक ॥

७

धोबी और गधा

किसी एक धोबी ने कपड़े ले आने ले जाने को ।
एक गधा पाला, पर उसको देता थोड़ा खाने को ॥
एक बार धोबी कपड़े धो चला घाट से आता था ।
कपड़ों से गद्दे को उसने बुरी तरह से लादा था ॥
पडता था रास्ते में जगल वहाँ लुटेरे दाम पाते ।
हर से होश उड़े धोबी के और रोगटे हुए सड़े ॥
कहा गधे से, "अबे, भाग चल, देख, लुटेरे आवेंगे ।
मारें पीटेंगे मुझको वे तुम्हे छीन ले जावेंगे ॥"
कहा गधे ने धोबी से तब "मुझे छीन वे क्या लेंगे ?"
धोबी बोला, "बड़ी बड़ी गठरी तुम्ह पर वे लावेंगे ॥"
कहा गधे ने, "दया करो मत उनसे मुझे बचाने जे ।
नहीं नेक भी चिन्ता मुझको उनसे पकड़े जाने को ॥"
'मेरे लिये एकसा ही है, जहाँ कहीं भी जाऊँगा ।
वहाँ लदेगा वोम बहुत, औ थोड़ा भोजन पाऊँगा ॥
"मुझे आपके पास अधिक कुछ भी सुख की आशा होती ।
संग तुम्हारे तो अवश्य रहने की अभिलाषा होती ॥"

रमा देवी

श्रीमती रमा देवी का जन्म संवत् १९४० में प्रयाग में हुआ ।

आपके पिता का नाम पं० रामाधीन दुबे और माता का नाम कौशिल्या देवी था । आपके पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । पं० रामाधीन दुबे एक अच्छे इंजीनियर थे । ये पैकोली जिला रायबरेली के रहने वाले थे । श्रीमती जी को विद्याभ्यास घर पर ही कराया गया । बाल्यकाल में मिसेज़ ब्राह्मो नामक एक ईसाई महिला द्वारा आपको शिक्षा प्राप्त हुई । आप अपनी पिता की चौथी सतान हैं ।

आपका विवाह ८ वर्ष की अवस्था में पं० ललिताप्रसाद त्रिपाठी के पुत्र पं० चंद्रिकाप्रसाद तिवारी से प्रयाग के निहालपुर गाँव में हुआ । ससुराल जाने के बाद भी आप उक्त मेम साहब से सिलाई और संतान-पालन-विधि आदि अनेक महिलोपयोगी कार्य सीखती रहीं । आपने दस वर्ष तक उक्त मेम साहब से शिक्षा प्राप्त की ।

पंजाब से मुंशी रोशनलाल की धर्मपत्नी श्रीमती हर देवी 'भारत-भगिनी' नाम की पत्रिका निकालती थीं । वे श्रीमती रमा देवी को प्रोत्साहन दिया करती थीं । इससे ये कविता भी थोड़ा-थोड़ा लिखने लगीं । पहले ये मामूली गाने-बजाने के भजन आदि बनाया करती थीं । अनेक दिनों के अभ्यास और कविता-प्रेम से ये अच्छी कविता लिखने लगी । कुछ दिन बाद ये कानपुर के प्रसिद्ध पत्र 'रसिक-मित्र' में समस्या-पूर्तियाँ छपवाने लगीं । फिर 'भारत-भगिनी' 'स्वदेश-बाँधव'

‘मर्यादा’ ‘प्रियवदा’ और ‘जाह्ला’ आदि पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविता प्रकाशित होने लगी ।

व्याह हो जाने पर जब इनकी सास का देहान्त हो गया तब घर का सारा भार इनके ऊपर पड़ा । इनके दय सताने हैं । सात पुत्र और तीन पुत्री । इनकी ज्येष्ठ पुत्री हिन्दी का प्रेमिका हैं । उनका नाम पशोषता देवा है । इन्होंने सुभद्रा नामक एक बंगला पुस्तक का अनुवाद किया है । कुछ दिन प्रयाग का फ्राम्पेट कालेज में अध्यापिका भी रह चुकी हैं । धामती रमा देवा ने ‘अत्रला पुकार और ‘रमा विनोद’ नामक प्रकाशित और कई अप्रकाशित पुस्तकें लिखी हैं जो अच्छी हैं ।

आज कल आप बाल-बच्चों के पालन-पोषण के क्लम में पढ़कर कविता बहुत कम लिखती हैं । आप पुराने ढंग की खा हैं, इसलिए पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा लिखना पसंद नहीं करतीं ।

रानापुर बाँदा निवासा ५० हनुमान्नीन मिश्र आपका बहुत मानने थे । वे इन्हें कभी कभी उपदेश और कविता-सम्बन्धी इसलाह दिया करते थे । श्रीमता जी की कविता अच्छी हाती है । समस्या-पूर्तियाँ सुन्दर करती हैं । भाषा मज और खरी दोना लिखनी हैं । इस समय आपका अवस्था ४१ वर्ष का है । आपका कविता के कुछ नमूने नाचे दिये जाते हैं —

१

स्याम के नैन निहारत ही सखी साँची कहीं जिय होत अधीर है ।
कीर्षी सुधाकर में धन घूमत बन्द नहीं बरसावत नीर है ॥

कीधौ गयो छलि मीन प्रवीन सो प्रेम-पयोधर जानि गँभीर है ।
भौंह 'रमा' रतिनायक के धनु ताकन मे वरसावत तीर है ॥

२

घन-रहित नभ-नील प्रगटे धौ सखी शृंगार है ।
रेख केशर की सरी भ्रूशीलता की भार है ॥
चंद्र चंदन चंद्रिका की दामिनी द्युति जालिमा ।
वाल दिनकर भाल रोरी की मनोहर लालिमा ॥
मैं थकी छवि देख कर धौ आजु मारुत धीर है ।
देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥
दो पुरन्दर चाप सुन्दर भावनी भ्रू-वंकता ।
धौ निसाकर नीलघन-युत दिव्य लोचन लोलता ॥
धौ य छवि शृंगार है आगार अमृत के भरे ।
तान सुन कर बाँसुरी की रूप लोचन का धरे ॥
है निशाकर या दिवाकर ने किया रथ धीर है ।
देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥
नवल नीरज नील जल पै धीर निरखन की छटा ।
धौ सखी मृदु वाल ससि पै साँवरी घेरी घटा ॥
धौ सजग भू भौर जल मे मीन युग छवि में फँसी ।
धौ चपल ससि की कला प्रतिविम्ब वन जल में धँसी ॥
चित्त चंचल धौ अचचल आजु जमुना नीर है ।
देखु आली छवि निराली आजु जमुना तीर है ॥

घों सघन वन की सघनता में गुलाबों की कली ।
 मद मारुत गुज मधुकर मान मयने को चली ॥
 भौंह कीर्णो पुष्प-शायक हाथ में रतिनाथ के ।
 है 'रमा' मूर्ति मनोहर देव कर लोचन थके ॥
 तीर है रतिनाथ की दर में अनोखी पीर है ।
 देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥

३

हेयों फे पढैया पै गढैया पढै नीकी करें,
 कालिजी कासाला पै परीचा पाठशाला की ।
 धनो है सुनारों की पसाड़ा भये मालामाल,
 गौने चली घाला आली देखें लब्धी माला की ॥
 मकर नहाने चले बौंध के पजाना यात्रो,
 पाला पढै, पढे अडै याचना दुशाला की ।
 जाहिरे महन्त 'रमा' देखो छैल कोठियों में,
 हो गये दिवालिये बहार बदी प्याला की ॥

४

कूप तलावन सूत्र 'रमा' जल बैल बिके घर धान कहाँ है ।
 छीज गये पट भूष सतावत फागुन को ढरु गान कहाँ है ॥
 कोटि उपाय करे जनता अब कौंसिल में वह जान कहाँ है ।
 डिम्बिक बोर्ड करे कुद्द तो अब भारत को अभिमान कहाँ है ॥

५

मानी ब्रह्म बानी सो पताल जान ठानी चली,
 मुक्ति की निसानी धार चाहत फटी सी है ।
 आये भई दंग लोप गंग की तरंग देख,
 संभु की जटा की छटा धुर लौं अटी सी है ॥
 देख के अखण्ड तप गंगा जी प्रचण्ड 'रमा',
 त्याग के घमड सम्भु सीस से छटी सी है ।
 भूप-पित्र-तारन को नर्क से उवारन को,
 पन्नगी पिनाकी पग पूजि पलटी सी है ॥

६

नहिं जानत खेल खेलाड़ी बने मन आपन हार गये अब सेते ।
 बसते नहिं मान सरोवर मे बसते चलि अन्त कहुँ अब चेते ॥
 बसते तब पश्चर के बन के पग भूलिहु प्रेम के पंथ न देते ।
 वह प्रीति सराहिये मीत 'रमा' पग काट के सग हमें कर लेते ॥

७

हम चाहैं तुम्हे सो भले ही कहैं हम मे तुम्हरो इतवार नहीं ।
 तुम आग से खेलत हो दिल पै हमरे कहो दाग-दरार नहीं ॥
 हम होत निसा नित आवत हैं तुम्हरे मिलने को करार नहीं ।
 सच प्रेम को पंथ कराल बड़ा सुनो खाना कहीं तुम हार नहीं ॥

८

चीज भई मँहगी है बजार में गेहूँ लगा अब डेढ़ अढ़य्या ।
 भूखे रहैं तन ढाँक सकैं नहिं भारत के सिसु लोग लुगैय्या ॥

दिल भी पत्थर का बना हिलता नहीं डुलता नहीं ।
 मुँह से उगले आग के जलते लुआरे आपने ॥
 चाल चल करके खनाखन से भरी हैं कोठियाँ ।
 देश की क्या कम किया इतनी भलाई आपने ॥
 बेगुनाहों का गला घोटा तरक्की पा गये ।
 जड़ दिये तारीफ पै सालमे सितारे आपने ॥
 दर्द शिर होता है सुन करके गरीबों की पुकार ।
 शान का जौहर नहीं कब है दिखाया आपने ॥
 देख कर आँखों मे आँसू लुक्त, आता है तुम्हे ।
 मुँह चले कब दिल जलो पर तर्स खाया आपने ॥
 पंगुलों की भीख पर तुमको हसद होती रहे ।
 रूवाव मे खैरात का आँसू बहाया आपने ॥
 ऐश मे देखा कभी कुछ कुढ़ गये कुछ लड़ गये ।
 नेकनीयत वन कभी करतब निभाया आपने ॥
 तङ्ग गलियों मे कभी तो आप हैं जाते नहीं ।
 मेम्बरी के वक्त तो चक्कर लगाया आपने ॥
 चाल चलते कौसिलो में आप जाने के लिये ।
 सर हिलाने के सिवा क्या कर दिखाया आपने ॥
 देश के हित के लिये एक दो कदम चलते नहीं ।
 घिस न जावे पाँव खुद पै रहम खाया आपने ॥

'रमा' सलूक कुमित्र को, सत्यरथी को दान ।
 ये दोउ मिथ्या जानिये, उलटि होय अपमान ॥
 मूरख हरि को खोज ही, सहि दुख चारो धाम ।
 ज्ञानी घर बैठे लखै, घर घर व्यापक राम ॥
 'रमा' क्रोध जड पाप की, क्षमा धर्म का बीज ।
 योग क्षमा तप क्षमा सो, जाये शत्रु पसीज ॥
 समय पड़े पै बढ़ेन सो, कबहुँ न माँगन जाय ।
 थोड़े दामन पै रमा, कुल मरयाद विकाय ॥
 वे बोले पर घर घर गये, बात कहत मुसुकात ।
 'रमा' अनादर होत है, वे पूँछे कहि बात ॥
 धरि धीरज सहिये विपत, काहु दोखिये नांय ।
 विनु हरि के चाहे 'रमा', तन को सकत हिलाय ॥
 'रमा' प्रीति अतुलित नसत, कपट फिटकिरी पाय ।
 सियसम सहि रघुवर वचन, पलटि धँसी महि धाय ॥
 'रमा' समय जैसो रहै, तैसी बात सुहाय ।
 शिशु पुपलो प्यारो लगे, ज्वानन रूप नसाय ॥
 'रमा' समय पर भ्रात सो, भ्रातहुँ माँगन जाय ।
 होत सहाय सपूत मुख, लेत कपूत छिपाय ॥

स्त्री-कवि-कौमुदी



श्रीमती राजदेवी

सं० १९६६ ई० से आपने कविता लिखना शुरू किया। आपकी कविता प्रायः हिन्दी के सभी पत्रों में प्रकाशित होती थी। पत्र और पत्रिका में 'मय्यादा' 'राजपूत' 'स्वदेश-चान्धव' 'रसिक-मित्र' मुख्य है। आपकी कविता सुन्दर और परिमार्जित होती है। आपने यद्यपि कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी हिन्दी की स्त्री-कवियों में आपकी गणना है। आप सहारनपुर के एडवर्ड गर्ल्स स्कूल की हेडमिस्ट्रेस और देहरादून के कन्या गुरुकुल में अध्यापिका भी रह चुकी है। आपको कई कवि सम्मेलनों से पुरस्कार तथा पदक भी प्राप्त हो चुके हैं। आपके पुत्र का नाम श्रीयुत वीरेश्वर सिंह है जो अच्छी कविता करते हैं।

इधर कई वर्षों से आपने कविता लिखना बन्द कर दिया है। आपकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

फूले हैं फूल गुलाबन केलनि वेलनि और अनार कली के।
 फूल सिँ गार किये सरसो अरु लागे सुधा फल डार अमी के ॥
 जाही औ जूही चमेली खिली तहँ चम्पक फूल हैं भावत जी के।
 फूल पलास विकास भये वन भूलत हैं मन मंजु अली के ॥

२

लखि बसन्त के आगमन, भे सव फूल विकाश।
 मानहु तन सिंगार घर, कीन्हे ऋतुपति वास ॥

३

वसंत-वहार

महाराज ऋतुपति आय गये। कुसमावलि कुंज दिखात भये ॥

६

देश की दुर्दशा

लखि देश की आरत दशा व्यापी मुझे इतनी व्यथा,
 मुझ से रहा जाता नहीं है बिन कहे दुख की कथा ।
 जीवन हमारा आजकल है हाथ पशुओं से गिरा,
 हा ! धिर रही है कौन जन से आज यह प्यारी धरा ॥
 वैभव विमल गौरव हमारा पूर्व का जाता रहा,
 जिस शक्ति से भारत भुवन-शिरमौर कहलाता रहा ।
 गुण-हीन भारत होगया धन-हीन भारत होगया,
 बहु दीन भारत होगया सब भांति आरत होगया ॥
 हिरदय विदारक है दशा जाता कलेजा है फटा,
 होता है क्या अब शोक से जो समय हाथों से छटा ।
 लख लख दशा इस काल के गाते पुरानी हम कथा,
 पर यन्न कुछ मन में न आता दूर हो जिससे व्यथा ॥
 इस देश की समता अगर हम अन्य देशों से करें,
 अबलोक तिनकी नव-फला दग लाज से नोचा करें ।
 इस देश में मति-हीनता अरु फूट की ज्वाला दहै,
 देखो विदेशों में सुविद्या शान्ति की धारा बहै ॥
 देखो विदेशों में अहा ! व्यापार कितना बढ़ रहा,
 हर साल ही दिन दिन निहारो लाभ कितना हो रहा ।

हाय वीर भारत इस अवसर हुई दशा क्या तेरी है ?
 केसर कहाँ और कस्तूरी कहाँ कपूर की ढेरी है ।
 गूगुल गाद, दोष हरणी मधु भी अब नहीं घनेरी है ?
 सुवरण खान कहाँ हीरो की गजमुक्तन अधिकारी हैं ।
 धन से सुखी कहाँ नर नारी मिलते नहीं भिखारी हैं ?
 विलग विलग ये बनी हुई अति सुन्दर सुन्दर क्यारी हैं ।
 कहाँ पाय जलवायु सुहावन उपज अन्न का भारी है ।
 हरी हरी है भरी अन्न से देखत लगती प्यारी हैं ?
 जान सुफल निज कार्य कृषक जन होते परम सुखारी हैं ?
 कहाँ फलों से लदे हुये तरु हरी हरी सब डरी हैं ।
 सुरभित फूल खिले कुञ्जन मे गुजंत भृंग सुखारी हैं ?
 सुभग जलाशय मे निर्मल जल अरु शत पत्र दिखाते हैं ।
 ठौर ठौर पर अहा कहाँ हम ऐसी शोभा पाते हैं ?
 कहाँ विहंग वर करें किलोलें कलरव नाद सुनाते हैं ।
 कोयल कूक और केकी के श्रवण-पुटो को भाते हैं ?
 सरस्वती का कहाँ धाम है कहाँ शान्ति विस्तारी है ।
 सत्य धर्म महाराज आपकी छाया किधर सिधारी है ?
 कहाँ तेजमय वीर पुरुष वे जननी रक्षाकारी हैं ।
 जिनके बल थी थमी धरणि अब यह भी दुखी विचारी है ?
 हुई सभी सपने की बातें अजहुँ याद वह आती हैं ।
 सोच २ वह पूरव-गौरव हाय सुलगती छाती है ?

रामेश्वरी नेहरू

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू का जन्म स० १९४९ में हुआ। आपके पिता का नाम श्रीमान् राजा नरेन्द्र नाथ एम० एल० ए० है जो लाहौर के सुप्रसिद्ध व्यक्ति है। राजा साहब हिन्दू महासभा के सभापति भी रह चुके हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जी को बाल्यकाल में फ़ारसी और अरबी की शिक्षा दी गई। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार ये अल्पकाल से ही होनहार दिखलाई देती थीं। तन्न्तर आपने अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया। आपका विवाह प० मोतीनाल जी नेहरू के भतीजे पंडित प्रजलाल नेहरू के साथ हुआ। प० प्रजलाल नेहरू गवर्नमेन्ट आफ़ इन्डिया के आर्टीटर जनरल हैं। श्रीमती जी को लोग 'ब्रजरानी' के नाम से अक्सर पुकारते हैं। काश्मीरियों में यह रिवाज है कि आधा पति का नाम रख कर उसके आगे 'रानी' शब्द जोड़ देते हैं, वही नाम स्त्री का होता है। इसी से इन्हें लोग 'ब्रजरानी' कहते हैं। आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हैं।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को हिन्दी से पहले ही से बहुत प्रेम था। जब ये प्रयाग में आईं तब इन्हें 'स्त्री-दर्पण' नामक हिन्दी की पुरानी पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण करना पड़ा। इन्होंने उस पत्र का कई वर्षों तक बड़ा अच्छा सम्पादन किया। आपने कई पुस्तकें लिखीं

आप में सरलता और नम्रता कूट कूट कर भरी है। विदुषी होते हुए भी आपको गर्व नहीं है। प्रायः उर्दू के ढङ्ग पर आप कविता भी सुन्दर करती हैं। आपकी कविता का एक नमूना देखिये :—

सरोजिनी-स्वागत*

१

चमन में आज ये कैसी बहार आई है ।
कली कली-को हँसी बेकरार आई है ॥
गुलो का रङ्ग भी शबनम निखार आई है ।
नसीमे-सुन्नह जहाँ मे पुकार आई है ॥
नसीब जाग उठे, आई हैं मिन्नतें दिल की ।
कमल के फूल से रौनक हुई है महफिल की ॥

२

प्रयागराज मे आईं सरोजिनी देवी ।
खुद आमदीद का है शोर, हर जगह है खुशी ॥
है सच तो ये कि, हमारी कहाँ ये किस्मत थी ।
जवाने हाल से यह कहती है महिला-समिति ॥

❧ यह कविता श्रीमती नेहरू ने, प्रयाग में श्रीमती सरोजिनी नायडू के पधारने पर, प्रयाग-महिला-समिति की धोर से स्वागत करते हुए पढ़ी थी ।

हमारे दिल की बस अब आरजू ये पैहम है ।
 जो और ऐसी ही कुछ दम हों फिर तोक्य गम है ।
 जो दर्द दुःख है तो सब मिल के खाक हो जाय ।
 हमारा मुल्क मुसीबत से पाक हो जाय ॥

(६)

अदाए शुक्र में इनके जवान कासिर है ।
 जो हम पे इनका है अहसाँ वो सब पे जाहिर है ।
 की जात इनकी मददगार और नासिर है ।
 ये अपने सनफ की मंजूर इनको खातिर है ।
 कि इतने दूर से आई हैं और जहमत की ।
 मगर हैं रज हमें ये कि कुछ न खिदमत की ॥

(७)

दुआ है, रक्खे खुद जब तक है आस्माँ वाकी ।
 जमीं को घेरे हुए है ये लामकाँ, धाकी ।
 है रोज़ो-शवनमो इशरत की दास्ताँ वाकी ।
 हयातो मौत है और गर्दिशे जहाँ वाकी ।
 कमल खिला हुआ दिल का वा आब्रोताव रहे ।
 तुम्हारा नाम सदा मिसले आफ़ताव रहे ॥



शाम से रात तसौअर में गुजारी मैने ।
 क्या बिगाड़ा था मेरी जान सजा दी तूने ॥
 जान जाती है मेरी तुम्हको मजा आता है ॥
 वादा करके भी मुहब्बत को घटा दी तूने ॥
 तुम मिलो या न मिलो मैं तुम्हे भूलूँगी नहीं ।
 मिल गये गर तो जी 'कीरति' को बना दी तूने ॥
 रात भर वस्ल मे मिल करके मजा दी तूने ।
 लगी थी आग मेरे दिल में बुझा दी तूने ॥
 मिले गये नन्दलला क्या करूँ उनकी मैं अदब ।
 लेके उल्फत का मजा खूब चखा दी तूने ॥
 रात की बात सखी क्या कहूँ कुछ कह न सकूँ ।
 मिल गये श्याम मुझे रात जिला ली तूने ॥
 हो गये कीर्ति-पिया अब न किनारा करना ।
 अब तो मिलना पड़ेगा वान लगादी तूने ॥

❀ ❀ ❀

कहा सखी ने श्याम का पयान मथुरा का ।
 तो दम निकल गया सुनते ही नाम मथुरा का ॥
 मैने उनसे था कहा प्रीति ना निवाहोगे ।
 नाम ले चल दिये नँदलाल आज मथुरा का ॥
 अब न छोड़ो यहाँ सोचो जरा घनश्याम मुझे ।
 जीती न पावोगे भुलाओ नाम मथुरा का ॥

आँख मुँदती देखती त्योही वही सुचि मूर्ति है ।
 आँख जो खुलती वही तस्वीर फिर बेकार है ॥
 याद करके बल व बुद्धी गुण तुम्हारे कलपती ।
 पर करूँ क्या भाग्य से अपनी सदा ही हार है ॥
 प्रिय वचन कानों में पड़ते थे जो प्रियतम आपके ।
 फिर सुना दो चाहना वह प्रति घड़ी प्रतिवार है ॥
 हाय जो पाती तुम्हें छाती लगाती प्रेम से ।
 पर कहाँ खोजूँ न सूझे यह जगत अंधियार है ॥
 देख लो राजन् ! तुम्हारी रो रही सारी प्रजा ।
 तुम नहीं करते दया बस क्या यही उपकार है ॥
 सब कुटम्बी सुहृद गण इस दुःख से परिपूर्ण हैं ।
 शोक घन थामे हुए सूना पड़ा दरवार है ॥
 दीन गौशाले की गायें विन सहायक हो गईं ।
 रौंभती हैं नाद करती हाय ! हाहाकार है ॥
 देश हित यह जगत हित के वास्ते था पुन किया ।
 स्वामी इस धोखा धड़ी का हाय .पारावार है ॥
 प्राण-प्यारे हा दुलारे छिप कहाँ ऐसे रहे ।
 खोजती दासी मगर पाती नहीं लाचार है ॥
 आप की तो इस जुदाई से कलेजा फट रहा ।
 बहुत समझाती न रुकती आँसुओं की धार है ॥

‘कीरति’ उन निवसतु युगल प्रिये,
रहे ध्यान सदा तव युगन पगन ॥

४

हमारे श्यामसुन्दर को इशारा क्यो नहीं होता ।
पड़ा है दिल तड़पता है सहारा क्यो नहीं होता ॥
हुई मुदत से दीवानो न तूने खबर ली मेरी ।
मरीजे इश्क में मरना हमारा क्यो नहीं होता ॥
न कल दिन रात है मुझको जुदाई में तेरे प्यारे ।
लवो पर जान आई है सहारा क्यो नहीं होता ॥
न दुनियाँ मुझको भाती है न मैं भाती हूँ दुनियाँ को ।
मगर ‘कीरति’ का दुनिया से किनारा क्यो नहीं होता ॥

५

कृष्ण-जन्म

सगुण स्वरूप सर्व व्यापक त्रिलोकीनाथ,
जोई देवि देवकी के जनम लेवैया हैं ।
जोई देवकी की पायँ-वेडी कटाकट्ट काटि,
द्वार फट्टाफट्ट कारागार उघरैया हैं ॥
विविध प्रकार वासुदेव को चुलाय जोई,
ढाढस बँधाय नन्द-ग्राम पधरैया हैं ।
सोई दीनानाथ आज ‘कीरतिकुमारी’ गृह,
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं ॥

दुखदाई कंस को विध्वंस के सुईस जोई,

निज दीन दासन के दुख के हरैया हैं ।

सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी, गृह,

जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं ॥

७

मुनि सिद्ध सब हर्षाय किन्नर, यज्ञ गन्धर्व आपही ।

चढ़ि चढ़ि विमानन अमित सुरगण, तियन सँग नभ छावही ॥

टुन्दुभि बजावत गीत गावत, अमित सुख उपजावही ।

शुभ करत कलरव सुर मिले सब, जयति जयति उचारही ॥

फल फूल वरसत करत जय सब, जात सुख नहि मुख कहे ।

नभ सुनत धुनि है पुलकि ब्रज-जन, धन्य ब्रज सवने कहे ॥

सुर तिय सिहाँती बात कहतों, धन्य हैं ब्रज की तिया ।

है भाग्य नहि इन सरिस हमरी पुन्य क्या इनने किया ॥

तोरन देवी शुद्ध 'लली'

श्रीमती तारन देवी शुद्ध 'लली' का जन्म स० १९२३ धावण शुद्ध द्वादशी को जिला जयलपुर के पिपरिया नामक ग्राम (इनकी नमिहाल) में हुआ । आपके पिता प० कन्हैयालाल तिवारी प्रयाग के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में हैं । इनके पितामह का नाम प० लालताप्रसाद त्रिपाठी कान्यकुब्ज जाति तथा समाज में बड़े प्रतिष्ठित और गव्यमान्य व्यक्ति थे । आपका घर जिला उस्ताव क दिलवल नामक ग्राम में है । सन् १९२७ ई० के गदर के समय से आप प्रयाग में निवासस्थान बना कर रहने लगे ।

जब ये गम में थीं तब उन्हीं दिनों इनके माता पिता कारण वध गुजरात गये थे । वे जब लौटने लगे तो वहाँ की सबसे प्रसिद्ध और महिमामयी देवी "तारनवाली माता के दर्शनार्थ गये । वही उन्हींने एक प्रतिभामयी पुत्री की अभिलाषा की थी । इसीलिये जब ये पैदा हुईं तो उन्ही देवा के नाम पर इनका नाम 'तोरन देवा' रखा गया ।

श्रामती तारन देवी के पिता जी और पितामह कन्यायों को स्कूल भेजने के पक्षपाता नहीं थे इसलिये इनको सब प्रकार का शिक्षा घर पर ही दी गई । ये ६ वर्ष का अवस्था में हिन्दी भोजी भाँति साध गई । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का सारा श्रेय इनकी

माता जी को है। तोरन देवी जी की प्रारम्भ ही से हिन्दी की ओर विशेष रुचि देख कर इनके पिता दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकायें मँगवाते थे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी रुचि कविता की ओर झुकी। इनके पिता जी के दफ्तर में एक क्लर्क थे जिन्हें कविता का अनुराग था। इनके पिता स्वयं एक काव्य-रसिक सज्जन हैं। उन्होंने एक बार क्लर्क साहब को एक समस्या दी—“केहि कारण सतन बाँधी लँगोटी”—इसकी पूर्ति क्लर्क साहब ने कलयुग-सम्बन्धी कई बातों को लेकर किया। जिसमें एक लाइन यह भी थी कि—“नारि भई कुलटा उलटा पति को दुत्तकार धरै सिर भोटी”—इनके पिता जी उस कविता को घर पर लाए। श्रीमती तोरन देवी यद्यपि उन दिनों छोटी थीं परन्तु अपनी माता के कहने से इन्होंने उक्त कविता के प्रतिवाद में एक सवैया लिखा। इनके पितामह वह सवैया सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुये। इनके कविता-काल की यही प्रथम कविता थी।

इनके पिता जी के दो विवाह हुये थे जिनमें प्रथम (इनकी विमाता) के पिता स्वर्गवासी प० हनुमानदीन मिश्र राजापुर, बांदा के एक प्रसिद्ध कवि और राजवैद्य थे। इन्होंने 'रसिक-मित्र' की एक समस्या-पूर्ति करके मिश्र जी के पास शुद्ध करने के लिये भेजा। नाना जी की शिक्षा से इन्होंने पित्रल सम्बन्धी कई पुस्तक पढ़ीं। इससे अनन्तर इनका अभ्यास कविता में बढ़ने लगा। 'रसिक-मित्र' आदि उस समय के प्रतिष्ठित पत्रों में इनकी कविता प्रकाशित होने लगी।

आपकी रचनायें ललित, मधुर और काव्य के गुणों से झलकृत रहती हैं। हम आपकी रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

अनुरोध

ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ।

कह कर उपदेश सुनाने से,

जिनका सत्कर्म प्रधान रहा ।

परहित में जीवन धारण था,

परिपूर्ण अलौकिक ज्ञान रहा ॥

अभिमान नहीं जिन हृदयों में,

उनका जग में अभिमान रहा ।

जो समझ चढ़े बलिदेवी पर,

बलिदान वही बलिदान रहा ॥

रणवीर ! इन्हीं आदर्शों को, नित रीति नई से दरशाना ।

ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ॥

जिसमें लालसा प्रधान रही,

वह प्रेम नहीं वह भक्ति नहीं ।

जो सहम उठे बाधाओं से,

वह वीर हृदय की शक्ति नहीं ॥

विचलित हो मायाजालों से,

त्यागी की पूर्ण विरक्ति नहीं ।

कितना तुमको खोज चुकी हूँ,
जिसका वार न पार ।

मुझसे मिल जाना इकवार ॥

सरिता की गति मतवाली मे, प्रिय बसन्त की हरियाली में ;
बाल प्रभाकर की लाली मे, निशानाथ की उजियाली मे—
आशावादी बन कर लोचन,
अब तक रहे निहार ।

मुझसे मिल जाना इकवार ॥

अब देखूँगी उत्थानो में, देश-प्रेम के अभिमानो मे;
वीर श्रेष्ठ के गुण गानो मे, अमर सुयश 'सद-सन्मानो मे—
दर्शन होते ही तज दूँगी—
हिय वेदना अपार ।

मुझसे मिल जाना इकवार ॥

३

उत्कंठा

मन मोहन श्याम हमारे !

अब फिर दर्शन कब दोगे ?

शबरी गणिका गीध अजामिल,

सब को लिया उवार ।

द्रुपद-सुता की लाज बचा कर,

कर गज का उद्धार ॥

क्या शान्ति चाहते हो तुम, गृहणी गण को फुसलाकर ?
बंधन कैसे रख लोगे, उस क्षण भी उन्हें भुला कर ?

जब प्रतिहिंसा का भाव उठेगा—

भूम सभी हृदयो से ।

अब भी यदि रखना चाहो, दृढ़ सदाचार सुविचार ।
कर दो दूर आज परदे सा, अन्तिम अत्याचार ॥

इस घूँघट ही के पट में—

क्या क्या नहुआ सदियों से ।

बना आज कर्तव्य तुम्हारा, जगना और जगाना ।
बिखर गईं जो विमल शक्तियाँ, फिर से उन्हें मिलाना ॥

देखो प्रस्तुत हो जाओ,

सहसा इस शुभ घड़ियों से ।

दे कर विद्यादान बनादो, शिचित्त सुमति उदार ।
महिलाओ मे ज्योति जगादो, जीवन की इक्वार ॥

तब आशीर्वाद लहोगे—

फिर 'लली' श्रेष्ठ सतियों से ।

५

कर्मभूमि

अब उठो चलो बढ़ चलो वीर । है यही तुम्हारी कर्मभूमि ।

इस पर भगवान अवधपति ने,

निश्चर कुल का संहार किया ।

धीर वीर हित दया-सिन्धु हो ।

शत्रु गणों के अजय सिंह हो,
जननी जन्मभूमि के सेवक,

या तुम हो परहित साकार ।

दीन देश के प्राणाधार !

महत् पुरुष के हृदय विमल से,

दीन दुखी के नयन सजल से,

शोक नशावनि के कल कल से,

सदा तुम्हारी ही सुन पड़ती,

विश्व-न्यापनी जय जय कार ।

दीन देश के प्राणाधार ।

स्नेहमयी माँ के नयनों में,

देशप्रेम मद-मत्त जनो में,

देव ! तुम्हारे पदपद्मों में,

बड़े यत्न से चिर संचित यह-

अर्घ्य 'लली' का हो स्वीकार ।

दीन देश के प्राणाधार !

७

कलिका

नव कलिका तुम कव विकसी थीं,

इसका मुझको ज्ञान नहीं ।

यदि मिल जावें युगल चरण वह,
तुम उन पर बलि हो जाना ॥

८

प्रमाण

सादर सस्नेह प्रणाम मेरा, उन चरणों पर शत कोटि वार ।

माता के लाल लड़ैते थे,

भगिनी के वीर बाँकुरे थे,

सौभाग्यवती जीवन के वे-

जीवन थे प्राण पियारे थे ।

वे सब की भावी आशा थे, थे जन्मभूमि के होनहार ।

वे देश-प्रेम मतवाले थे,

माता के चरणपुजारी थे,

पुरुषों में थे वे पुरुष सिंह,

कर्तव्य धर्म व्रत-धारी थे ॥

प्राणों को हँस छोड़ दिया, पर प्रण न गया चनका अपार ।

वे ज्ञानवान थे योगी थे,

अनुपम त्यागी थे सज्जन थे ।

वे वीर हठीले सैनिक थे,

तेजस्वी थे विद्वज्जन थे ।

कर्तव्य कर्म की ओर चले, फल की सारी सुष-नुष विसार ।

कह दो उन अवधेश कुँवर से, रखले अब भी लाज ।
 नित्य पराजित हुए पुण्यतिथि, आवेगी किस काज ॥
 मेरी विजयादशमी आज ॥

१०

स्वर्ण-दिवस

अब शुभागमन तेरा है ।
 हौं स्वर्ण दिवस मेरा है ॥
 तेरा ही करते हैं निशि दिन, महत पुरुष अहान ।
 तेरे लिये देश के अगणित वीर हुये बलिदान ॥
 अब मधुर मिलन तेरा है ।
 हौं स्वर्ण दिवस मेरा है ॥
 मिल जाने ही की आशा से की थी करुण पुकार ।
 पाकर तुम्हे सिंह की नाईं देश उठा हुंकार ॥
 धनि यह प्रभाव तेरा है ।
 हौं स्वर्ण दिवस मेरा है ॥
 'लली' रहे युग युग में तेरा, अचल अटल सुविकाश ।
 हो प्रत्येक हृदय मे तेरी उज्ज्वल ज्योति प्रकाश ॥
 यह अमर गान तेरा है ।
 हौं स्वर्ण दिवस मेरा है ॥

अतुलित बलधारी अति दयाल,
 जय जगत-शिरोमणि वीर वेश ॥ १ ॥
 पूरित सुन्दर षट्चतु अनूप,
 रत्नक पयोधि हिम शैल-भूप ।
 जय सत्य न्याय अरु धर्म रूप,
 जय तीस कोटि संतति विशेष ॥ २ ॥
 शुभ पावन प्रिय अनुरक्ति देत,
 निज भक्त जनन को भक्ति देत ।
 रणवीर मुजन को शक्ति देत,
 प्रिय भारत तव महिमा अशेष ॥ ३ ॥
 जय जय भारत जय जय स्वदेश—



श्रीमती जी का परिचय प्रयाग,की 'गृहलक्ष्मी' की सम्पादिका श्रीमती गोपाल देवी और डा० प्रेमचन्द्र जी की धर्मपत्नी से विशेष कर था। आप की मृत्यु संवत् १९८० में बहुत थोड़ी उम्र में हो गई। कई वर्ष बाद इनके पति इन्हें एकाएक छोड़ कर कहीं चले गये। पति-वियोग यह सह नहीं सकी। मरते समय भी आपने कहा था—'मरती हूँ जिसके इश्क में उसको खबर नहीं।' श्रीमती जी यद्यपि बहुत मशहूर नहीं हैं तो भी आपकी रचना मधुर और ऊँचे दर्जे की है। खड़ीबोली की रचनाओं में उत्तम स्थान दिया जा सकता है। आपकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं :—

१

मेरी इच्छा

परमेश्वर की मूर्ति निहारी मैंने अपने प्रियतम में !
 सत में देखी रज में देखी देखी मूर्ति वही तन में !
 उसी मूर्ति को हँसते देखा और खोजते भी देखा !
 व्याह-पाप करने के कारण हाथ-मींजते भी देखा !
 नहीं चाहती हूँ धन कोई नहीं मान की भूखी हूँ !
 रिश्तेदारों को भूली हूँ, सब दुनियाँ से रूखी हूँ !
 यहीं चाहिये कहे 'प्रियंवदा' निशि दिन कष्ट उठाऊँ मैं !
 वारह घन्टे में प्रियतम को एक बार पा जाऊँ मैं !

पढ़ाओ ! मैं भी पढ़ लूँगी !

नहीं तो अपना सर दे दूँगी !

हंस हमारे सुआ हमारे, प्रियतम जीवन—मूल !

द्वैत पंथ में दो वन खुद ही, क्यों देते अब शूल ?

नहीं—मैं बदला क्यों दूँगी ?

बार अपने ऊपर लूँगी ?

शिव तुम शक्ति रूप में तेरी, जग मे दो तस्वीर !

शक्ति स्वरूप, सिया—राधा सम, फूटी मम तकदीर ?

समय विपरीत निभा लूँगी !

प्रेम की लाज बचा दूँगी !

सीता प्रति श्रीराम निठुर हैं, राधा प्रति गोपाल !

सती समस्त निठुर शंकर मैं, यही—सदा की चाल !

अनोखी बात न कह दूँगी !

डाल दो पत्थर, सह लूँगी !

सहन, क्षमा दो चरण हमारे, प्रेम हमारा लक्ष !

साक्षी सर्व विश्व है मेरा, कहती—ईश समस्त !

न तुमको ताना भी दूँगी !

बनेगा जैसा—जी लूँगी !

३

न जानूँ आज क्यों मुझ से, खफा सरकार बैठे हैं !

न चहरा भी दिखाते हैं, हुये बेजार बैठे ह !

६

प्रस्थान

चलोरे मन चित्रकूट की ओर !

कलि-मल विषय भयानक दुस्तर , नित्य जनानै ओर !
 तीन ताप, सन्ताप पाप बहु , मोह लोभ मद घोर !
 बहुत गयी अब तनिक रही , है मेरी जीवन डोर !
 उस यमराज महा बंधन से , कौन सकेगा छोर !
 चित्रकूट में मन्दाकिनि-तट , पत्नी करते शोर !
 शोर नहीं, वे निरख रहे हैं , सुभग श्यामली कोर !

७

पपीहा

पपीहा ! काहे मचायो सोर ?

मन की ओर बहुत तुम फँकी , मिल्यो न अब लघु छोर !
 बहुत दूर पै, बहुत दूर पै , स्वाति वूँद की कोर !
 प्रेम-पन्थ में बाधाएं बहु , निठुर दिखावैँ ओर !
 थकित न अब लौं भई 'प्रेमदा' , उड़ा रही मन-भोर !

८

अपमान

हमारा खूब हुआ अपमान !

बना प्रेम अवतार 'प्रियंबदा' , विधि की प्रिय श्री मान !
 पटक दिया मेरा मन-भोती , ग्राहक ने क्या जान ?

प्रेम छोड़ते प्राण निकलते, विधि स्वभाव, हा हंत !
करूँ योग अभ्यास नित्य ही, अगर मिलें पुनि कंत !

हो गया एक वर्ष का अंत !

प्रेम ! तुम्हारी बलिवेदी पर, निकले प्राण अनंत !
मरो 'प्रेमदा' तुम भी हँकर, निरखै सकल दिगंत !

हो गया एक वर्ष का अंत !



चतुर्वेदी के साथ "कर्मवीर" पत्र का सम्पादन कार्य करने लगे और उसके बाद प्रान्तीय कॉंग्रेस कमेटी के मन्त्री का कार्य भी करते रहे ।

मध्यप्रदेश के राजनीतिक आन्दोलन में इन दोनों का बहुत बड़ा भाग रहा है । श्रीमती सुभद्राकुमारी राष्ट्रीय झण्डा सत्याग्रह के संबंध में जबलपुर में एक बार गिरफ्तार हो चुकी है । किन्तु सरकार ने इन्हें एक दिन पुलिस-हवालात में रख कर सब साथियो सहित छोड़ दिया । ये दूसरी बार उसी सम्बन्ध में नागपुर में फिर गिरफ्तार हुईं और जेल में रखी गईं परन्तु कुछ दिन बाद बिना मुकदमा चलाये ही छोड़ दी गईं ।

श्रीमती सुभद्राकुमारी को कविता की धुन बचपन से ही थी । इनके पिता को कविता और गाने से विशेष रुचि थी । उनके भजन इत्यादि सुन सुन कर इनके मन में कविता की लहरें उठा करती थीं । जब ये इलाहाबाद के क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती थीं तब उसके प्रत्येक वार्षिकोत्सव पर इनकी बधाई आदि पर कवितायें अवश्य पढ़ी जाती थीं । उन्हीं दिनों सामयिक पत्रों में भी इनकी कवितायें प्रकाशित होने लगी थीं । स्कूल में जिस लड़की या शिक्षिका से इनका प्रेम हो जाता था उन पर ये कवितायें बनाया करती थीं ।

इनकी बचपन की कवितायें चालोचित भाव से भरी हुईं हैं और स्वभावतः उनके विषय भी वैसे ही रहा करते थे । किन्तु उनमें भावी कविता की झलक और देशभक्ति के भाव अवश्य प्रगट होते थे । जब से ये असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुईं तब से इनकी देशभक्ति का

तड़प तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर ।
 शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर ॥
 यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना ।
 यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना ॥

२

राखी की चुनौती

वहिन आज फूली समाती न मन मे,
 तड़ित आज फूली समती न धन में,
 घटा है न फूली समाती गगन मे,
 लता आज फूली समाती न वन मे;
 रही रखियाँ हैं, चमक है कहीं पर,
 कहीं कद है, पुष्प प्यारे खिले हैं ।
 ये आई है राखी सुहाई है पूनो,
 वधाई उन्हें जिनको भाई मिले हैं ॥
 मैं तो हूँ वहिन किन्तु भाई नहीं है,
 है राखी साजी पर कलाई नहीं है;
 है भादों, घटा किन्तु छाई नहीं है,
 नहीं है खुशी—पर रुलाई नहीं है;
 मेरा वन्धु माँ की पुकारो को सुनकर—
 के तैयार हो कैदखाने गया है ।

५

चलते समय

तुम मुझे पूछते हो—“जाऊँ” मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो ।
 “जा ..” कहते रुकती है जवान किस मुँह से तुम से कहूँ रहो ॥
 सेवा करना था जहाँ मुझे कुछ भक्ति-भाव दरसाना था ।
 उन कृपा-कटाक्षों का बदला बलि होकर जहाँ चुकाना था ॥
 मैं सदा रूठती ही आई प्रिय । तुम्हें न मैंने पहिचाना ।
 वह मान वाण सा चुभता है अब देख तुम्हारा यह जाना ॥

६

मातृ-मन्दिर में—

वीणा वज सी पड़ी खुल गये नेत्र, और कुछ आया ध्यान ।
 मुड़ने की थी देर दिख पडा उत्सव का प्यारा सामान ॥
 जिसको तुतला तुतला कर के शुरू किया था पहली बार ।
 जिस प्यारी भापा मे हमको प्राप्त हुआ है माँ का प्यार ॥
 उस हिन्दू जन की गरीबिनी हिन्दी—प्यारी हिन्दी का ।
 प्यारे भारतवर्ष—कृष्ण की उस वाणी कालिन्दी का ॥
 है उसका ही समारोह यह उसका ही उत्सव प्यारा ।
 मैं आश्चर्य भरी आँखों से देख रही हूँ यह सारा ॥
 जिस प्रकार कङ्काल बालिका अपनी माँ धन-हीना को ।
 टुकड़ों की मुहताज आज तक दुखिनी को उस दीना को ॥

जगती के वीरो द्वारा शुभ पद-वंदन तेरा होगा ।
 देवो के पुष्पो द्वारा अब अभिनदन तेरा होगा ॥
 तू होगी आधार देश की पार्लमेन्ट बन जाने मे ।
 तू होगी सुख-सार देश के उजड़े क्षेत्र बसाने में ॥
 तू होगी व्यवहार देश के विछुड़े हृदय मिलाने मे ।
 तू होगी अधिकार देश भर को स्वातन्त्र्य-दिलाने मे ॥

७

कलह-कारण

कडी आराधना करके बुलाया था उन्हे मैंने ।
 पदो के पूजने के ही लिये थी साधना मेरी ॥
 तपस्या नेम व्रत करके रिभाया था उन्हे मैंने ।
 पधारे देव पूरी हो गई आराधना मेरी ॥
 उन्हे सहसा निहारा सामने संकोच हो आया ।
 मुँदी आँखे सहज ही लाज से नीचे झुकी थी मैं ॥
 कहे क्या प्राण धन से यह हृदय में सोच हो आया ।
 वही कुछ बोल दें पहले प्रतीक्षा में रुकी थी मैं ॥
 अचानक ध्यानपूजा का हुआ झट आँख जो खोली ।
 हृदय धन चल दिये मैं लाज से उनसे नहीं बोली ॥
 नहीं देखा उन्हे, वस सामने सूनी कुटी देखी ।
 गया सर्वस्व अपने आपको दूनी लूटी देखी ॥

घन घोर घटायें काली थी पथ नहीं दिखाई देता था ॥
 तूने पुकार की जोरो की वह चमका गुस्से में आया ।
 तेरी आहों के बदले मे उसने पत्थर दल बरसाया ॥
 सुनके जिसकी ध्वनि गम्भीरा आनन्दित हो तू नृत्य करे ।
 हा ! मित्र वही बरसा पत्थर तेरा आदर हे मित्र ! करे ॥
 तेरा पुकारना नहीं रुका तू उठा न उसकी मारो से ।
 आखिर को पत्थर पिघल गये आहो से और पुकारों से ॥
 तू धन्य हुआ हम सुखी हुई सुन्दर नीला अकाश मिला ।
 चंद्रमा चाँदिनी सहित मिला सूरजभी मिला प्रकाश मिला ॥
 तेरी-केका से यो मयूर । घन विमुख निरभिमानी होवें ।
 उपहार बने लीखे प्रहार पत्थर पानी पानी होवें ॥

१३

विजया-दशमी

विजये । तूने तो देखा है वह विजयी श्रीराम सखी ।
 धर्मभीरु सात्विक निश्छल मन वह करुणा की धाम, सखी ॥
 वनवासी असहाय और फिर हुआ विधाता वाम सखी ।
 हरी गई सहचरी जानकी वह व्याकुल घनश्याम सखी ॥
 कैसे जीत सका रावण को, रावण था सम्राट सखी ।
 सोने की लंका थी उसकी ठटे राजसी ठाट सखी ॥
 रक्षक राक्षस सैन्य सबल था प्रहरी सिंधु विराट सखी ।
 नर ही नहीं देव डरते थे सुनकर उसको डाट सखी ॥

उसी बाग की ओर शाम को जाती हुई दिखाती है ।
 प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही फिर जाती है ॥
 लोग उसे पागल कहते हैं देखो तुम न भूल जाना ।
 तुम भी उसे न पागल कहना मुझे क्लेश मत पहुँचाना ॥
 उसे लौटती समय देखना रम्य वदन पीला पीला ।
 साड़ी का वह लाल छोर भी रहता है विल्कुल गीला ॥
 डायन भी कहते हैं उसको कोई कोई हत्यारे ।
 उसे देखना किन्तु न ऐसी गलती तुम करना प्यारे ॥
 बाँई ओर हृदय में उसके कुछ घड़कन दिखलाती है ।
 वह प्रतिदिन क्रम क्रम से कुछकुछ धीमी होती जाती है ॥
 किसी रोज सम्भव है उसकी घड़कन विल्कुल मिट जावे ।
 उसकी भोली भाली आँखें हाय सदा को मुँद जावें ॥
 उसकी ऐसी दशा देखना आँसू चार वहा देना ।
 उसके दुख में दुखिया बनके तुम भी दुःख मना लेना ॥

१५

मत्तु मंदिर में

व्यथित है मेरा हृदय-प्रदेश, चलूँ किसको वहलाऊँ आज ।
 वृता कर अपना दुख सुख उसे, हृदय का भार हटाऊँ आज ॥
 चलूँ माँ के पद-पंकज पकड़, नयन-जल से नहलाऊँ आज ।
 मात्तु-मंदिर में मैंने कहा चलूँ दर्शन कर आऊँ आज ॥
 किन्तु यह हुआ अचानक ध्यान दीन हूँ छोटी हूँ अज्ञान ।

कहते थे—“मेरे बंधन से यदि हो जावे मैं स्वाधीन ।
तो मैं हूँ तैयार यद्यपि हूँ वास्तव मे मैं अपराधी न ॥”
सोचो मृत्यु नहीं बंधन है बंधन तो है कारागार ।
आओ यही निवास करो हो कारागृह को हृदयागार ॥
जननि निष्ठावर होगी तुम पर जनता बलिवलि जायेगी ।
श्रद्धा और प्रीति से तुमको, नयनों पर बिठलायेगी ॥
लौटो आओ मंडाले में मंदिर हम बनवा देंगे ।
वहाँ हथकड़ी और चेड़ियो से घंटा टँगवा देगे ॥
तुम बन जाना मुख्य पुजारी करते रहना नित टंकार ।
हम सब मिल कर करें प्रार्थना हो स्वराज्यका मंत्रोच्चार ॥
तव स्वतंत्रता देवी देगी प्रमुदित हो प्यारा वरदान ।
वह पहलीजयमाल गले में धारण करना तुम भगवान ॥
भारत का हो राजतिलक तुम तिलकयही के कहलाओ ।
अमरपुरी बलि कर दोइस पर यही रहो हा! मतजाओ ॥

१९

राखी

भैया कृष्ण ! भेजती हूँ मैं राखी अपनी यह लो आज ।
कई वार जिसको भेजा है सजा सजा कर नूतन साज ॥
लो आओ भुज दण्ड उठाओ, इस राखी मे बँधजाओ ।
भरत-भू की रज भूमी को एक वार फिर दिखलाओ ॥

वीर चरित्र राजपूतों का पढती मैं राजस्थान ।
 पढते पढत आँखों में छा जाता राणी का आर्यान ॥
 मैंने पढा शत्रुओं को भी जब जब राणी भिजवाई ।
 रक्षा करने दोड़ पडा वह राणीवद् शत्रु भाई ॥
 किंतु देखना है यह मेरी राणी क्या दिखलाती है ।
 क्या निस्तज कलाई हो पर वध कर यह रह जाती है ॥
 देखो भैया भेज रही हूँ तुमको—तुमको राणी आज ।
 साया राजस्थान बनाकर रख लना राखा की लाज ॥
 हाथ काँपता हृदय धडकता है मेरी भारी आवज ।
 अब भी चौकता है जलियाँवाला का वह गोलन्दाज ॥
 यम की सूरत उन पतिता की पाप भूल जाऊँ कैसे ।
 अकित आज हृदय में हैं फिर मन को समझाऊँ कैसे ॥
 बहिने कई विलसती हैं हा । उनकी मिसक न मिटपाई ।
 लाज गवाई गाली पाई तिसपर धमकी भी खाई ॥
 डर है कहीं १ मार्शलला का पड़ जाये फिर से घेरा ।
 ऐस समय द्रोपदा नैमा कृष्ण महारा है तेरा ॥
 बोला सोच समझकर वाला क्या राणी वेंधवाआगे ?
 भार पड़ेगा रक्षा करने क्या तुम दौड़े आओगे ?
 यदि हा तो यन् ला इस मेरी राणी को स्वीकार करो ।
 आकर भैया बहिन 'सुमद्रा' क कष्टों का भार हरो ॥

लावारिस का वारिस बनकर बृटिश राज्य भाँसी आया ।
 अश्रु पूर्ण रानी ने देखा भाँसी हुई विरानी थी,
 बुन्देले हरवोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥
 अनुपम विनय नहा सुनता है, विकट शासकों की माया,
 व्यापारी बन गया चाहता था यह जब भारत आया ।
 डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गयी काया,
 राजाओं नब्बावों को भी उसने पैरो ठुकराया ।
 रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी,
 बुन्देले हरवोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥
 छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना घातो घात,
 कैद पेशवा था विठूर में हुआ नागपुर पर भी घात ।
 उदैपूर ।तजौर सितारा करनाटक की कौन विसात,
 जब कि सिध पञ्जाव ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रनिपात ।
 बंगाले मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
 बुन्देले हरवोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥
 रानी रोई रनवासों में वेगम गम से थी बेजार,
 उनके गहने कपड़े विकते थे कलकत्ते के बाजार ।

नाना धुन्दूपंत तौतिया चतुर अजीमुल्ला सरनाम ।
 अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँ अरसिंह सैनिक अभिराम,
 भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे, जिनके नाम ।
 लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्वानी थी ।
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी,
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥
 इनकी गाथा छोड़ चले हम झाँसी के मैदानों में,
 जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द वनी मर्दानों में ।
 लेफ्टिनेन्ट नौकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,
 रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वन्द असमानों में ॥
 जखमी होकर नौकर भागा उसे अजब हैरानों थी,
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥
 रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार-
 घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार ।
 यमुना तट पर अंगरेजों ने फिर खाई रानी से हार,
 विजयी रानी आगे चल दी किये ग्वालियर पर अधिकार,
 अंगरेजों के मित्र सिन्धिया ने छोड़ी रजधानी थी ।
 बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

जाओ रानी याद रखेगे ये कृतज्ञ भारतवासी ।
 यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी,
 होवे चुप इतिहास रचो सच्चाई को चाहे फाँसी ।
 हो मदमाती विजय मिटा दे गोलो से चाहे फाँसी,
 तेरा स्मारक तू ही होगी तू खुद अमिट निशानी थी ।
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी,
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसोवाली रानी थी ॥



मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् १९८१ में आपने एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। इस परीक्षा में आप युक्तप्रान्त में प्रथम आईं, छात्रवृत्ति और हिन्दी विषय में 'तमीज' भी प्राप्त की। दो वर्ष बाद इंटर-मीजिएट और सन् १९८२ में बी० ए० की परीक्षा संस्कृत और फ़िलासफी लेकर पास की। इस साल कास्थवेट गर्ल्स कालेज से बी० ए० की परीक्षा में आठ लडकियाँ शामिल हुई थीं, उनमें इनका प्रथम स्थान रहा। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय में एम० ए० में पढ़ रही हैं।

शुरू शुरू में आप प्रायः तुकवदियाँ बनाया करती और उसे फाड़ कर फेंक दिया करती थीं। परन्तु धीरे धीरे आप में कविता लिखने की विशेष रुचि उत्पन्न हुई और अच्छी कविता लिखने लगी। ज्यो ज्यो आप की शिक्षा बढ़ती गई त्यों त्यों आप की कविता में भी गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। आपकी प्रारम्भिक कवितायें प्रायः 'चाँद' नामक मासिक पत्र में छपा करती थीं। परन्तु फिर अन्य पत्रों—'माधुरी' 'मनोरमा' 'सुधा' आदि-में भी छपी। आपने हिन्दी में एक नये ढंग की रचना का प्रादुर्भाव किया। जहाँ दो-चार छायावाद और रहस्यवाद के ऊँचे दर्जे के पुरुष कवि हिन्दी के वर्तमान युग में हैं वहाँ स्त्री-कवि श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप की कविताओं में प्रायः वियोग और अनुभूति का एक प्रकार का समिध्वय पाया जाता है, जो भावुक हृदयों में एकाएक स्थान कर लेता है। साथ ही आप की रचना मधुर और सगीतनय होती है। आप जो कविता एक बार लिख लेती हैं उसे ज्यो की त्यों रहने देती हैं। आप का

उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते ।
 आँखों के कोप हुए है, मोती बरसा कर रीते,
 अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली ;
 प्राणों का दीप जलाकर, करती रहती दीवाली ।
 मेरी आँहें सोती हैं, इन ओठों की ओटों में,
 मेरा सर्वस्व छिपा है, इन दीवानी चोटों में ॥
 चिन्ता क्या है हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
 हो जायेगा तेरा ही, पीडा का राज्य अधेरा ।

५

चाह

माँगत है यह पागल प्यारा ,
 अनोखा एक नया संसार ।
 कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान ,
 तुहिन कणों पर मृदु कम्पन से सेज विछा दें गान ;
 जहाँ सपने हों पहरेदार ,
 अनोखा एक नया ससार ।
 करते हो आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण ,
 जलने में विश्राम जहाँ मिनटों में हो निर्वाण ,
 वेदना मधु-मदिरा की धार ,
 अनोखा एक नया संसार !

मिल जायें वसपार चित्तिय के सोभा सीमाहीन,
गर्वील नक्षत्र घरा पर लौटें होकर दीन ।

उदधि हो नभ का शयनागार,

अनोखा एक नया ससार ।

जीवन का अनुमृति तुला पर अरमानो से तोल,

यह अवोध मन मूक व्यथा से ले पागलपन मोल,

करें हग आँसू का ध्यापार,

अनोखा एक नया ससार ।

६

निर्वाण

घायल मन लेकर सो जाती, मेघों में तारों की प्यास ।
यह जीवन का ड्वार शून्य का, करता है बढ कर उपहास ॥
चल चपला के दीप जलाकर, किसे हूँ दता अघाकार ?
अपन आँसू आज पिला दो, कहता किससे पारावार ॥
मुक मुक मूम मूम कर लहरें, भरवाँ बूँदों के मोती ।
यह मेरे सपनों की छाया, मोकों में फिरती रोती ॥
आज किसी के मसले तारों—की वह दूरागत मझार ।
मुके घुलावी है सहमी सी, मन्मा के परदों के पार ॥
इस असीम तप में मिल कर, मुककों पल मरासो जाने दो ।
मुक जाने दो देव आज, मेरा दीपक बुक जाने दो ।

७

मेरी साध

थकी पलकें सपनों पर डाल, व्यथा में सोता हो आकाश ।
 छलकता जाता हो चुपचाप, वादलो के उर से अबसाद ॥
 वेदना की वीणा पर देव, शून्य गाता हो नीरव राग ।
 मिला कर निश्वासो के तार, गूँथती हो जब तारे रात ॥
 उन्हीं तारक फूलो मे देव ! गूँथना मेरे पागल प्राण—
 हठीले मेरे छोटे प्राण !

किसी जीवन की मोठी याद, लुटाता हो मतवाला प्रात ।
 कली अलसाई आँखे खोल, सुनाती हो सपने की बात ॥
 खोजते हो खोया उन्माद, मन्द मलयानिल के उच्छ्वास ।
 माँगती हो आँसू के विन्दु, मूक फूलों की सोती प्यास ॥
 पिला देना धीरे से देव, उसे मेरे आँसू सुकुमार—
 सजीले से आँसू के हार !

मचलते उद्गरों से खेल, उलभते हों किरणों के जाल ।
 किसी की छूकर ठंडी साँस, सिहर जाती हों लहरें बाल ॥
 चकित सा सूने में संसार, गिन रहा हो प्राणों के दाग ।
 सुनहली प्याली में दिनमान, किसी का पीता हो अनुराग ॥
 डाल देना उसमें अनजान, देव मेरा चिर सचित राग !
 अरे यह मेरा भादक राग ।

मत्त हो स्वज्जिल हाला डाल, महानिद्रा में पारावार ।
 उसी की घडकन में तूफान, मिलावा हो अपनी मकार ॥
 ऋकोरों से मोहक सदश, कह रहा हो द्याया का मौन ।
 सुप्त आहों का दीन विपाद, पूछता हों आवा है कौन ?
 वहा दना आकर चुपचाप, तभी यह मेरा जीवन पूछ—
 सुभग मेरा मुरझाया फूल ।

८

स्वप्न

इन हीरक से तारों का, कर चूर बनाया प्याला ।
 पीडा का सार मिना कर, प्राणों का आसव डाला ॥
 मलयानिल के मोकों में, अपना उपहार लपेटे ।
 मैं सुने तट पर आई, विखरे उद्गार समेटे ॥
 काले रजनी अञ्जल में, लिपटों लहरे सोती थी ।
 मधु मानस का बरसाती, वारिद माला रोती थी ॥
 नीरव तम की द्याया में, द्विप सौरभ की अनकों में ।
 गायक वह गान तुम्हारा, था मँडराया पनकों में ॥
 हाला भी दानादल सी, वह गई अचाक लहरी ।
 हवा जग मूला तन मन, अँवि सिधिलाई मिहरी ॥
 बेसुध मे प्राण हुए जब, छूकर चनः मदारों को ।
 उडते थे अडुलावे थे, चुम्बन करत तारों को ॥

उस मतवाली वीणा से, जब मानस था मतवाला ।
 वे मूक हुई झङ्कारे, वह चूर हो गया प्याला ॥
 हो गईं कहीं अन्तर्हित, सपने लेकर वे रातें ।
 जिनका पथ अलोकित कर, बुझने जाती हैं आँखें ॥

९

तब

शून्य से टकरा कर सुकुमार करेगी पीड़ा हाहाकार,
 विखर कर कन कन मे हो व्याप्त मेघ बन छा लेगी संसार ।
 पिघलते होंगे यह नक्षत्र अनिल की जब छूकर निश्वास,
 निशा के आँसू मे प्रतिबिम्ब देख निज काँपेगा आकाश ।
 विश्व होगा पीड़ा का राग निराशा जब होगी वरदान,
 साथ लेकर मुरझाई साध विखर जायेंगे प्यासे प्राण ।
 उदधि नभ को कर लेगा प्यार मिलेंगे सीमा और अनन्त,
 उपासक ही होगा आराध्य एक होंगे पतझार वसन्त ।
 बुझेगा जलकर आशादीप सुला देगा आकर उन्माद,
 कहीं कब देखा था वह देश ? अतल में डूबेगी यह याद !
 प्रतीक्षा मे मतवाले नैन उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,
 हृदय होगा नीरव अह्वान मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ?

१०

कहाँ ?

घोर घन की अचगुराठन डाल करुण सा क्या गाती है रात ?

उस चिन्तित चितवन में विहास बन जाने दो मुझको उद्धार !

फिर एक वार वस एकवार !

फूलों सी हो पल मे मलीन तारों सी सूने में विलीन,
दुलती बूंदों से ले विराग दीपक से जलने का सुहाग,
अन्तरतम की छाया समेट मैं तुझ मे मिट जाऊँ उद्धार !

फिर एक वार वस एकवार !

१२

आँसू

यहीं है वह विस्मृत सङ्गीत खो गई है जिसकी ऋद्धार,
यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास जहाँ रोता बीता संसार ;
यहीं है प्राणों का इतिहास यही विखरे वसन्त का शेष,
नहीं जो अब आयेगा लौट यही उसका अक्षय संदेश ।

❀

❀

❀

समाहित है अनन्त अज्ञान यही मेरे जीवन का सार,
अतिथि ! क्या ले जाओगे साथ मुग्ध मेरे आँसू दो चार ? •

१३

मेरा जीवन

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास देव वीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार रत्न वह प्राणों का शृंगार ;

लजा जाये यह सुग्ध सुमन बनो ऐसे छोटे जीवन !
 सखे ! यह है माया का देश क्षणिक है मेरा तेरा संग ,
 यहाँ मिलता काँटों में बन्धु ! सजीला सा फूलों का रंग ;
 तुम्हें करना विच्छेद सहन न भूलो हे प्यारे जीवन !

१४

स्मारक

भूमते से सौरभ के साथ लिए मिटते सपनों का हार ,
 मधुर जो सोने का सगीत जा रहा है जीवन के पार ,
 तुम्ही अपने प्राणों में मौन बाँध लेते उसकी झङ्कार !
 काल की लहरों में अविराम बुलबुले होते अर्न्तधान ,
 हाय उनका छोटा ऐश्वर्य्य झूबता लेकर प्यासे प्राण ;
 समाहित हो जाती वह याद हृदय में तेरे हे पापाण !
 पिघलती आँखों के संदेश आँसुओं के वे पारावार ,
 भग्न आशाओं के अवशेष जली अभिलाषाओं के क्षार ;
 मिला कर उच्छ्वासों की धूलि रँगई है तूने तस्वीर !
 गूँथ विखरे सूखे अनुराग वीन करके प्राणों के दान ,
 मिले रज में सपनों को ढूँढ खोज कर वे भूले आह्वान ;
 अनोखे से माली निर्जीव बनाई है आँसू की माल !
 मिटा जिनको जाता है काल अमिट करते हो उनकी याद,
 डुवा देता जिसको तूफान अमर कर देते हो वह साध ;

नैना भरि भरि सब निरखोरी, राम सिया सँग खेलें होरी ॥
 लोग नगर के सब ही आये, चहुँदिशि भीर भयो री ।
 तुलछराय प्रभु कह करजोरी, तन मन धन आपरो री ।
 जनम जनम को लाभ लहोरी, राम सिया सँग खेलें होरी ॥

—तुलछराय

३

वस रहि मेरे प्राण मुरलिया, वस रहि मेरे प्राण ।
 या मुरली की मधुर मधुर धुनि, मोहत सब के कान ॥
 मुख सोछीन लई सखियन मिलि, अमृत पीयो जान ।
 वृन्दावन मे रास रच्यो है, सखिया राख्यो मान ॥
 धुनि सुनि कान भई मतवाली, अन्तर लग गयो ध्यान ।
 'वीरों' कहे तुम वहुरि वजाओ, नँद के लाल सुजान ॥

—वीरों

४

स्त्रियों का पतन

हा हन्त नारियो ने निज धर्म को मुलाया ।
 पाई न पूर्ण शिक्षा अभिमान उर में छाया ॥
 पत्नी का इष्ट पति है पति-भक्ति से सुगति है ।
 अब हाय यह कुमति है सेवक उन्हे बनाया ॥
 मेलों में व्यर्थ जातीं झूठे गुरु बनार्ती ।

कुलकानि हैं गँवार्ती कैसा सितम बहाया ॥
 सुत माँगती हैं कोई कोई वशीकरण की।
 धन के लिए किसी ने निज धर्म को गँवाया ॥
 त नारियों से भिन्ना एकांत में ल शिन्ना।
 होती नहीं परीक्षा गुरु मंत्र क्या सिखाया ॥
 लम्बी जटा बढाये हैं भस्म भी रमाए।
 साधू के नाम को इस पापण्ड ने छजाया ॥
 षगुला भगत बने हैं अप पङ्क में सने हैं।
 ऐसे असुर जनों ने 'भीरा' का दिल दुखाया ॥

—पूतकुमारी मेहरेश, कावपुर

५

चेतावनी

छोटी सी ही अभी कली हूँ, शैशव अत्र तक गया नहीं।
 योवन का सुविकारा अभी तो, आया है कुछ नया नहीं ॥
 जो रसिकों को रोचक होता, अभी रुचिर यह रग नहीं।
 लीला की लहरी का भी नो, अभी सुललित उमर नहीं।
 मधुप अभी मेरे मानस में, मधु का भी माधुर्य नहीं।
 सरलपने की ही प्रतिमा हूँ, आया है चातुर्य नहीं ॥
 मधुप मुग्ध हो मत भँडराओ, अत अभी ही से मुक्त पर।
 लोलुपता का दोष नहीं तो, सज्जन रक्खेंगे तुम्ह पर ॥

—जाहवा देवी दाचित प्रतापगढ़

६

साधु पुरुष

जो हैं जीवन मुक्त महा विज्ञानी धर्म प्रेम आगार ।
 सत्य शील समता संयम के जो हैं एक मात्र अवतार ॥
 अहंकार को जीत जिन्होंने काम क्रोध को डाला मार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 नयनो से तप तेज टपकता करुणा का हो रहा प्रवाह ।
 जिनके दर्शन से मिट जाती है सारे विषयो की चाह ॥
 जिन्हे प्रशंसा निन्दा सम है करें सत्य का सदा विचार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 विषय विरागी पूरे त्यागी दुख सुख मे जो एक समान ।
 शान्त भाव ले सदा करें जो सर्वेश्वर का सम्यक ध्यान ॥
 जाना है तप बल से जिनने सब धर्मों का सच्चा सार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 तर्क-वृथा को सार रहित जो जान त्याग करते तत्काल ।
 जो निज कानो से सुन सकते हैं जग के दुखियों का हाल ॥
 सदाचार सम्पन्न सुजनता शील दया के जो भंडार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 मन का दमन किया है जिसने वही बली है सदा वीर ।
 तथा इन्द्रियो को विषयो से निरत किया है जिसने धीर ॥

वही वीरवर एक मात्र इस धर्म पुरी को सत्ता धार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 परम उदारराशय अति पावन प्रेम भरे जो भारी हैं ।
 कृपा दृष्टि म जिनके सारे विश्व समूह सुखारी हैं ॥
 विश्व यधुता क सुखदायक भावों का जो करें विचार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 सत्य प्रेम मम शिक्षा जिनकी नहीं द्वेष का है सचार ।
 सपने में भी धार शत्रु का करें न किंचित अहित विचार ॥
 बल्ले प्रेम धनो धन नस पर करें प्रेम का निज विस्तार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 प्रेमालोक त्रिलोक जिन्हीं का द्वेष निराचर जात भाग ।
 जिनके पास सिंह भी शृग को करता है शिशुवत अनुराग ॥
 ऐसे जो समर्थ सत्वर्मी करत हैं नित पर उपकार ।
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥
 —रामन्याता 'चंद्रिका चंद्रमेर

७

मान-मनाञ्जल

नीरम कुलिष कठोर घोर हा तदपि द्रवित कर छोड़ेंगी ।
 मन-धनमाली अ-वेपथु को धन उपवन गिरि फिर आई ॥
 मानस मणि मालाघर के हित मानस सागर फिर आई ।
 सुख के सार सनातन तुम विन पलकन पलकें जोड़ेंगी ॥

कुटुकारी अँधियारी ओढ़े दुवक गगन मे बैठे हो ।
 चारु चंद्रिका की चुनरी के अवगुंठन में पैठे हो ॥
 चल न सकेगा साज सखे । यह जब मैं कला मरोड़ूँगी ।
 निरखो नाथ । तुम्हारे कारण हृत्कमलासन फैलाया ॥
 छिपा भाव की धूप सुवासित नीरव स्वागत पद गाया ।
 नयन-नीर से पद पंकज का पंक धुलाकर छोड़ूँगी ॥
 आओ नाथ । पधारो ताली दे दे तुम्हे नचाऊँगी ।
 करो विहार तुम्हारे हित मैं अन्तस्तली सजाऊँगी ॥
 मानो मेरे प्राण नहीं तो मान मटुकिया फोड़ूँगी ।
 शीतल-श्वास समीर चपेटें खाकर निष्ठुर मानोगे ॥
 आत्म विसुध चरणो मे तड़पूँ तब ही अपनी जानोगे ।
 अपने हिय की व्याकुलता से मोह नींद को तोड़ूँगी ॥

—सुशीला देवी स्नातिका, लाहौर

८

माँ का मन

सरलता का जो सुन्दर श्रोत, क्रोध से जहाँ न श्रोत श्रोत ।
 तैरता जहाँ प्रणय-का पोत, दम्भ का जहाँ नहीं खद्योत ।
 ले कभी सकता अवलम्बन, वही है मञ्जुल-माँ का मन ॥
 जहाँ है नव-लीला-लहरी, छोह की छवि-छाया छहरी ।
 कामनाओ की गति-गहरी, वासना-खगी जहाँ विहरी ।

प्राकृतिक पावन-प्रेम-पराग, ग्नेह-सौगममय जिसमें राग ।
 मधुर मधु सा जिसमें अनुराग, न जिसमें कहीं दोष का दाग ।
 अलौकिक जा है मौन्य सुमन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥
 न जिसमें कभी शाप का ताप, शुभाशीशों का जहाँ क्लाप ।
 कदापि न जहाँ अहिनमय पाप, सतत हितकारी मधुरालाप ।
 जहाँ कोमल-करुणा का वास, नहीं जिस से कदापि कुद्व प्राप्त ।
 शान्ति का जिसमें सुपदाभास, सदयता का है विगत विकास ।
 जहाँ प्रीति प्रतापि पावन, वही है मञ्जुल-मों का मन ॥
 विकलते जिसमें शुचि उपदेश, छुट्ट-द्वल का न जहाँ लषलश ।
 जीव का जो है प्रथम प्रदेश, जहाँ ही से निगुण अखिलेश ।
 सगुण हो धरते मानव-तन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥
 जहाँ है सतन सवा भाव, जहाँ है अचल अलौकिक-भाव ।
 रचे जो नित हित क प्रस्ताव, न जिस में द्वेष द्वेह दुराव ।
 करे जो माठे सशोधन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥
 जगत में जिसके सदृश न अन्य, न जिस में उठें विचार जप य ।
 प्रकृति यह हुई जिसी स अन्य, धन्य है वार वार जो धय ।
 जगल में कहीं न जिमसा धन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥
 किये मम हित जप तप धृन ध्यान, मनाये देवीदेव महान ।
 भजन-पूजा आदान प्रदान, यत्र मत्रादि अनेक विधान ।
 किये जिसने मारे साधन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥
 जहाँ है निरवल क्षमा अपार, जहाँ ममता का परावार ।

जहाँ है शुभ वात्सल्यागार, न जिस मे किञ्चित कभी विकार ।
 निछावर जिस पर तन-मन-धन, वही है मञ्जुल माँ का मन ।
 —शांति देवी शुरु, प्रयाग

९

उपालम्भ

तेरे ही कारण वस मेरे संग सनेही छूटे ।
 तू ही से वस प्रिय जीवन धन गये हमारे लूटे ॥
 तू ने ही वस बीज विमनता का मम गृह में बोया ।
 वस मयंक, तुमने ही मेरा सौख्य—साज सब खोया ॥
 आकर तुमने प्रथम कोक कुल कानन सुमन खिलाये ।
 किन्तु त्वरित विश्वास तोड़कर मिले हृदय विलगाये ॥
 अयि ! मयंक अब भी तुम तिरछे तिरछे ही वस जाते ।
 कुटिल चाल चल वक्र वदन 'कर' से विष ही बरसाते ॥
 आते हो न पास क्यों मेरे क्यों मुझसे भय खाते ।
 जाते हो वस दूर दूर ही मानो कुछ शरमाते ॥
 जो हो किन्तु नहीं अब आया प्रतीकार पाने की ।
 गये हुए मेरे सुख-धन की नहीं लौटा आने की ॥
 विमुख बने हो रचि प्रपंच मम रच ध्यान नहीं करते ।
 यदि कहती हूँ कुछ सविनय तो आप मौनता धरते ॥
 यद्यपि ज्ञान मुझे है सब विधि तुम्हें नहीं परवाह ।

लहरता जहाँ दया का सिधु, भरा है जहाँ सलिलयुत भाव ।
 उमंगो की है जहां तरंग, अनोखा जहां नव्य नित चाव ॥
 सुखद है जहाँ दृष्टि की वृष्टि, जहां है पावन पुण्य प्रमोद ।
 प्रणय का बहता मंद समीर, जहाँ है वह है मां की गोद ॥
 सरल मुख मे लाकर मुसुकान, जहां खेले थे शैशव खेल ।
 न जिसमे चिंताये थी रंच, न था कुछ भ्रंश भूठ भ्रमेल ॥
 व्यथा वाधा पा कर भी चित्त, नहीं पाता है प्रखर प्रमोद ।
 स्वर्ग सुख देने वाली एक, वही है केवल माँ की गोद ॥
 उतरते हैं जिसके ही हेतु, विश्व-वन में होकर साकार ।
 जगत जीवन दुख जिसके हेतु, सहन करते हैं सर्वाधार ॥
 त्रिजग में जिस से उत्तम और, नहीं है कोई कहीं विनोद ।
 सहज मे देती है वह एक हमे, केवल वह मां की गोद ॥
 कमर पर लपट लपट कर जहां, न दे सकता कुछ दुख लवलेश ।
 विरमती वहाँ प्रतीत पुनीत, राग रुचि रीति रहित सब क्लेश ॥
 निरखता है वात्सल्य विशेष, जहाँ पर कर आमोद प्रमोद ।
 धन्य जग जीवन जननी धन्य, जयति जय जय वर मां की गोद ॥

—सुद्धी देवी विनोदनी, प्रयाग

११

सान्त्वना

बहुत दिनों तक कर चुकने पर स्नेह सना सुन्दर साधन ।
 प्रयत्न प्रेम की पर्ण कुटी मे कर चुकने पर आराधन ॥

स्वच्छ पवित्र प्रेम-मन्दिर मे, सन्तत सुखी विचरना स्वामी ;
 अबुध पुजारिन जान इसे, अपराध न चित में धरना स्वामी ।
 बुद्धिहीन की प्रेम अस्तुती, प्रेम भाव से सुनना स्वामी ;
 मूल तत्व सब भाव समझ कर, फिर निज मन में गुनना स्वामी ।
 विकल हृदय की सुप्त कली को, कर उपचार खिलाना स्वामी ;
 शोक ताप सन्तापित मन को, आश्रय-दान दिलाना स्वामी ।
 प्रेम भिखारिन की आशा पर, वज्र न कभी चलाना स्वामी ;
 निज वियोग की तीक्ष्ण अग्नि मे, हाथ । न कभी जलाना स्वामी ।
 प्रेम पूर्ण सम्भाषण ही मे, स्वर्ग-राज्य दिखलाना स्वामी ;
 मूर्ख सहचरी की मूलों पर, कभी न तुम मचलाना स्वामी ।
 काम ताप मे तपी हुई को, ब्रह्म ज्ञान सिखलाना स्वामी ;
 व्यर्थ विचार तर्कनाओं को, कभी न मन विचलाना स्वामी ।
 जीवन जटिल समस्याओं को, कभी कभी सुलझाना स्वामी ,
 विषय वासना सूत्र लगा कर, पर न कभी उलझाना स्वामी ।
 कठिन कठोर विषम वचनों से, कभी न मुझे रुलाना स्वामी ,
 यह दासी चरणों की रज है, इसे न कभी मुलाना स्वामी ।

—याम देवी, धागरा

१३

कर्तव्य

कर्तव्य देव ! तव यों महिमा बखानी ।

जाती किसी विधि कभी हम से न जानी ॥

सेवा समस्त कर कौन सका तुम्हारी ।

जानी गई न कुछ भी तव नीति न्यारी ॥

१४ —पार्वती देवी शुक, प्रयाग

उनके प्रति

विरह विधुरा के हो तुम प्राण, तुम्हीं हो मञ्जुलता की खान ।
 दीन-दुखियों के हो तुम त्राण, दुष्ट जन का हरते अभिमान ॥
 पुष्प की सुरभित स्निग्ध सुगन्ध, तुम्हीं हो कलियों की मृदु हास ।
 तुम्ही मधुकर वन होकर अन्ध, कराते हो अपना उपहास ॥
 मनोहर उपवन मे हो मौन, विहँसते हो तुम प्रातःकाल ।
 गले मे निर्मल मंजुल दिव्य, चमकती है मुक्ता की माल ॥
 नदी की नव उज्वल जल-धार, तुम्हीं हो लोल लहर के बीच ।
 गरजते बादल वन साकार, तप्त भूतल को देते सींच ॥
 तुम्ही करते हो हास्य विनोद, तुम्हीं करते सबका उपहास ।
 तुम्ही ले करके सबको गोद, खेलाते गाते देते प्रास ॥
 हमारी नैया है मँझधार, तुम्हीं हो इसके खेवनहार ।
 उवारो इसको पार उतार, तुम्हीं पर है सब दारमदार ॥

—विमला देवी शुक्ल, प्रयाग

१५

उससे

आह ! बजाकर तार ताल से हे मेरे व्यापक छवि मान !
 इस अनन्त पथ पर भी आकर छेड़ दिया क्यों मादक गान ॥

व्यर्थ के ढकोसलों को देते जो ढकेल कही,
 मिला नहीं देखने को रूप मे विगार का ॥
 व्यर्थ धन धाम होता देश भी मुदाम होता,
 दुनिया मे नाम होता जीवन के सार का ।
 बुद्धि की प्रतिष्ठा होती न्याय-नीति-निष्ठा होती,
 पड़ता न भोगने को भोग बुरी हार का ॥
 सीखो मान करना समान अधिकार साथ,
 आदर उचित देना सीखो सीख गुन की ।
 देता जन्म जग मे जो मनुज समाज का यों,
 करता है सृष्टि वही अबला-सुमन की ॥
 कान देता सुनने को देखने को आँख देता,
 आनन समान देता बुद्धि मुनि गन की ।
 सरल सनेह होता विमल विवेक होता,
 समता का ध्येय ममता भो मातृ-मन की ॥

—लीलावती देवी, लखनऊ

१८

निश्वास

जाती है तू अनिल साथ तू अरी आह से भरी उसास ।
 लेती जा तू यह दो आंसू मेरे भी प्रियतम के पास ॥
 जाकर उनकी उपल मूर्ति को तनिक इन्हीं से देना सीच ।

२५

जेहि कर कूवरि सीधो कीन्हो, जेहि कर गोप वचाय लिये रे ।
 जेहि कर जगत विचित्र बनायो, जेहि कर प्रभु मुर काज किये रे ॥
 सोइ कर श्याम धरहि 'श्यामा' सिर तत्रहुँ कि भव सन्ताप हिये रे ।
 जेहि कर विपधर कालिहि नाथ्यो, जेहि कर अम्बर फेर दिये रे ॥

—श्यामदाजा देवी, कानपुर

२२

भ्रमर-गीत

प्रश्न

भ्रमर ! तू क्यों होता प्रेमान्ध ?
 जग में प्रेमी दुख पाते हैं, नहीं ज्ञात मकरंद ?
 इससे कहती हूँ मत आना, कभी हमारे फद ।
 माना, कमल परम कोमल है, उज्ज्वल है ज्यों चन्द,
 पर आखिर वह पंकज ही है, तू रसिको का इन्द्र ।
 नाच नाच कर उसके ऊपर, क्यों गाता नित छंद ?
 नहीं जानता, संध्या होते, होगा खिलना बंद ?
 रह तू मुझ से दूर सदा ही, सुन ले ऐ मतिमद ॥

उत्तर

भ्रमर है नहीं किसी के फद ।
 कोमल कमल परम उज्ज्वल है, नहीं भ्रमर है अन्ध ।
 उसकी ही खुशबू भाती है, उसकी ही दुर्गन्ध ॥

किन्तु आशा की किञ्चित् क्षीण, रश्मि का पाकर भी आभास ।
 चूमता है चरणों की रेणु, मधुप करता मधु में विश्वास ॥
 मान उसको रमणी का मान, 'मान' पर खो देता निज ताप ।
 पोंछता है नयनों का नीर, सुनाता है अपना संताप ॥
 प्रणय में प्रेम-नेम का भाव, भाव ही है जीवन का सार ।
 भाव में भाव-हीनता देख, मधुप भावुक करता गुजार ॥
 तुम्हारी निष्ठुरता पर साँस, छोड़ता है ज्वाला का स्रोत ।
 इसीसे तो तव निष्ठुर गात, अग्नि से होता श्रोतप्रोत ॥
 रूप का वह सारा अभिमान, तरुण-यौवन का उन्मद् वेष ।
 सरसता सौरभ का सुविकास, नहीं रहता कुछ भी अवशेष ॥
 प्रिया का यह मुरझाना देख, देख उसके जीवन का अन्त ।
 चहाता है नयनों का नीर, नीर में गाकर राग अनन्त ॥
 कभी पुष्पो के जाकर पास, कभी लतिका के सुन्दर देश ।
 प्रेम का गाता है वह गान, प्रणय का ही देता सन्देश ॥
 प्रेम जीवन का है उत्सर्ग, प्रेम ही है जग का सुविधान ।
 प्रेम है अखिल विश्व का तत्व, प्रेम ही में मिलते भगवान ॥
 प्रेम-रस का कर सुन्दर पान, कली का छुट जाता अभिमान ।
 लताएँ हो जातीं नवनीत, हाय ! नारी का 'चञ्चल-मान' ॥
 नहीं करता है वह दृगपात, नहीं करता कलियों से प्रेम ।
 प्रिया की निष्ठुरता कर याद, निभाता है प्रेमी का नेम ॥
 लताओं की कलियों के पास, और रोदन करता है नित्य ।

कुंजन निकुंज आवे, प्रभु प्रेम गीत गावे,
'वाला' हरी चरन विन, कोई नहीं सगा है ।

—सत्यबाला देवी

२५

आशा

पीड़ा का मूक रुदन बनकर दुष्टा का रक्त बहाएगा ।
निर्धन प्राणों का आह पुंज भूतल पर क्रान्ति मचाएगा ॥
अत्याचारों का प्रबल वेग अबलाओं के आँसू कराल ।
आरत भारत पर एक धार विद्युत सा बल चमकाएगा ॥
देशानुराग का पागलपन रग रग में फड़का कर फड़कन ।
बलिवेदी पर बलि दे जीवन भारत स्वाधीन बनाएगा ॥

—रामेश्वरी देवी गोयल वी० प०

२६

नवयुवकों के प्रति

अपमानित हो ठोकर खाते सदियों से सोये पड़े हुए ।
प्राचीन सभ्यता सदाचार वैभव सब खोये पड़े हुए ॥
इस पराधीन अरु मृत-प्राय जर्जर समाज की साँस तुम्हीं ।
दुखिया माँ की अभिलाष तुम्हीं इन तीस कोटि की आस तुम्हीं ॥
हो जाओ बलिदान देश पर कायरता का नाम न लो ।
परताप शिवाजी के वराज मत पीछे हटना बड़े चलो ॥

देखते परमानन्द स्वरूप, नेत्र हो गये स्वयं ही बन्द ॥
 पधारे एक कंस के हेतु, लिया बन्दी-गृह में अवतार ।
 आज भारत में अगणित कस, कर रहे भारी अत्याचार ॥
 सुना दो श्रीमुख से फिर आज, कर्ममय गीता का वह ज्ञान ।
 अर्थ का हम कर रहे अनर्थ, धर्म के तत्वों से अनजान ॥
 हृदय में साहस का संचार, करे श्रीकृष्ण तुम्हारी मूर्ति ।
 तुम्हारा जन्म दिवस यह आज, जगादे जीवन की स्फूर्ति ॥
 दया कर सुन लो यही पुकार, वचन देकर मत भूलो नाथ ।
 तुम्हारी भारत लीला-भूमि, दिखा कर लीला करो सनाथ ॥

—राजकुमारी श्रीवास्तव, जयलपुर

२८

पद्मिनी

देवि ! तुम्हारे गुण गौरव की कीर्तिध्वजा फहराती है ।
 उसे देख कर प्रमदा जन भी भूली नहीं समाती हैं ॥
 तुमने उस प्रकाश की उज्वल, सुन्दर झलक दिखाई है ।
 सती-धर्म का पथ दिखला कर, जीवन-ज्योति जगाई है ॥
 पूर्व समय में औरों ने भी, कर-कौशल दिखलाया था ।
 रण-चण्डी सम म्लेच्छ दलों के, छक्के खूब छुड़ाया था ॥
 परम अग्रणी बन कर तुम ने, देश जाति उत्थान किया ।
 अग्नि-समर्पण किया सखी सँग, जीते जी सम्मान किया ॥

३०

गंगा

पूजि विरचि के पावन पाँवड़े चीरि के क्षीरधि को उमहा है ।
 शंकर शीश कलाधर चूमि विभूति भभूति की भूरि लहा है ॥
 आनि भगीरथ सोई यहाँ अघ ओघ भयानक काल दहा है ।
 मोहन गग कि धार किधौ वसुधा में सुधारस जात वहा है ॥

—कमला देवी मिथ, लखनज

३१

मेरा शृंगार

शौक मुझको हो कभी यदि हाथ जेवर का प्रभो ।
 तो भरे उपकार-कंगन से मेरे कर हो विभो ।
 शीश की वेनी अगर भगवन, मुझे दरकार हो ।
 शीश तक करदूँ निछावर देश का उपकार हो ॥
 नाथ, क्यो उर के लिए अब जेवरों की चाह हो ।
 है वहां तू, जोश का तोड़ा भरा उत्साह हो ॥
 ऐसे गहनो से सखी शृंगार करिये आप भी ।
 झूठे गहनो से न होंगे दूर मन के ताप भी ॥

—प्रेमप्यारी देवी

३२

समाज पर हिन्दू-विधवा

द्रवित हृद्धा है हे समाज तू, सुन विधवाओं का क्रन्दन ।

दम्पति जीवन को समझा हो, जिसने तन का भोग विलास ।
 खोकर इन्दिय के सुख सारे, टूट गई हो जिसकी आस ॥
 जिसे न हो इस चञ्चल मन की, दुष्प्रवृत्तियों पर अधिकार ।
 अनुभव किया न जिसने समय, के बल का आनन्द अपार ॥
 विषय-चामना को ही समझा, जिसने जीवन का सुख-मूल ।
 समझ न पाई सूक्ष्म चरित का-गौरव जिसकी बुद्धि-स्थूल ॥
 जिसने कभी न देखा गहरे, अमित प्रेम का पावन रूप ।
 जिसका कच्चा हृदय न सह सकता वियोग की तीखी धूप ॥
 जिसका प्रियतम है केवल, वासना-वृत्ति का साधन मात्र ।
 चिर वियोग में जिसे चाहिये, सदा नवीन प्रणय का पात्र ॥
 वह क्या जाने विधवाओं के, जीवन का महान गौरव ।
 जाकर पूछो हिन्दू रमणी से, इसका सच्चा वैभव ॥
 कैसे भूला जा सकता है, प्रेम किया जो पहली बार ।
 युगल आत्मा का बन्धन है, प्रेम न वनियों का व्यापार ॥
 दुख भी सुख है, रुदन हास है, अश्रु विन्दु मुक्ता का हार ।
 लाख मिलन बलिदान विरह पर, जहाँ हृदय का निर्मल प्यार ॥
 जिसके कारण पुरुष न भोगा—करते दुसह विरह का छेश ।
 उस विस्मृति का ललनाओं के, सरल हृदय में नहीं प्रवेश ?
 जो नारी के स्फटिक हृदय पर, पड़ता प्रथम प्रणय का दाग ।
 मिटा न सकते उसको धाँकर, कुटिल काल के कोटि तड़ाग ॥
 क्षण-भंगुर काया का रमणी, चाहे सौंपे वारम्बार ।

करना स्वयं-कर्तव्य का पालन, बदला करते हो नित नीति ।
 कहते हो चञ्चल नारी को, पर उसकी यह कभी न रीति ॥
 पुनर्व्याह की घृणित बात सुन, विधवा को आती है लाज ।
 धूर धूर कर खो दी सारी, लज्जा तुमने पुरुष-समाज !
 कभी न जिसके विषय-वासना, सागर की मिल पाई थाह ।
 करता जाता आजीवन जो नर—सदा व्याह पर व्याह ॥
 जिसकी लाश चिता पर करती, जाती पुनर्व्याह की चाह ।
 वह क्या समझे उचित रीति से, विधवा की करुणामय आह !!
 दिन दिन गिरते ही जाओगे, ढीला कर समाज-बन्धन ।
 सीखो और सिखाओ जग को, करना विधिवत् आत्म-दमन ॥
 हमको पातिव्रत रखने दो, तुम भी पत्नी-व्रत सीखो ।
 विषय-वासना में निशि-दिन, हे बन्धु न रहना रत सीखो ॥
 हमको समता दो श्रद्धा के सहित, हृदय से करके प्यार ।
 हमें न समता दो तुम देकर—अपना सा अनुचित अधिकार ॥
 स्वयं छोड़ दो जो कुछ हम पर, करते हो तुम अत्याचार ।
 हमें सिखाओ मत बदले में, करना वैसा ही व्यवहार ॥
 तुम्हें मुबारक रहे बन्धुवर ! करना चाहो जितने व्याह ।
 हमें न रौरव का दुख सह कर—भी है पुनर्व्याह की चाह ॥
 हाय बन्धु ! विधवा भगिनी की, रक्षा से करते इनकार ।
 ले सकते हो क्या पति वन कर ही मेरी रक्षा का भार ॥

—दृष्टमारी बघेल, रींग

पाने को तुम्हारे प्राण आकुल हुए हैं अति,
 सुख से समाकुल सनेह साज साजो नाथ !
 आतुर हुए हैं देखने को मंजु मूर्ति नैन,
 प्यारे प्रेम-वैन-चारि उर उपराजो नाथ !
 गुन-गन गाती गिरा सुन अब जाओ उसे,
 नीके 'नलिनी' के नेम-नेह से निवाजो नाथ !
 —राजराजेश्वरी देवी 'नलिनी'

३४

स्नुति

जय प्रभु सकल क्लेश दुःखहारी ।
 जय अनन्त लोकेश मुरारी ॥
 जय श्रीकान्त लोक सुखकारी ।
 जयति सुरेश जयति असुरारी ॥
 जय विश्वेश विश्व हितकारी ।
 विश्व-प्राण विभु विश्व-विहारी ॥
 जय सुख रूप सर्व सुखदाता ।
 जय जग ज्योति जयति जग त्राता ॥
 'ललिता' है प्रभु शरण तुम्हारी ।
 करो कृपा निज ओर निहारी ॥

—ललिता पाठक एम० ए०

(सुपुत्रो स्वर्गीय प० धीधर पाठक)

कौन पिता के गुरु-स्नेह को, पुत्रों को समझावेगा ?
 कौन जननि का हृदय खोलकर, मातृ-स्नेह दिखलावेगा ?
 कौन सहोदर भ्राताओं का, उत्तम प्रेम सुनावेगा ?
 कौन परम प्रिय मित्रों का प्रिय पावन प्रेम बतावेगा ?
 कौन प्रकृति का बिना सुकवि के, सुन्दर दृश्य दिखावेगा ?
 कौन पुराने वर वीरों का, कीर्ति-सुधा बरसावेगा ?
 कौन पतिव्रत नारी का पति, प्रेम प्रगाढ़ सुनावेगा ?
 कौन सती सीता की हमको, मन में याद दिलावेगा ?
 कौन उठाकर युग युग बीती, बातें हमें सुनावेगा ?
 कौन मरे दिल में भी फिर, वीरत्व-स्त्रोत बहावेगा ?
 कौन जगत को मँज-साफ कर, सच्चा रूप दिखावेगा ?
 कौन जगत की नश्वरता का, पूरा पाठ पढ़ावेगा ?
 कौन दुर्ग वन नगर आदि को, बहिनो, रुचिर बनावेगा ।
 कौन कृपा-सागर की महिमा, हम सबको बतलावेगा ॥
 केवल कविगण ही ऐसे हैं, जिनकी कविता से हमको ।
 मिलती एक अनोखी शिक्षा, धन है ऐसी कविता को ॥

—चद्रावली भाटिया, कानपुर

३७

तेरी भूल

तू समझे है, बीत रहा है उनका जीवन सुखमय शांत ।
 एक बार ही आकर लख ले हैं वे कितने दुखी अशांत ॥

हृदय-कुंज के सुन्दर सुरभित भाव-कुसुम चुन लाऊँगी ।
 बड़े प्रेम से 'उन्हे' चढ़ाकर अपना प्रेम निभाऊँगी ॥
 द्रव्य-भेंट के बदले तो मैं स्वयं भेंट चढ़ जाऊँगी ।
 इसी तरह की पूजा करके 'उनका' मान बढ़ाऊँगी ॥
 अपने निर्मल मानस का मैं 'उनको' हंस बनाऊँगी ।
 भौँति-भौँति के कौतुक करके 'उनका' चित्त चुराऊँगी ॥
 उनके ही दरवाजे अब मैं भीख माँगने जाऊँगी ।
 सम्मुख जाकर उच्च स्वर से प्रेम-पुकार लगाऊँगी ॥
 प्रेम-अश्रु-मुक्ताओं का मैं सुन्दर हार बनाऊँगी ।
 भक्ति-भाव से, सरल स्नेह से 'उनको' ही पहनाऊँगी ॥

—तारादेवी पांडेय, शल्मोष्ठा

३९

स्वागत

अभी हुआ था राज-तिलक बन गये अभी तुम सन्यासी ।
 फेंक राजसी ठाठ हुये स्वेच्छा से घन्दीगृह वासी ॥
 सो न सके गदों पर सुन कर भारत माँ का हाहाकार ।
 रह न सके सुख से महलों में सुन कर उसकी करुण पुकार ॥
 आँखें रखते हुये सके तुम देख न उसकी बरबादी ।
 छिनी देख कर रह न सके उसकी सदियों की आजादी ॥
 उसके लिये अतः तुमने जीवन का सारा सुख छोड़ा ।
 सौप दिया तन, मन, धन—तन, मन, धन से अपना मुख मोड़ा ॥

४०

प्रेमाधिकार

देकर दर्शन चाहे प्रियवर, तुम हमको कृतकृत्य करो ।
 अथवा रहकर दूर-दूर ही नित्य हृदय को व्यथित करो ॥
 इच्छा हो, तो जी भरकर तुम नित मेरा अपमान करो ।
 अथवा होकर सद्य, प्रेममय प्रकट मधुर मुसकान करो ॥
 दुख देने से सुखी रहो यदि, तो तुम नित नव दुख देना ।
 किन्तु न स्वत्व हमारा तुम यह हमसे कभी छान लेना ॥
 होगा म्लान नहीं सुख मेरा, चाहे जो व्यवहार रहे ।
 रक्खूँगी मैं मन-मंदिर से, पूजा का अधिकार रहे ॥

—लीलावती 'सत्य', अल्मोड़ा



परिशिष्ट

कठिन शब्दों का अर्थ

मीरावाड़े

मनुआँ=मन । सुण=सुन । कूँ=को । भीजै=सराबोर । धावड़े=धाते
हो । जीवण=जीवन । गमायो=दिताया । भूरताँ=उपवास । नैण=घाँख ।
ऊयी=ऊय गई । चित चोरी=हृदय को चुराने वाले । छूँ=हूँ । भव=
संसार । सोग=शोक । निवार=दूर करो । तलब=इच्छा । थष्ट कर्म=
आठ काम । धावागमन=मरना और उत्पन्न होना । ग्हाँरो=हमारा ।
थाने=उनको । देख्यो=देखने से । कुलरा=कुटुम्ब । हराणी=दुष्ट । मद्-
मातो=मतवाला । दस्त=हाथ । धाँकुस=धकुश । भारत=महाभारत की
लढाई । ग्हाँने=मुझे । थारे=तुम्हारे । घणो=वना । उमावो=उत्साह ।
वाटणियाँ=मार्ग, रास्ता । धाँखडियाँ=धाँखें । फाँसडियाँ=फदा । दाम-
डियाँ=दासी । साँसडियाँ=सांस । खेवडियाँ=खेने वाला । थधर=थोठ ।
राजित=शोभा देती है । फटितल=कमर में । नूपुर=विद्युथा । रसाल=
सुन्दर । थदल=वत्सल । छोई=मट्टा । थमर थँचाप=धमर करने वाला
अमृत । थिरछ=वृक्ष । थुरत=स्मरण । फाँसुरी=फंदा । जेतइ=जितना ।
तेतइ=उतना । फरवट काशी=काशी में एक देवस्थान । चहर=रातरज ।
भगवा=लँगोटी लगाना । धो=हैं । वगसप=गुणी । नेहडी=प्रेम ।
विसवास=विश्वास । सँमुद=समुद्र । सपेद=सफेद । पाना=पान । लाघन=

धोका देना । चंचरीकन=भौरे । चोंप=कुड । बसाति=बश । मीसी=मुर-
झाना । दिगम्बर=तंगे ।

छत्रकुँवरि वाई

दिसि=घोर । मधुरी=मीठी । विरियाँ=समय । लाह=लाभ । अपन-
पौ=अपनापन । उरन=छिपना । छकड़ाप=पूरी तरह से । सामिल=
शामिल । अचारी=देर ।

प्रवीणराय

सीतल=शीतल । धनसार=सुगंधित चीज़ें । अमल=स्वच्छ । धाड़े=
अच्छी तरह । प्रतिपारि=पूरा कहँगी । कोक=चकवा । कलधौत=
उज्वल । हेम=सोना । उरग=सांप । इट्टु=वंदना । कुरकुट्ट=मुर्गा ।
सारँग=मोर । खरी=रुढ़ी । छीनी=कमजोर । नकारा=नगारा । परदार=
दूसरे की स्त्री । बपु=शरीर । रत्नाकर=समुद्र । हिरनाच दैयत=हिरणाच
राक्षस । छडाई के=छुड़ाकर । बरिवंद=राजा । सगोत=संगोत्र में ।
बसाति=बश । विसासिनी=विश्वास देने वाली । कपोलन=गालों ।
कातर=दुखी । सैन=इशारा ।

दयावाई

जस=यश । लीले=निगलती है । दरयो=छिपा । नासा=नाक ।
सञ्ज=सञ्चा । हलकाओ=दुख देते हो । अटपटो=कठिन । मतो=राय,
बुद्धि । निक्सत=निकलता है । विकार=बुराई । मनिका=माला ।
धमकि=जल्दी से । सुरति=स्मरण । नटिनी=नट की स्त्री । तम=धँधेरा ।

होकर । अनादी=मूर्ख । बिनवै=प्रार्थना । जमी=जमीन । सुमुद=समुद्र । तातो=नाराज, गर्म । सियरे=शांत, शीतल । महत्=महत्त्व । मङ्ग=मङ्गली । आक=मदार । सरवर=नालाब । खाविन्द=स्वामी । खालक=दुनिया का मालिक । पिलकत=दुनिया । फना=नाश होने वाली । बॉग=पुकाराना ।

प्रतापकुँवरि वाई

हुन्दर=दुख । भे=हुए । जाण=नगर का नाम । उझाह=उत्साह । अन्नत=अधिक । तुरग=घोड़ा । पधराई=स्थान दिया । असन=भोजन । घसन=कपड़ा । भीतिन=दीवारों । नौबत=राजा यजना । बिजन=व्यंजन । कौवेर=कुवेर । निरत=लगे हुए । दोय=दो । विद्रुम=हीरा, मोती । चमर=चँवर । सोपान=पीढ़ी । गुणातीत=अधिक गुण । कापा-पुर=शरीर के पुर में । डढोत=नमस्कार । शोछी=नीच । वीस=भुलाना । तणी=ननी हुई । सुरत=स्मरण । अन्हद=भक्ति के रँग में लीन होना ।

सहजोवाई

भुगतन्त=भुगतना है । आव=तेज । थोधे=सोचले । तिमिर=झँधेरा । निस्चै=निश्चय । धारणा=इच्छा । कोटो=करोड़ों । मध्ये=बीच में । जठर=वृद्धावस्था । भिष्टल=विष्टा, मैला । धिरग=धिकार । नागसिप=नख से शिर तक । सुलद्धन=अच्छा लक्षण । ह्यधरु=पदोपेश में । अजपा=हृदय में स्मरण करना । सू=सू । अष्टादस=अठारह पुगाए-चार वेद । पट=दश शास्त्र । सिलगता=बलता है । साजन=पञ्जन ।

बाली । शिखर=दूध का चाँद । पञ्च=वचन । आपति=दुःख । दाष्टि=दष्टि ।

जुगनप्रिया

अलि=भौरा । पित्रु=कोयल । कीर=नाता । सौं=सौगंध । दादिन्=मगल गाने वाला । मनसा=हृदय का । करन=गूरा करन वाला । धन पाथिनी=पवित्र, न पान वाला । लूम=दुम । कैर्षी=पा तो । स्वाता=स्वाती । अपित=मुन्दर । दुरा=दिपा । मजुरा=मल का । वयु=शरार । नतर=नहीं तो । अनुचरनी=पाद चलने वाला । सुरसरि=गंगा । रावे=प्रेम । भात्रै=भाग जाते हैं । धारा=राम । गिरिवर=गोवर्द्धन । माष मव=माषवाचाय्य का मत । पवा=शोभा देता है । फादन=खेड़ना । तरवन=पूजा ।

रामप्रिया

गहा री=पकड़ लिया । प्रार=मगर । रात्रिव लाचनम्=कमल के समान आस्र वाले । वैताप-वग्न=तीनों ताप के नष्ट करने वाले । अविनाश=त्रिदका नाश न हा । माध्व=मोक्ष देने वाले । धरिगजनम्=दुःख का मारन वाले । विदारक=नष्ट करने वाले । कृपाकरम्=कृपा करन वाले । दिनमथि=सूर्य । अरविन्द=कमल । धमार=एक राग । पचवाण=जीमदूध । श्लिषा=प्रापना ।

गिरिराज कुँवरि

दिगना=कनक का टाका । कुटुम्=कुटुम्ब । वाप=मुक्के । सगरा=सारा । निन्रा=निन्दा ।

रघुवंश कुमारी

तोय=पानी । हेम=सोना । राती=त्रेमिका । केलि=खेल । सुरधाम=स्वर्ग । करक=दुःख । विरिया=यमय । समुद्र=समुद्र । रद=दांत । मोहनऊ=कृष्ण जी । वयरिया=हवायें । प्रत्यच्छर्हि=प्रत्यक्ष ही । सामुह्ये=सामने । दुकूल=रूपडा । परजन=प्रजा में । एकमति=एक राय होकर ।

राजरानी देवी

विपम=कठिन । प्रभजन=शायु । ज्योत्सानल=चाँदनी की आग । प्रखर=तेज । ताप=गर्मी । भूलकावली=गालों का समूह । तमाल=एक वृक्ष । पतन=गिरना । कलुपित=पापी । नृशसों=नीचों । हरिद्रा=हल्दी । रंजित=लगी हुई । अथि=गाठ । कान्तार=पर्वत । किंकिणी=रुमर की करधन । भ्रू=भौं ।

सरस्वती देवी

कति=कितनी । तोय=जल । धरनी=परवाली । एकन्त=एकान्त । जुगलयाम=शाम-सुबह । लीक=मर्यादा । ऊर्द्ध=ऊपर । विसात=श्रौकात । हस्त-क्रिया=सीना-पिरोना । सूचीकारी=सुई का काम ।

बुन्देलावाला

उद्दालक=उत्तेजना देने वाले । शरिण घालक=दुश्मनों को मारने वाले । फारिस=कलंक, काला । शर्दी=टका । शमिय कीट=मीठा में लगने वाले कीड़े । शमरेग=इ-इ । वेदान्ती=विना दात वाला । मंसूर=एक भक्त जो कासी पर चढ़ा था । दुहिता=पुत्री ।

प्रियंवदा देवी

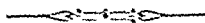
पीक=पान के बीड़ा का रस । भोगवाद=सांसारिक कार्य । अहम्=मैं, खुद । दुस्तर=कठिन । दिगन्त=दिशायें ।

सुभद्राकुमारी चौ

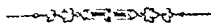
ऋतुराज=रसन्त । तद्वित=विजय । पुनो=पूर्णिमा । अनुगामी=पीछे चलने वाला । मानिनि=मान करने वाली । अलिप्यां=भौरा । फालिन्दी=यमुना ।

महादेवी वर्मा

निशा=रात । राकेश=चन्द्रमा । अलकं=गल । मधुसाम=वसंत । घात=हवा । तुहिन=धोस । निर्वाण=मोक्ष । उन्माद=मत्वालापन । मलयानिल=मलय वायु । सौरभ=सुगंधि । चितेरा=चित्रकार । हीरक=हीरों का । निर्मम=बिना प्रेम वाला । उच्छ्वास=माँस लेना । चितिश=शासमान । अनुभूति=प्रनुभव । सूक=गूंगा । दूरागत=दूर से आई हुई । स्वमिल=स्वप्न की । आसव=पार । अन्तर्हित=नष्ट हो गई । अश्वगुंठन=घूँघट । भक्तावात=भक्ता की वायु । अक्षय=न नष्ट होने वाला । शीर-निधि=दूध का समुद्र । सुप्त=मोता हुआ । सजीवन=नंजीवनी चूटी । पारावार=समुद्र । वारीश=समुद्र । पसार=धोना । घाटं=द्विपिन ।



कथा-प्रसंग



नारद

नारद जी पूर्वजन्म में वेदवादी ऋषियों की दासी के पुत्र थे। माँ ने इन्हें ऋषियों की सेवा के लिये रख दिया था। ये मन लगाकर धृद्धा-पूर्वक उनकी सेवा करते थे। उन मुनियों का जो जूठन बचता था उसी को खाकर अपना पेट भरते थे, इसके प्रभाव से उनका अन्त करण शुद्ध हो गया। ऋषियों ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश दिया जिससे उनके मन में दृढ़ भक्ति पैदा हो गई। ऋषियों के चले जाने पर कुछ दिन बाद उनकी माता सर्प काट लेने के कारण मर गई। तब ये उत्तर दिशा में जाकर तपस्या करने लगे। लेकिन अनुपयुक्त शरीर होने के कारण ध्यान जमता नहीं था। एक दिन काल पाकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और जब ब्रह्माजी जगत् की रचना करने लगे तब मरीच, चांगिरा आदि ऋषियों के साथ उत्पन्न हुए। तब से वे चीखा लिये सर्वा हरिगुण गाते विचरा करते हैं, उनकी गति कहां भी नहीं रुकनी।

अहिल्या

एक बार ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक परम मनोहर कन्या उत्पन्न की। जिसकी सुन्दरता देखकर सभी मोहित होते थे। ब्रह्माजी उमे

ले गये। जब मुनिजी के पुत्र परशुरामजी को यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने अपना फरसा लेकर सहस्राबाहु पर चढ़ाई की। सहस्राबाहु ने उनके मारने के लिये १७ अक्षौहिणी सेना भेजी, उसे परशुरामजी ने काट डाला। इस पर जब सहस्राबाहु लड़ने आया तब उसे भी मार डाला।

गणिका

सतयुग का परशुराम वैश्य र्वासरोग से मर गया, तब उसकी स्त्री अपना कुल-धर्म छोड़कर स्वजनो से दूर जाकर वैश्यावृत्ति करने लगी। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गे का बच्चा बेचने आया। उसने सुग्गा खरीद कर पुत्राभाव में उसे पुनर्वत् स्नेह से पाला और उसे रामनाम पढ़ाया। रामनाम पढ़ाते पढ़ाते दोनों एक ही समय में मर गये, रामनाम के उच्चारण के प्रभाव से दोनों की मुक्ति हो गई।

गज

सतयुग में क्षीरसागर के त्रिकूट नामक पर्वत में वरुण देव का ऋतुमत नामक चागीचा था; एक दिन उस चागीचे के सरोवर में एक मदमस्त गजयूथपति हथिनियों सहित नहा रहा था। उसी समय एक बलवान् मकर (ग्राह जो पूर्व जन्म में हूहू नाम का गन्धर्व था) ने उसका पैर पकड़ लिया। गजराज तथा उसके साथियों ने भरमफ उससे छुटाने के लिये चेष्टा की परन्तु कोई भी उसे जल से बाहर न

प्रह्लाद

जब प्रह्लाद अपनी माता कयाधु के गर्भ में थे, उस समय एक दिन नारदजी ने धाकर उनकी माँ को ज्ञानोपदेश किया। माँ को तो ज्ञान नहीं हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। प्रह्लाद रामजी के बड़े भारी भक्त हुए, इनके लिये भगवान् को नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा जिसकी कथा लोक प्रसिद्ध है।

शवरी

यह जाति की भीलनी थी, मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी; जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तो इसने भी साथ ले जाने का हठ किया। परन्तु ऋषि ने कहा कि तू अभी यहीं रह, तुम्हें त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। गुध्र को परमधाम देकर भगवान् शवरी के आश्रम में गये, भगवान् ने उसके बेर खाये और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शवरी रामजी को सुश्रीव की मित्रता का संकेत करके उनके चरण कमलों का ध्यान धर कर गोगाक्षि में देह जलाकर परमधाम को गई।

जवन

जवन नाम का एक पापी ग्लेच्छ था, वह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरान्त श्रावदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर

श्वान

श्रीरामजी ने श्वयोध्या के एक कुत्ते की नालिश पर एक सन्यासी को दंड दिया था। यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। केशवदासरूपत श्रीराम-चन्द्रिका में इसकी कथा सविस्तर वर्णित है।

उद्धव

उद्धव श्रीकृष्णजी के मित्र थे। इन्होंने श्रीकृष्णजी ने प्रज की विरह, विधुरा गोपियों को समझाने के लिए भेजा पर इन्होंने गोपियों को यह उपदेश दिया था कि तुम निर्गुण परमात्मा की उपासना करो।

कुवरी

कंस की दासी कुवरी भगवान् की बड़ी भक्त थी। जिस समय कृष्णजी कंस को मारने गये थे उस समय कुवरी ने उनके मस्तक पर चन्दन लगाकर श्रपना जन्म सफल किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी ने उसकी पीठ पर पैर रख कर उसका कृष्ण वैष्ठा दिया जिससे वह परम सुन्दरी हो गई। उसकी भक्ति और विनय के वश होकर भगवान् ने जाकर उसका घर पवित्र किया और उससे प्रेम करके उसे कृतार्थ किया।

भीम

पाँचो पाँडवों को जब दुर्योधन ने अज्ञातवास दे दिया था तब ये लोग राजा विराट के यहाँ नौकरी करते थे। भीम उस समय रसोईघराने का काम करते थे। अर्जुन नाच सिखाने और बाजा बजाने का। मतलब यह है कि समय पढ़ने पर भीम ऐसे बलवान व्यक्ति को भी रसोई बना कर जीवन बिताना पड़ा।

गीध

जब रावण सीता जी को चुरा कर ले चला तब रास्ते में उसे जटायु नामक गीध मिल गया। वह राम का बड़ा भक्त था। उसने रावण से लड़ाई करके सीता को छीन लेने का प्रयत्न किया। परन्तु रावण ने अपनी तलवार से उसका पंख फाट दिया। गीध निरुपाय होकर गिर पड़ा। श्री रामचंद्रजी सीताजी को ढूँढ़ते हुए जब उधर से निकले तब उन्होंने गीध को अधमरा पदा हुआ देखा। गीध ने सीता का समाचार बतलाया और राम जी ने उसे स्वर्ग दिया।

हनूमान

हनूमानजी का नाम प्रसिद्ध है। रामचंद्रजी के सेवक थे। सीता के पता लगाने में बहुत प्रयत्न किया। रामचंद्रजी ने इन्हें अपना सेवक बना लिया।
